धारा...59 ग्रंथांक...267

निस्पृह साधक गीताञ्जली

(आध्यात्मिक समता साधक श्रमण आचार्य कनकनन्दी)

पुण्य स्मरण

एक दिवसीय आदर्श पञ्च कल्याणक तथा क्षुल्लिका शान्तिश्री, क्षुल्लिका श्रेयांसश्री की दीक्षा के स्मरणार्थ...

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. धर्म दर्शन ज्ञान शोध संस्थान (बड़ौत, उ.प्र.)
2. धर्म दर्शन संस्थान, उदयपुर (राज.)
3. स्व. विद्यावती गाँधी की पुण्यतिथि के स्मरणार्थे
   द्वारा-श्री एम.पी. गाँधी, डॉ. सीमा गाँधी, सेक्टर-11, उदयपुर

ग्रन्थांक-267 प्रतियाँ-500
संस्करण-2017 (प्रथम) मूल्य-101/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

निस्पृही आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुवर की बहुगुणधारी विशेषताएँ

(श्लोगन/(नारे) व गीत रूप में)

प्रस्तुति-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : हे गुरुवर! गुरुवर धन्य हो तुम....., सायोनारा.....)

आत्मविज्ञानी...कनकनन्दी...ज्ञानानन्दी...कनकनन्दी...
सहजानन्दी...कनकनन्दी...विद्यानन्दी...कनकनन्दी...
प्रज्ञावान्...कनकनन्दी...आध्यात्मवादी...कनकनन्दी...
विद्यासिन्धु...कनकनन्दी...निस्पृह यति...कनकनन्दी...
महातार्किक...कनकनन्दी...अपूर्व-अर्थी...कनकनन्दी...
समताभावी...कनकनन्दी...शांत स्वभावी...कनकनन्दी...
शास्त्र विज्ञाता...कनकनन्दी...आगम ज्ञाता...कनकनन्दी...
सुगुणग्राही...कनकनन्दी...सत्यग्राही...कनकनन्दी...
धर्म प्रभावक...कनकनन्दी...सिद्धांत चक्री...कनकनन्दी...
अनेकान्ती...कनकनन्दी...स्याद्वादी...कनकनन्दी...
अन्त्योदयी...कनकनन्दी...ग्रामोत्थानी...कनकनन्दी...
सर्वोदयी...कनकनन्दी...व्यापकभावी...कनकनन्दी...
बहुआयाम ज्ञानी...कनकनन्दी...बहु अवधानी...कनकनन्दी...
विद्या विशारद...कनकनन्दी...आयुर्वेदज्ञ...कनकनन्दी...
महाकवि...कनकनन्दी...आशुकवि...कनकनन्दी...
महालेखक...कनकनन्दी...सुश्रुतज्ञानी...कनकनन्दी...
सुमतिज्ञानी...कनकनन्दी...अलौकिक गणितज्ञ...कनकनन्दी...
अयाचक...कनकनन्दी...निराडम्बर...कनकनन्दी...
अहीनभावी...कनकनन्दी...अदीनभावी...कनकनन्दी...
मृदु स्वभावी...कनकनन्दी...उदारभावी...कनकनन्दी...
अनाग्रही...कनकनन्दी...सहिष्णुभावी...कनकनन्दी...
अध्ययनशील...कनकनन्दी...मननशील...कनकनन्दी...

चिन्तनशील...कनकनन्दी...चिन्ता मुक्त...कनकनन्दी...

कृतज्ञभावी...कनकनन्दी...परोपकारी...कनकनन्दी...

एकांत सेवी...कनकनन्दी...मौनधारी...कनकनन्दी...

आर्षमार्गी...कनकनन्दी...आगममार्गी...कनकनन्दी...

प्रयोगधर्मी...कनकनन्दी...नवाचारी...कनकनन्दी...

शुभोपयोगी...कनकनन्दी...ज्ञानोपयोगी...कनकनन्दी...

स्वाध्यायी...कनकनन्दी...ध्यानयोगी...कनकनन्दी...

बालकवत्...कनकनन्दी...जिज्ञासु वृत्ति...कनकनन्दी...

स्व-मतज्ञाता...कनकनन्दी...पर-मत ज्ञाता...कनकनन्दी...

तात्कालिक ज्ञानी...कनकनन्दी...ज्ञान प्रभावक...कनकनन्दी...

अपरस्रावी...कनकनन्दी...संवेदनशील...कनकनन्दी...

अन्तर्मना...कनकनन्दी...धैर्यशाली...कनकनन्दी...

महासमीक्षक...कनकनन्दी...स्थितप्रज्ञ...कनकनन्दी...

सद्ज्ञानदाता...कनकनन्दी...अप्रभावी...कनकनन्दी...

शब्दशिल्पी...कनकनन्दी...प्रखर वाग्मी...कनकनन्दी...

प्रतिभाशाली...कनकनन्दी...लोकज्ञता गुणी...कनकनन्दी...

बहुभाषाविद्...कनकनन्दी...शिक्षा विज्ञानी...कनकनन्दी...

प्रशमभावी...कनकनन्दी...समन्वयकारी...कनकनन्दी...

अनिन्दक...कनकनन्दी...सत्यशोधी...कनकनन्दी...

युगनिर्माता...कनकनन्दी...गुरुकुल गणी...कनकनन्दी...

भव्यैक बन्धु...कनकनन्दी...न्यायवन्त...कनकनन्दी...

सत्वेषु मैत्री...कनकनन्दी...गुणिषु प्रमोदी...कनकनन्दी...

माध्यस्थ भावी...कनकनन्दी...पर दुःख कातर...कनकनन्दी...

करुणाशील...कनकनन्दी...आत्मानुभवी...कनकनन्दी...

वात्सल्यधारी...कनकनन्दी...वैयावृत्य गुणी...कनकनन्दी...

विनय तपस्वी...कनकनन्दी...ध्यान तपस्वी...कनकनन्दी...

निर्मल भावी...कनकनन्दी...सरल-सहज...कनकनन्दी...

मार्दव भावी...कनकनन्दी...आर्जव भावी...कनकनन्दी...

अनौपचारिक...कनकनन्दी...सत्साहसी...कनकनन्दी...

सत्यवादी...कनकनन्दी...शुचिताधारी...कनकनन्दी...

स्वाध्याय तपस्वी...कनकनन्दी...मनोविज्ञानी...कनकनन्दी...

संयमधारी...कनकनन्दी...संक्लेश त्यागी...कनकनन्दी...

आकिञ्चन्य भावी...कनकनन्दी...ब्रह्मलीन...कनकनन्दी...

विज्ञान सिन्धु...कनकनन्दी...विदाम्वर...कनकनन्दी...

गुणानुमोदक...कनकनन्दी...सच्चे श्रमण...कनकनन्दी...

भविष्यज्ञाता...कनकनन्दी...निमित्त ज्ञानी...कनकनन्दी...

प्रशम भावी...कनकनन्दी...संवेगधारी...कनकनन्दी...

आस्तिक्य भावी...कनकनन्दी...अनुकम्पाधारी...कनकनन्दी...

सनम्र सत्यग्राही...कनकनन्दी...प्रगतिशील...कनकनन्दी...

अध्यात्म योगी...कनकनन्दी...दृढ़ताधारी...कनकनन्दी...

प्रोत्साहक...कनकनन्दी...अभिप्रेरक...कनकनन्दी...

सर्व समावेशी...कनकनन्दी...आभार प्रदर्शी...कनकनन्दी...

धर्ममूर्ति...कनकनन्दी...श्रेयसभावी...कनकनन्दी...

सौजन्य भावी...कनकनन्दी...सदाशयी...कनकनन्दी...

सारस्वत...कनकनन्दी...गौरवशाली...कनकनन्दी...

आई.क्यू. धारक...कनकनन्दी...ई.क्यू. धारी...कनकनन्दी...

एस.क्यू. धारक...कनकनन्दी...विश्व विभूति...कनकनन्दी...

अद्वितीय...कनकनन्दी...अलौकिक...कनकनन्दी...

क्रियेटिव...कनकनन्दी...प्राडक्टिव...कनकनन्दी...

पॉजिटिव...कनकनन्दी...आधुनिक...कनकनन्दी...

विश्वकवि...कनकनन्दी...विश्व विज्ञानी...कनकनन्दी...

जन-जन के...कनकनन्दी...सबके प्यारे...कनकनन्दी...

इस गीताञ्जली के विशेष परिज्ञान हेतु पठनीय ग्रंथ सूची

	(कृति)	(लेखक)
1.	मेरा लक्ष्य साधना एवं अनुभव	आचार्यश्री कनकनन्दी

2. अनुभव गीताञ्जली (धारा-18) आचार्यश्री कनकनन्दी
3. स्वाध्याय गीताञ्जली (धारा-33) आचार्यश्री कनकनन्दी
4. आ. पद्मनन्दी जी लिखित लेख (गी. 9 में)
5. पंच आचार्य पूजन आचार्यश्री कुशाग्रनन्दी
6. सत्य शोधक आचार्य कनकनन्दी आचार्यश्री विद्यानन्दी
7. आ. श्री गुप्तिनन्दी लिखित लेख (गी. 35 में)
8. मेरे 35 वर्षीय अनुभव में आ. श्री कनकनन्दी-मुनि श्री चिन्मयानन्दी
   गुरुदेव (सर्वोच्च शाश्वतिक विकास : आध्यात्मिक ज्ञानानन्द)
9. विलक्षण ज्ञानी आर्यिका आस्थाश्री

* मेरी कविताएँ भी उपरोक्त कुछ किताबों के आधार पर बनी है।

(आर्यिका सुवत्सलमती)

वैज्ञानिक आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुवर श्रीसंघ गुरुकुल की सकारात्मक गतिविधियाँ व वैशिष्ट्य

प्रस्तुति-विद्यार्थी श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

1. नियमित स्वाध्याय-चर्चा-वार्ता
2. नियमित भ्रमण-व्यायाम-प्राणायाम
3. आदर्श विचार-आहार-विहार पद्धति
4. राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी
5. धर्म-दर्शन-विज्ञान प्रशिक्षण शिविर
6. गुण व कलाओं का प्रोत्साहन/अनुमोदन
7. प्रतिभा प्रोत्साहन व सम्मान
8. सतत सर्वोदयी शोधपूर्ण साहित्य सृजन
9. काव्य सृजन (काव्य जगत् के वैश्विक व कालजयी गीतों की रचना)
10. छात्र-विद्यार्थी-शिक्षार्थी-शोधार्थी सम्बोधन
11. ग्राम जागरण (कृषक सम्बोधन)
12. सैनिक सम्बोधन (राष्ट्र जागरण)

13. बहुविधायी नवोन्मेष-नवाचार (रिनोवेशन-इनोवेशन)
14. प्राचीन गुरुकुल से लेकर आधुनिक विश्वविद्यालयीन अभिप्रेरण (मोटिवेशन)
15. पर्यावरण सुरक्षा व शिक्षा
16. रचनात्मक-उत्पादक गतिविधियाँ व सोच का विकास
17. भौतिक निर्माण से दूर रहकर व्यक्ति निर्माण
18. पौराणिक-शास्त्रीय-आगमिक ज्ञान-विज्ञान की प्रभावना
19. भारतीय/(जैनागम) तथ्यों को आधुनिक विज्ञान से परे सिद्ध करना
20. भारत को वैश्विक ज्ञान का शिखर/(विश्व गुरु) बनाना
21. निराडम्बर-मितव्ययी-व्यापक लाभकारी-प्रगतिशील कार्य पद्धति
22. आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र द्वारा आत्मा की उपलब्धि करना

सीपुर, दिनांक 12.11.2016, मध्याह्न प्रायः 2.30

धर्म पर आने वाले संकट निवारण हेतु 1978 से प्रयासरत निस्पृह आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : अच्छा सिला दिया.....)

ध्यान से सुनो भव्यों! ध्यान से सुनो।
कनकनन्दी गुरुवर का कर्तृत्व जानो।
क्षुल्लक अवस्था से सम्प्रति काल तक।
सूरीवर का क्रांतिकारी रूप गहो/(लखो)।। (ध्रुव)

क्षुल्लक अवस्था में मध्यप्रदेश के, शाहगढ़ में उन्नीसौ अठहत्तर से (1978)।
एकांत (कानजी) मत का खंडन प्रारंभ किया, प्रायः उनचालीस (39) वर्ष पूर्व से।
श्रवण बेलगोला में उन्नीसौ इक्कासी (1981) में, तत्त्वचर्चा द्वारा शंका समाधान से।।

विमल, भरत, कुंथु, सन्मति सिंधु व, विजयमती माताजी की प्रेरणा से।
साहित्य लेखन प्रारंभ हुआ, विश्व-विज्ञान-रहस्य रचना किया।।

पंच सहस्र (5000) युवा प्रौढ़ों का, (कुंथलगिरी)
संस्कार शिविर लिया 'वीर सेवा दल' का।

उन्नीसौ पच्चासी (1985) में शमनेवाड़ी से, देशभूषण कुंथु सूरी के नेतृत्व में,
एकांत मत का खंडन किया, अनेकांत का मंडन किया।।

सूरी कुंथु सिन्धु सूरी देशभूषण गुरु, ससंघ सहित अनेक साधु।
कुंजवन में विशाल धर्मसभा में, लाखों नर-नारी जमा हुए थे।
4-5 दिनों तक कनकनन्दी पाठक ने, एकांत खंडन (अनेकांत) आगम मंडन किया।।

कर्नाटक से लेकर महाराष्ट्र तक, मध्यप्रदेश से लेकर राजस्थान तक।
अनेकांत का बिगुल (डंका) बजाया, उनके ही ग्रंथों से उनका खंडन किया।
(1987-88) नागपुर में की बड़ी भारी क्रांति, (उनके) एकांत मत को ध्वस्त भी किया।।

उन्नीसौ अठ्यासी-नवासी (1988-89) के मध्य में, सोनागिरि पावन सिद्ध क्षेत्र से।
विमल-भरत सूरी के आदेश से, समयसार व वृहद् द्रव्य संग्रह पढ़ाया।
गुरु द्वय की प्रेरणा से ग्रंथ रचना की, पुण्य-पाप मीमांसा, भाग्य पुरुषार्थ प्रभृति।।

कनकनन्दी गुरुवर को बड़ौत में, विमल सिन्धु ने लिखित आदेश भेजा।
ब्रह्मचारियों से पत्र प्राप्त कर, 'जिनार्चना' द्वय की रचना हुई।
गुरुवर के ज्ञान की ख्याति सुनकर, ज्ञानमती माताजी ने हस्तिनापुर बुलाया।।

उन्नीसौ नवासी (1989) में सबके अनुरोध से, हस्तिनापुर में समयसार पढ़ाया।
समयसार स्वाध्याय के माध्यम से, आगम बाह्य क्रिया-कांड का निरसन किया।
प्रायः दो सौ पचास विद्वान् व, पैतीस-चालीस (35-40) साधु-साध्वी को।
गुरुदेव ने शंका समाधान चर्चा की, पूजा-पाठ (क्रिया) आर्षमार्ग संरक्षण हेतु।
प्रश्न उठाना व समाधान करना, अकाट्य तर्क देना गुरुवर का काम।।

श्रीसंघ का प्रयास था निमाई में, अनेक ग्रंथों की रचना हुई।
सम्यक् समाचार विधि बताने हेतु, 'श्रमण संघ संहिता' की रचना हुई।
विद्यासागर ससंघ के भ्रम निरसन हेतु, मिथ्यात्व अकिंचित्कर मत के खंडन हेतु।
'दंसणमूलो धम्मो तहा संसार मूल, हेदु मिच्छतं' ग्रंथ रचना हुई।।

सागवाड़ा में चातुर्मास (2006) द्वितीय हुआ, अणिंदा में भरत-सिंधु की समाधि हुई।
सुधासागर जी ने सभा में निंदा की, गुरुवर ने उसका निरसन किया।
सागवाड़ा समाज को उदयपुर भेजा, पाम्पलेट, ग्रंथ द्वारा निषेध किया।।

जैन साधु की समाधि नहीं आत्महत्या है, कोर्ट में भी इसका विरोध किया है।

प्रायः चालीस (40) वर्षों से अनेक क्रांतियाँ की,
तीन सौ (300) साधु-साध्वियों के शिक्षा गुरु बने।
(अपनी) प्रज्ञा रश्मियाँ सबमें प्रवाहित की, लाखों विद्यार्थी प्रशिक्षित हुए।।

संकट आने पर 'कनक' गुरु से अपेक्षा करे, किन्तु उनके कार्य में सहयोग न करे।
क्रांति हो या शोध को गलत माने, सफलता मिलने पर जय-जयकार करे।
सभी कार्य किये परिशोधन हेतु, प्रतिशोध की भावना न किसी के प्रति।।

सम्प्रति में समाज व श्रावकगण स्वार्थी हैं कर्त्तव्यनिष्ठ नहीं।
अकर्मण्यता व निष्क्रियता है आग लगने पर कुआँ खोदना चाहे।।

समाज जागृति की भावना आगम सुरक्षा हो परम लक्ष्य हैं।
वैश्विक गुरु 'कनकनन्दी' जी की प्रज्ञा व अनुभव का लाभ न ले।
अतः गुरुदेव समता में रहे साक्षी भाव से देख, सुन रहे।
समाज जागृत होने पर मार्गदर्शन करे अपने दीर्घ अनुभव से लाभान्वित करे।

अनेकांतात्मक वस्तु स्वरूप धर्म, उक्त विशेषणों से युक्त श्रमण कर्म।
(मुक्ति)/क्रांति रेल के गुरुवर इंजन है, साधु श्रावक इसके डिब्बे हैं।
डिब्बों को इंजन से जुड़ना होगा, तभी धर्म, संघ की रक्षा होगी।
वर्तमान में समाज तुच्छ स्वार्थवश, मुनि नहीं साधु को मुनीम बनाते।
सभी जीवों को सद्बुद्धि मिले, वत्सलता से जिनगुण संपत्ति वरे।।

सीपुर, दिनांक 07.11.2016, कार्तिक शु. सप्तमी, प्रातः 7.40

परम पूज्य आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के चरणों में समर्पित

कोटिशः नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु

आचार्य कनकनन्दी जी गुण कीर्तन

(तर्ज : दिल दिवाना.....)

गुरुवर प्यारे, अज्ञान अंधियारे, हर लो नाऽऽऽ2, आप विज्ञानी, हम अज्ञानी, तारो नाऽऽऽ2

कनक गुरु का तेज कनक सम और सूर्य सी आभा...होऽऽऽओ2
ज्ञान सिंधु के दर्शन पाकर, आत्म विवेक अब जागा
अंतरमन में ज्ञान का दीप जला दो ना, आप विज्ञानी...।2

अनुभव/चिंतन की गहराई पाकर, मानो ऐसा लगता...होऽऽऽओ
रत्नद्वीप में जाकर कोई, रत्न से झोली भरता
ज्ञान के मोती, हमको गुरुवर दे दो ना, आप विज्ञानी...।

अठरा भाषाओं के ज्ञाता, मुद्रा सहज सरलता...होऽऽऽओ
देश-विदेश से आते भविजन, देख ज्ञान की पूर्णता
आपके जैसा ज्ञानी जग में दूजा ना, आप विज्ञानी...।

ज्ञान ध्यान चिंतन व अध्ययन, करते रहते निशदिन...होऽऽऽओ
सरस्वती माता भी तुम पर, रहती नित्य प्रसन्नचित्त
आशीष कृपा का मेरे सर पर, रख दो ना, आप विज्ञानी...।2

आपकी शिष्या-आ. चिंतन श्री

परम पूज्य आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के चरणों में समर्पित

कोटिशः नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के गुणानुवाद

(तर्ज : दिल दिवाना.....)

हे परम तपस्वीऽऽऽ जग हितकारीऽऽऽ कनक गुरुऽऽऽ2
ये गुरुवर तो, सर्वज्ञानी सूरज हैऽऽऽ2

गुरुदेव तुम सबके प्यारे, सब शिष्य है तुम्हारे...हो ओ-2
तुम्हें देखकर सबके अंदर, आत्म शक्ति ही बढ़ते
आत्मज्ञानी, तुम विज्ञानी, देश-विदेशी जाने हैऽऽऽ

ये गुरुवर तो...

ज्ञानदान तुम सबको देते, इसीलिए विज्ञानी...हो ओ-2
सरल स्वभाव को देख आपके, चरणों आते प्राणी
गुण सिन्धु है मेरे गुरुवर जानो नाऽऽऽ

ये गुरुवर तो...

सर्वसाधु में सर्वश्रेष्ठ है, जिनवाणी के डॉक्टर.....हो ओ-2
ऐसी बुद्धि देखी मैंने, जैसे हो कंप्यूटर

अनुशासन के पालक, मेरे गुरुवर जीऽऽऽ

ये गुरुवर तो...

ख्याति लाभ से रहते दूर हो, शिक्षा देते सबको...हो ओ-2
आत्मा की अनुभूति कराते, बनके आतम साधो
शिव सुख मिले, श्रेय श्री की अभिलाषाऽऽऽ

ये गुरुवर तो...

दिनांक 01.11.2016, रात 10.45
आपकी शिष्या-श्रेयश्री

आ. श्री कनकनन्दी गुरुदेव के चरणों में त्रि-भक्तिपूर्वक नमोऽस्तु-3

आ. कनकनन्दी : मेरे अनुभव में

गुरुदेव हम 1 तारीख को जब आपसे मिले तो हमें इतनी खुशी हुई मुझे पता नहीं था कि हमसे भी ज्यादा हमें देखकर आपको खुशी हुई। हमारे आते ही आपने हमें गुरुमंत्र दिया और प्रवचन में भी आपने कहा कि ये प्रवचन श्रावक के लिए नहीं ये जो मेरे पोता-पोती आये है उनके लिए है मुझे इतना अच्छा लगा कि वास्तव में हम अपने दादा-दादी के पास आये हो जिस प्रकार बच्चे अपने दादा-दादी से डरते नहीं है वैसे ही मैं भी आपसे नहीं डरी मुझे सबसे डर लगता है पर आपके सामने ऐसे बोल रही थी जैसे मैं बहुत पहले से जानती हूँ। सब कहते है कि महाराज बहुत ज्यादा अनुशासन रखते है पर मुझे ऐसा कुछ ज्यादा महसूस नहीं हुआ हम तो 2-3 दिन के लिए आये थे इसीलिए आप हमें कुछ नहीं बोले होंगे। कोई बात नहीं पर ये पहली बार ऐसा हुआ है कि आपसे मिलकर इतना अपनापन महसूस हुआ कि मैं अपने शब्दों से नहीं कह सकती। आपने जो पहले दिन मंत्र दिया था उस मंत्र ने मेरे ऊपर इतना काम किया मैं कभी भी कोई कविता-भजन वगैरह नहीं लिखा पर उसी दिन-रात को गर्भकल्याणक की क्रिया देखने गई थी वहाँ बहुत टाईम लग रहा था तो मैं कमरे में आयी और सोचा आपके ऊपर भजन बनाऊँ जैसे मैंने चालू किया और पूरा भी हुआ। गुरुदेव मैं सच बताऊँ तो मुझे कुछ भी नहीं आता कोशिश भी करती हूँ याद भी करती हूँ, लिखती हूँ, पढ़ती हूँ पर 2-4 दिन में भूल जाती हूँ। ऐसा भी नहीं की मुझे याद नहीं होता, सब होता है पर बस प्रमाद है इसलिए पीछे रह जाती हूँ, प्रवचन भी

करती हूँ पर पता नहीं ऐसा लगता है मुझे कुछ नहीं आता मुझे ऐसा आशीर्वाद दे दो गुरुवर बहुत पढ़ूँ-लिखूँ अपने पैर पे खड़ी हो जाऊँ आपके जैसा ज्ञान पाना तो बहुत मुश्किल है हम तो आपके चरणों के धूल के बराबर भी नहीं हूँ आपके ज्ञान का चारित्र का बखान करना इतने शब्द हमारे पास नहीं है। आपका गुणगान करना जैसे सूरज को दीपक दिखाना है गुरुवर आपसे मिलकर ऐसा लगा जैसे हम बरसों से आपको जानते हो। जिस दिन विहार हुआ उस दिन मन इतना दुःखा कि पता नहीं कौनसा पहाड़ हमारे ऊपर टूट पड़ा हो। गुरुदेव मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि बहुत अच्छी तरह से मेरा संयम पले। बहुत सारी बातें करनी थी पर समय का अभाव था और आर्यिका चिंतन श्री माताजी भी जब हमारा विहार हुआ तो थोड़ी-सी दूरी पे ही भजन बनाया चलते-चलते ही वे भी पहली बार ही लिखा है बहुत अच्छा दिमाग है पर लिखती नहीं है आप ऐसा हमें आशीर्वाद दे दो गुरुवर हमारा जीवन आपके आशीर्वाद से अतिचार रहित संयम पालन हो यही आशा और आपके स्वास्थ्य का ध्यान रखे हम भी भगवान् से प्रार्थना करते है की आपका स्वास्थ्य, रत्नत्रय और संयम की आराधना अच्छी तरह कुशल रहे भगवान् आपको लंबी उम्र दे हमारी उम्र भी आपको मिले जो आपके सान्निध्य में बहुत सारे शिष्य ज्ञान का आर्जन कर सके। संघस्थ सब साधुओं को नमोऽस्तु वंदामी। लिखने में कोई गलती हुई हो तो क्षमा करे वहाँ रहते हुए भी भूल-चूक माफ कीजिए।

आपकी शिष्या-आ. श्रेय श्री

वैश्विक गुरुदेव आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के व्यक्तित्व-कृतित्व-भविष्य/(सामुद्रिक लक्षण) प्रसिद्ध ज्योतिष-विज्ञानियों की दृष्टि में

शब्द सुमन अर्चिका-साध्वी आर्यिका सुवत्सलमती माताजी

(चाल : फूलों का तारों का....., आधा है चन्द्रमा.....)

ज्ञानी-विज्ञानियों/(ध्यानियों) का, सबका कहना है...
भविष्यवेत्ताओं ने भी जाना/(माना) है...
सारी दुनिया/(वसुधा) में...गुरु/(आप) अद्वितीय है...
'कनकनन्दी' संत अलौकिक है...ज्ञानी-विज्ञानियों...(ध्रुवपद)...

राजा-महाराजा से श्रेष्ठ हो प्रभु...संयम व समता के आप हो विभु...ला-ला-लाऽऽऽ
ध्यान-अध्ययन में लीन रहते हैं...चिंतन-मनन में अनुरक्त रहते (हैं)...
सामुद्रिक लक्षणों से महान् (हैं) गुरु...आध्यात्मिक यात्रा है निरंतर शुरू...
सारी दुनिया में गुरु/(आप) अद्वितीय है...(1)

गज मस्तक में उन्नत विचार आते हैं...उन्नत भाग्य के आप धनी हैं...ला-ला-लाऽऽऽ
सूर्य रेखा कहती (है) अंतःप्रज्ञ हो...हृदय रेखा कहती (है) पावन उदार हो...
विश्व कल्याण की भावना रखते हो...एकला चल के नवाचार करते हो...
सारी दुनिया/(वसुधा) में...(2)

त्रय रेखा अनुशासनप्रियता कहती...मस्त मौला फक्कड़पन प्रखर बुद्धि...ला-ला-लाऽऽऽ
झण्डा रेखा सर्वांगीण विकास बताती...त्रय मस्तक रेखा गुणग्राही/(शोधार्थी) कहती...
प्रकृति प्रेमी शोधी जिज्ञासु वृत्ति...गुण परिचायक वाक्पटु श्रवण शक्ति...
सारी वसुधा/(दुनिया) में...(3)

एकांत साधना व निस्पृह वृत्ति...उन्नत नाक त्रय मस्तक रेखा कहती...ला-ला-लाऽऽऽ
देश-विदेशों में धर्म-प्रचार...शिष्य-प्रशिष्यों से होता प्रचुर
अपने अज्ञान से दुनिया न जाने...गुरु का तप-मन व आत्मबल...
सारी दुनिया/(वसुधा) में...(4)

जीवन रेखा कहे नव दशक शतायु...व्यस्त-मस्त-स्वस्थ्य रहे दीर्घायु...ला-ला-लाऽऽऽ
सत् साहसी हो कहती त्रिशूल रेखा...ओजस्वी-तेजस्वी व्यक्तित्व है देखा...
गुरु रेखा से हमने ये जाना...विदेशों में धर्म प्रचार होना है...
सारी वसुधा/(दुनिया) में...(5)

गाँव का जोगी-जोगड़ा हमारे देश में...अनगाँव का सिद्ध होता विदेशों में...ला-ला-लाऽऽऽ
पद्म रेखा कहती जंगल में मंगल...उपवन होगा भविष्य में मंगल...
राज्य वैभव को आप क्षुद्र मानते...तालु गोल से ब्रह्माण्डीय कहाते...
सारी दुनिया/(वसुधा) में...(6)

राजनीति न्याय अलौकिक गणित ज्ञाता...आधुनिक धर्म-विज्ञान के ज्ञाता...ला-ला-लाऽऽऽ
32 दंत पंक्ति कहे सत्य भावी वाणी...लचीला अंगूठा से सहिष्णु प्राणी...
उन्नत पद कमल से उन्नत विचारी...सारासार ज्ञानी हो अनुभव विज्ञानी...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(7)

साहस धैर्य निष्कंप सिंह वृत्ति...इसका प्रमाण है चौड़ी छाती...ला-ला-लाऽऽऽ
महान् श्रेष्ठ ज्येष्ठ परिष्कृत व्यक्तित्व...मणिबंध रेखा कहे तव कृतित्व...
अंतर्दृष्टि सूक्ष्म दृष्टि गहन अक्ष...आत्म साधना में आप हो दक्ष...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(8)

हस्त मुष्ठि बाह्य तिल कहे समृद्धि...अनिच्छा से हो रही जग प्रसिद्धि...ला-ला-लाऽऽऽ
शिष्य वृंद पाये ज्ञान की श्री वद्धि...साधना के क्षेत्र में उन सबकी सिद्धि...
मनोहर राजाजी की भविष्यवाणी...संभवकुमार की यही कथनी...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(9)

दिग्-दिगन्त में फैले सुयश-कीर्ति...अंत में पाये बोधि समाधि...ला-ला-लाऽऽऽ
ऐसी भावना भाये सुवत्सलमती...गुरु चरणों में मेरी होवे सन्मति...
जुग-जुग जिये गुरु 'कनकनन्दी'...गुरु चरणों में मैं पाऊँ समाधि...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(10)

सूर्य रेख कहती, हो आत्म बलशाली...शनि रेखा कहती, आध्यात्म प्रेमी/(ज्ञानी)
तर्क-वितर्क से कथन करते, सर्वांगीण (वस्तु)/विषय प्रतिपादन करते...
आत्मानुभूति से मौन रहते, अनुभव होने पर भी कथन न करते...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(11)

हृदय-जीवन रेखा मिलकर चलती, निद्रा अवस्था में भी चिंतन शक्ति/(शाली)...
दाँतों का अंतर सद्भाव दर्शाता, चिंतन मात्र से काम स्वयं होता...
अभाव इन्हें न कभी सताता...सहज सुलभता से कार्य सम्पन्न होता...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(12)

छाती के श्वेत केश/(श्रीवत्स चिह्न) 'परिपक्वता' कहते...ब्रह्माण्ड हृदय में समाहित कहते...
मेरुदण्ड दिखाता है प्रचुर चिन्तन...लेखन उससे कम व अल्प कथन...
'हृदय सम्राट' हो सारे विश्व के...हृदय विशालता जाहिर करते...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(13)

गुरु कृपा वर्षा होती तुम पर...मार्गदर्शक, ज्ञानदाता है सुरीश्वर...
सनम्र-सत्यग्राही हो गुरुवर, गुण ग्रहण (का) भाव रहे निरंतर...

अनुभव होने पर लेखन करते, प्रायोगिक ज्ञान से लाभान्वित होते...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(14)

नूतन चिह्न प्रगटते तव काया पर...मानो जैसे प्रकृति करे शृंगार...
रहस्य उद्घाटन अभी न करे हैं, भविष्य-विज्ञानी इसे गुप्त रखे हैं...
सहज-सुलभ होने से करे ना मूल्य, मूढ़मति, अल्पज्ञानी ना जाने मूल्य...
समाधिनंतर रोयेंगे लोग/(जन)...लाखों में कहूँगा यह अटल सत्य...

सारी वसुधा/(दुनिया) में...(15)

कनकनन्दी गुरुवर का संघ है आला/(निराला)

प्रस्तुति-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती माताजी

(चाल : जहाँ डाल-डाल पर.....)

जहाँ देश-विदेश के ज्ञानी-विज्ञानी, पाते ज्ञान की धारा...
वह संघ कनक का आला/(निराला)...2

जहाँ अध्ययन-चिंतन-मनन-ध्यान का, रहता नित्य बसेरा...
वह गुरुकुल है अलबेला...2
जय सूरीवरम्/जय ऋषिवरम्/जय यतिवरम्/जय गुरुवरम्...(स्थायी)...

जहाँ छुल्लक ऐलक मुनि आर्यिका...करते अध्ययन नारा...जय हो गुरु-2
जहाँ भक्त शिष्यगण आकर करते...शोध-बोध है न्यारा...2
जहाँ समता शांति वाणी संयम का...नित प्रति लगता डेरा...
वह संघ कनक का आला/(निराला)...वह गुरुकुल है अलबेला...(1)...

जहाँ राग-द्वेष-ईर्ष्या-तृष्णा को...मिलता नहीं सहारा...जय हो गुरु-2
जहाँ ख्याति-लाभ-पूजा-प्रसिद्धि को...मिलता नहीं आसरा...2
एकांत-मौन की साधना से गुरु...पाते शांति अपारा...
वह संघ कनक का आला/(निराला)...वह गुरुकुल है अलबेला...(2)...

जहाँ अनुभव-ज्ञान से गुरुवर निशिदिन...करते शिष्य उपकारा...जय हो गुरु-2
जहाँ दुःखी-अज्ञानी जीव आकर...पाते सुख-ज्ञान सारा...2
जहाँ ज्ञान आराधना से निराकुल हो...पावे समाधान सारा/(प्यारा)...
वह गुरुकुल है अलबेला...वह संघ कनक का आला/(निराला)...(3)...

जहाँ साधकगण 'सुवत्सलता' से...करे आचरण न्यारा...जय हो गुरु-2
परस्परग्रहो जीवानाम् से...व्यवहार/(समाचार) करते प्यारा...2
वात्सल्य भाव की बहे नर्मदा...ऐसा संघ निराला...
वह संघ कनक का आला/(निराला)...वह गुरुकुल है अलबेला...(4)...

आ. श्री के दीक्षा दिवस 5 फरवरी के उपलक्ष्य में :

''गुरु वंदन/स्तवन''

(आचार्य कनकनन्दी जी के गुणों का वर्णन)

-क्षुल्लिका सुवीक्षमती

(राग : मीठो-मीठो बोल.....)

गुण गाओ सब गुण गाओ...कनकनन्दी जी के गुण गाओ।
दृढ़ संकल्पी करूणा निधान...प्रबल प्रखर व्यक्तित्ववान्।। (ध्रुव)

युवावय में दीक्षा है धारी...भोग विषय से सर्वथा विरागी।
सत्य-तथ्य में जिज्ञासु भारी...स्वयं को पाने की मन में है ठानी।।
समय शक्ति व बुद्धि का अपव्यय...तुम्हें न एक पल भी भाता है।
बाल अवस्था से ही यतिवर का...धैर्य व साहस से नाता है।।
श्रद्धा सहित...भक्ति सहित...मैं वंदन करूँ तव पद युगल।
गुरुवर मेटो मिथ्या भरम...गुण गाओ...(1)...

अपने-पराये का भेद न धरे...निष्पक्ष भाव से सत्य ही वरे।
सर्वजीव सुख-शांति को पाये...अन्त्योदय की भावना भी भाये।।
दुगुर्णों से दूर ही रहते...प्रलोभनों से मोहित न होते।
विघ्न बाधाओं में अविचल रहते...आत्मबल युत आगे ही बढ़ते।।
कीर्तन करूँ...स्तुति करूँ...मैं वंदन करूं...(2)...

स्व-मूल्यांकन स्वयं ही करते...अन्य की उपेक्षा प्रतीक्षा न करते।
न्यायशील अनुशासनप्रिय गुरुवर...भाव विशुद्धि को केन्द्र में रखते।।
भौतिकता की चकाचौंध परे...संकीर्ण-स्वार्थ अनुदारता से परे।
स्व-हित सह पर-हित में भी रत...अमिट गुणों की वाँछा ही करे।।

पूजन करूँ...अर्चन करूँ...मैं वंदन करूँ...(3)...

प्रोत्साहन की जादुई क्षमता से...अयोग्य में योग्यता जगाते हैं।
शरणागत वत्सल गुण युत सूरीवर...भटके हुए को राह सुझाते हैं।।
कलिकाल में भी समता का है साथ...मानव रूप में महामानव है आप।
आपकी निश्चल छवि को लखकर ही...मिट जाता है सकल दुःख संताप।।
आदर सहित...सम्मान सह...मैं वंदन करूँ...(4)...

अनुभव ज्ञान में आपका न सानी...चिंतन युत स्व-आत्मा के ध्यानी।
अद्भुत वैचारिक क्षमताधारी...गूढ़ रहस्यों के भी विज्ञानी।।
निस्पृह मौनी अयाचक वृत्ति...सहज सरल आचार में प्रवृत्ति।
परम आदर्श तुम ही हो मेरे...तव सम उत्कृष्ट भावना हो मेरी।।
आनंद से...शुभ भाव से...मैं वंदन करूँ...(5)...

श्रमण गुरुवरश्री कनकनन्दी जी की सत्यवाणी

सृजयित्री-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : छोड़ों कल की बातें.....)

छोड़ों अज्ञान की बातें...अज्ञान की बात अनादि...
श्रमण गुरुवर कनक की...सुनो सत्यवाणी...
हे! वैश्विकवासी...हे! जगत्वासी...(ध्रुव)...

अपने पुरातन भ्रमों को...हम तोड़ चुके हैं...
क्यों देखे वह भूतकाल...जो छोड़ चुके हैं...
चाँद मंगल तक जा पहुँचा है...आज जमाना...
हमें तो मोक्ष महल तक...है पहुँचना...
नया शोध है, नया बोध है...बनना है आतमज्ञानी...हे! वैश्विक...(1)...

कनक सूरी मन से परे...सत्य ही सोचे...
वाद-विवाद-संक्लेश...सब छोड़ चुके है...
विभाव भावों से भी इनका...नहीं है नाता...
आत्म स्वभाव में ही सतत...रमण करे है...
सरल स्वभावी वैज्ञानिक है...ये गुरु उदारभावी...गुरु आतमज्ञानी...(2)...

आओ हम सब आत्म तत्त्व...'मैं' को ही जाने...
अपने द्वारा अपने में ही...'मैं' को पाये...
आदिनाथ से वीर प्रभु की...इस भूमि पर...
अपनी अनंत आत्मशक्ति...को जगाये...
नवाचार है नव दृष्टि है...बनेंगे आतमज्ञानी...हे! वैश्विकवासी...(3)...

अनेकांत का डंका बजाने वाले वैश्विक गुरु : कनकनन्दी सूरी

सहायक-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर जी
श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : जिस गली में तेरा घर.....)

जिस धरा पर अनेकांत की जय हुई वह धरा नागपुर की भूमि बनी।
एकांत (का) निरसन जहाँ पर किया अनेकांत का डंका कनक का बजा।। (ध्रुव)

उन्नीस सौ सत्यासी (1987) में यात्रा (पंच) तीर्थों की
चतुर्विध संघ साधु प्रायः पच्चीस (25) थे।
मार्ग में नगर नागपुर जब मिला
शिविर एकांत मत का वहाँ था लगा
गाड़ी भर साहित्य का बिक्री केन्द्र था
परवार जिनालय में मेला सा लगा।। जिस धरा पर...(1)

साहित्य में सैद्धांतिक परिवर्तन से
पीड़ा कुन्थु-कनक श्रीसंघ को हुई
इसके निरसन हेतु त्वरित निर्णय लिया
सम्मेद यात्रा पे जाना स्थगित किया
चाहे चातुर्मास यहाँ हमें करना पड़े
मूल सिद्धांतों में फेर (हम) करने न दे।। जिस धरा पर...(2)

जिनागम सुरक्षा (हमारा) प्रथम धर्म है
इसी हेतु श्रमणों के (नित) प्रवचन हुए
मंच से एकांतियों को आह्वान किया

चतुर्विध संघ को भी जागृत किया
'कनक' तर्कों से उनकी पराजय हुई
उच्च न्यायालय में भी पराजय हुई।। जिस धरा पर...(3)

आचार्य कनकनन्दी जी ससंघ के आदर्श

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव की स्व-प्रवृत्ति/संघ पद्धति

रचयित्री-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : ओ रात के मुसाफिर....., परवर दिगारे आलम....., मधुवन के मंदिरों में....., मुझे इश्क है तुझी से.....)

कनकनन्दी गुरुवर...जग से हैं ये निराले...
उनके अनुभवों से...लाभान्वित है सारे...(ध्रुवपद)...

संक्लेश-मनमुटाव को...संघ में न है स्थान...
ख्याति-प्रसिद्धि-याचना...लाभ का न है काम...

सहज-सरल वृत्ति...न विभावों में प्रवृत्ति...
शांत-गंभीर वृत्ति...गुरुदेव की प्रकृति...कनकनन्दी...(1)...

कोई आये तो है स्वागत...जाये तो है आशीष...
विपरीत में तटस्थ...समता का भाव नित्य...

अध्यात्म की है चर्चा...मैं को पाने की वार्ता...
किसी का न मैं हूँ कर्त्ता...स्व-कर्म का ही भर्ता...कनकनन्दी...(2)...

बड़े-छोटे का न भेद...मत-पंथ का न भेद...
क्षुद्र भावों का उच्छेद...वसुधैव कुटुम्बकम्...

वैज्ञानिक हैं संत...नित शोध-बोध करते...
विश्लेषण आत्मा का ही...दुःख-शोक-क्लेश हरते...कनकनन्दी...(3)...

चक्री से भी महान्...देवेन्द्र से भी पूज्य...
सुवत्सल भाव मुख्य/(सत्वेषु मैत्री भाव)...मुक्ति सुख ही लक्ष्य...

गुरुवर मेरी मुस्कान...गुरुदेव ही आधार...
स्वाभिमान आप ही हो...मम प्राण प्यारे गुरुवर...कनकनन्दी...(4)...

कनकनन्दी गुरुवर की जिज्ञासा व समाधान पद्धति

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : बहुत प्यार करते है.....)

कनकनन्दी गुरुवर है आध्यात्मिक श्रमण।
सभी विधा के ज्ञानी2 गुरु भगवन्।। (ध्रुव)

जिज्ञासु भव्य जन मेरी बात सुनो।
पंथ-मत से परे जिज्ञासा करो।
क्रियाकाण्ड से परे2 ही प्रश्न करो।। (1)

आगमनिष्ठ प्रश्न हो पर उचित समय न हो।
सन्दर्भ न हो तो प्रश्न भी न करो।
सन्दर्भ समय हो तो2 ही उत्तर पाओ/(गहो)।। (2)

अध्यात्म योगी का समय मूल्यवान्।
मूल्यहीन प्रश्न कर न करो मूल्यहीन।
अनुचित प्रश्न पर2 रखते है मौन।। (3)

सामान्य जिज्ञासा के समाधान चाहो।
सूरिकृत ग्रंथों का पठन चिन्तन करो।
सभी विधा के ग्रंथों का2 किया है सृजन।। (4)

गहन व सूक्ष्म/(वैज्ञानिक विद्वानों के) प्रश्न होने पर।
प्रखर प्रज्ञा अनुभव से करते समाधान।
आत्मा का शोध ही है2 परम विज्ञान।। (5)

बच्चों से भी निर्मल भाव धारी गुरुवर

-आ. सुवत्सलमती

(चाल : बच्चे मन के सच्चे.....)

गुरुवर! मन के सच्चे, सारे जग की आँखों के तारे।
ये है अलौकिक आध्यात्मिक, विज्ञानी गुरुवर न्यारे।। गुरुवर.....(धृ.)

स्वाध्याय करे चिन्तन करे, कर्मों के संग युद्ध करे।

कर्मनिर्जरा करके गुरुवर, मैं/(स्व) में ही रमण करे।
'मैं' में रहकर मैं को जाने, 'मैं' का ही अनुभव करे।। गुरुवर...(1)

नवजात शिशु सम दिगम्बर, मन से भी है निराडम्बर।
ख्याति पूजा से दूर रहकर, आत्म प्रभावना ही करे।
इनकी निस्पृह वृत्ति देखकर, जग नतमस्तक होवे।। गुरुवर...(2)

स्व-संवेदन भाव धरे, दया करुणा मन में धरे।
पर की पीड़ा देख सुनकर, इनका मन भी रूदन करे।
आत्म स्वरूप में रमण करे, स्व-वात्सल्य भाव धरे।। गुरुवर...(3)

क्रोध व मान का काम नहीं, मोह-लोभ का नाम नहीं।
विभाव भावों से दूर रहकर, आत्म साधना में लीन रहे।
मौन व एकांत में रहकर, विश्व कल्याण भाव धरे।। गुरुवर...(4)

शान्ति निकेतन/आनंदधाम है आचार्यश्री कनकनन्दी जी का आध्यात्मिक विश्वविद्यालय

सृजयित्री-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : आपकी नजरों ने.....)

है कनक गुरुकुल जगत् में...शान्ति निकेतन विद्यालय...
आध्यात्मिक विश्वविद्यालय...आनंद का धाम है...
है कनक गुरुकुल...(स्थायी)...

गुरु मुझे स्वीकार हैऽऽऽ आपका अनुशासनऽऽऽ
अनुशासन में रहकर हीऽऽऽ करूँ आत्म शासनऽऽऽ
आपकी निश्रा में रहकरऽऽऽ मिल रहा है सुख मुझेऽऽऽ
है कनक गुरुकुल...(1)...

विश्वविद्यालय के आचार्यऽऽऽ कनकनन्दी सूरीऽऽऽ
पठन पाठन कराते हैऽऽऽ पाठक व श्री सूरीऽऽऽ
कनक निकेतन में शान्तिऽऽऽ सतत मिलती है मुझेऽऽऽ
है कनक गुरुकुल...(2)...

अध्यात्म विश्वविद्यालय मेंऽऽऽ सभी विधा का ज्ञान हैऽऽऽ
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तकऽऽऽ सूक्ष्म-गहन ज्ञान हैऽऽऽ
स्वात्मा के ज्ञान से अबऽऽऽ ध्यान 'मैं' का ही धरूँऽऽऽ
है कनक गुरुकुल...(3)...

देश-विदेश के सुविज्ञजनऽऽऽ आकर सूक्ष्म अध्ययन करेऽऽऽ
ज्ञान ज्योति प्रकाशित होऽऽऽ प्रचार विश्व में करेऽऽऽ
वात्सल्य धाम गुरु काऽऽऽ सदा ही जयवन्त हैऽऽऽ
है कनक गुरुकुल...(4)...

धैर्यशाली न्यायवन्तऽऽऽ भाग्यवन्त है गुरुऽऽऽ
आत्मा से परमात्माऽऽऽ बनने का बोध है शुरूऽऽऽ
सरल सहज आनंदधामऽऽऽ मिल रहा आनंद मुझेऽऽऽ
है कनक गुरुकुल...(5)...

कनक गुरु की गीताञ्जली की महिमा

-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : आने से जिसके आए बहार.....)

आने से जिनकी आयी बहार...काव्य/(गीत) गंगा की उड़ी फुहार/(गुलाल)
बड़ी मन भावन हैऽऽऽ कनक गीताञ्जली...
मधुर व गहन हैऽऽऽ विविध गीताञ्जली.../(नाना गीताञ्जली)।। (ध्रुव)

गनुगुनाते हम सबऽऽऽ गुरु भक्ति में गाते है गीत...
हो... मन मयूर नाचेऽऽऽ सुनकर भाव पूर्ण ये गीत...
गुण गायेऽऽऽ गुण पायेऽऽऽ महिमा निराली है...कनक गीता...(1)...

पूर्व भव में गुरु नेऽऽऽ सातिशय पुण्य कमाया...
हो... आध्यात्म भावों सेऽऽऽ सातिशय फल है पाया...
ग्रंथ रचे...काव्य रचेऽऽऽ लेखनी अद्भुत है...कनक गीता...(2)...

अतिशय क्षेत्र सीपुरऽऽऽ काव्य गंगा हुई प्रवाहित...
होऽऽऽ गीताञ्जली सरिता/गंगाऽऽऽ बहकर देश-विदेश में फैली...

आत्म शक्ति...स्व शक्तिऽऽऽ मैं (निज) का बोध कराती है...कनक गीता...
/(ब्रह्माण्ड दिखाती है...)...कनक गीता...
/(अर्द्धशतक ऊपर (63) चली)...कनक गीता...(3)...

विशेष जानने योग्य

गीताञ्जली की कुछ कविताओं के नीचे दिये गये संदर्भ आचार्य पद्मनन्दी के अनुरोध के कारण व कुछ गाथा, श्लोक के आधार पर बनी कविताएँ वैज्ञानिक पारसमल अग्रवाल के कारण है। दोनों अनुरोधकर्त्ता आचार्य कनकनन्दी से शिक्षा प्राप्त शिष्य है।

आचार्यश्री कुन्थुसागर जी का आशीर्वाद आ. कनकनन्दी के साहित्य हेतु

।।श्री चिंतामणी पार्श्वनाथाय नमः।।

श्री गणाधिपती गणधराचार्य

कुन्थुसागर विद्या शोध संस्थान

हातकणंगले - रामलिंगरोड, श्री क्षेत्र कुन्थुगिरी, मु.पो. आळते-416109

ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर

दिनांक : 24.12.2016

श्री

आचार्यश्री कनकनन्दी जी महाराज को मेरा प्रति नमोस्तु।

आपका रत्नत्रय अच्छा होगा मेरा भी अच्छा है। आपका समाचार आया सभी विषय ज्ञात हुआ।

आपकी पुस्तकें वर्तमान में ज्ञान प्राप्त कराने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। इन पुस्तकों को पढ़ करके सहज ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिनागम के अनुसार ज्ञान-विज्ञान व तत्त्वों का समावेश हैं। जो भी पढ़ता है उसको जैनागम के अनुसार विज्ञान प्राप्त कर लेता है। आपका प्रयत्न अत्यंत सराहनीय है। आप इसी प्रकार प्रयत्न करते रहिये ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

आप अपना स्वास्थ्य अच्छा रखें।

-आचार्य कुन्थुसागर

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	निस्पृही आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुवर की बहुगुणधारी विशेषताएँ	2
2.	वैज्ञानिक आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुवर श्रीसंघ गुरुकुल की सकारात्मक गतिविधियाँ व वैशिष्ट्य	5
3.	धर्म पर आने वाले संकट निवारण हेतु 1978 से प्रयासरत निस्पृह आ. कनकनन्दी गुरुदेव	6
4.	आ. श्री कनकनन्दी गुण कीर्तन	8
5.	आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव के गुणानुवाद	9
6.	आ. कनकनन्दी : मेरे अनुभव में	10
7.	वैश्विक गुरु श्रेष्ठ आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के व्यक्तित्व-कृतित्व -भविष्य/(सामुद्रिक लक्षण) प्रसिद्ध ज्योतिष विज्ञानियों की दृष्टि में	11
8.	कनकनन्दी गुरुवर का संघ है आला/(निराला)	14
9.	गुरु वंदन/स्तवन	15
10.	श्रमण गुरुवर श्री कनकनन्दी जी की सत्यवाणी	16
11.	अनेकांत का डंका बजाने वाले वैश्विक गुरु : कनकनन्दी सूरी	17
12.	आ. कनकनन्दी जी ससंघ के आदर्श	18
13.	कनकनन्दी गुरुवर की जिज्ञासा व समाधान पद्धति	19
14.	बच्चों से भी निर्मल भाव धारी गुरुवर	19
15.	शांति-निकेतन/आनंद धाम है आ. श्री कनकनन्दी जी का आध्यात्मिक विश्वविद्यालय	20
16.	कनक गुरु की गीताञ्जली की महिमा	21
	निस्पृह साधक (आ. कनकनन्दी)	
1.	अध्यात्म के बीजांकुर	26
2.	आचार्य द्वय का गुण स्मरण व सान्निध्य	30
3.	कनकनन्दी गुरुवर की यशोगाथा व बाबानगर यात्रा	31

4.	मुजफ्फरनगर व दिल्ली में हुई क्रांति	33
5.	मेरी प्रवृत्ति-निवृत्ति	35
6.	मेरी शोध-बोध-गुणग्राही पद्धति-दुर्गुणी से भी मैं सीखता हूँ सुगुण	38
7.	आत्मविश्वास V/S अंधविश्वास/(अहंकारी/ममकारी)	39
8.	दृढ़ता बनाम मूढ़ता	45
9.	निश्चय-व्यवहारमय मेरा मोक्षमार्ग व मोक्ष	51
10.	क्या है परम परतंत्रता व परम दुःख	56
11.	क्षण-क्षण करणीय-अकरणीय	60
12.	मैं स्वयं में मस्त-व्यस्त, अतः परहेतु अस्त-व्यस्त-संत्रस्त नहीं	61
13.	**आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के शोधपूर्ण साहित्य**	69
14.	विश्वकल्याणी जिनवाणी माँ	80
15.	विज्ञान व गणित से प्राप्त मुझे अनेक लाभ	80
16.	निस्पृह संत वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के पूर्व शोध-बोध	82
17.	आधुनिक विज्ञान से परे जिनागम विज्ञान	83
18.	विज्ञान व गणित से प्राप्त मुझे अनेक लाभ	84
19.	संकल्पपूर्वक भावात्मक-कल्पना/(चित्र) से होता है लक्ष्य प्राप्त	86
20.	पावन भाव ही धर्म, विभाव ही अधर्म	96
21.	सामाजिक जन V/S अलौकिक जन/(श्रमण)	97
22.	आध्यात्मिक जन-संत की अलौकिक निस्पृह वृत्ति तो भी वे न होते पलायनवादी या परपीड़क	99
23.	आध्यात्मिक अलौकिक बाल ब्रह्मज्ञानी निस्पृह संत आचार्य कनकनन्दी गुरुवर	104
24.	निस्पृह संत आ. श्री कनकनन्दी गुरुदेव की शोध-बोध प्रवृत्ति	105
25.	'अहंकारी' व 'सोऽहं' भावी करते अधिक स्व (मैं) की चर्या व चर्चा!	106
26.	आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव के प्रति मुनि चन्द्रगुप्त की भावाभिव्यक्ति	116

27.	मेरे आराध्य-प.पू. वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव	117
28.	आचार्य कनकनन्दी जी की गुणवत्ता	123
29.	आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का विद्यार्थी रूप	124
30.	आ. श्री कनकनन्दी गुरुदेव की विशेषताएँ युक्त 'आरती'	124
31.	बहुगुणधारी श्री कनकनन्दी गुरुवर की आरती/वंदना	125
32.	अंतर्ज्ञान का मैं सदुपयोग व संवर्द्धन करूँ	126
33.	भीड़तंत्र/(लौकिक जन) से परे मौलिक व स्वतंत्र बनूँ-I	134
34.	मैं भीड़तंत्र व सामाजिकता से परे आध्यात्मिक बनूँ-II	135
35.	स्व-मैनेजमेंट के मेरे अनुभूत-सूत्र	136
36.	मेरे सकारात्मक भावों का स्मरण-आह्वान-संवर्द्धन	138
37.	मेरे लिए आत्मकल्याण ही सर्वकल्याण अन्य सभी आनुसंगिक	139
38.	गुण कथन करूँ दोष कथन में मौन धरूँ	140
39.	महान् विचार व कल्पना अयोग्य हेतु अकथनीय	149
40.	स्व-अनंत वैभव ही मेरा लक्ष्य	155
41.	स्व-अनुकूल सभी को बनाना चाहते हैं : अज्ञानी-मोही-स्वार्थी	161
42.	'ममकार'-'अहंकारी' ही संपूर्ण पाप-दुःख, 'अहं' संपूर्ण धर्म-सुख	162
43.	द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार करूँ : ध्यान-अध्ययन-श्रमण धर्म पालन	168
44.	मैं हूँ मोह-क्षोभ, मान-अपमान से परे मोक्ष पथिक	173
45.	बीज से मुझे प्राप्त शिक्षा	175
46.	आध्यात्मिक जन-संत की अलौकिक निस्पृह वृत्ति	176
47.	मेरे आत्म विकास के सूत्र (नियम/प्रतिज्ञा)	178
48.	अनंत आत्म वैभव बिना गर्व आदि क्यों करूँ?	180
49.	मेरी (आ. कनकनन्दी की) शिक्षा पद्धति-सर्वांगीण उन्नति	181
50.	दादा गुरु आ. कनकनन्दी हेतु पोता शिष्य मुनि जयकीर्ति का पत्र	183
51.	निस्पृह संत आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुवर की आरती	184

निस्पृह साधक (आचार्य कनकनन्दी) अध्यात्म के बीजांकुर

सृजेता-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : हे दीनबन्धु.....)

अध्यात्म योगी वैश्विक विलक्षण ज्ञानी।
स्वाध्याय तपस्वी अलौकिक समता योगी।।

अनेकांत तव प्राण है स्याद्वाद (मय) वाणी।
देशी-विदेशी मनीषी बन रहे ज्ञानी।। जय हो2 जय गुरुदेव

जन्म से लेकर किशोर अवस्था तक

उन्नीसौ चौपन (1954) में भारत देश में।
अद्वितीय बालक जन्मा पुण्य स्थल में।

पूत के लक्षण पालने में ही दिखे थे।
ज्ञान की 'गंगा' बहायेगा भविष्य काल में।।

विविध प्रतिभाओं का धनी विलक्षण था।
ज्ञान वृद्धि करने में वह मग्न रहता था।।

बाल्यकाल से ही वह कल्पनाशील था।
अंतर्राष्ट्रीय नेता, वैज्ञानिक या महान् संत बनूँगा।।

परीक्षा हेतु ही कभी न अध्ययन किया।
विषय-वस्तु समझने हेतु गहन चिंतन किया।।

जिज्ञासु प्रवृत्ति इनकी बाल्यकाल से रही।
गूढ़ हजारों प्रश्न का समाधान चाहती थी।।

मैं कौन हूँ? संसार क्या? भगवान् स्वरूप क्या?
(जीव) अन्य को दुःख देता क्यों? स्वयं दुःखी क्यों?

अन्याय-अत्याचार भ्रष्टाचार लोग क्यों करे?
समाधान हेतु सब विधा के ग्रंथ हैं पढ़े।।

तार्किक बुद्धि इनकी बाल्यकाल से रही।
मनन-चिंतन-शोध करे जब तक न उत्तर मिले सही।।

बुद्धि लब्धि का धनी होने से परिश्रम न करता था।
पाठशाला में वह प्रथम श्रेणी में आता था।।

दया सेवा परोपकार की जन्म से घुटी मिली थी।
इसी हेतु ही बालक द्वारा सबकी सेवा होती थी।।

दयावन्त परोपकारी की घटना मैं सुनाऊँ।
मार्ग चलते दयालुता की मैं बात बताऊँ।।

एक बुढ़िया लकड़ी का गट्ठर ले चली।
उसे देख बालमन में करुणा है जगी।।

माई! इस अवस्था में काम क्यों करो?
जवान बेटा यक्ष्मा (T.B.) पीड़ित अतः काम मैं करूँ।।

सुनकर कोमल हृदय द्रवित है हुआ।
उसके घर पे जाकर सेवा है खूब किया।।

बालक की सेवा ने रंग है लाया।
बुढ़िया का बेटा अब स्वस्थ है हुआ।।

बालक का प्रकृति प्रेम

प्रकृति प्रेमी है बालक बाल्यकाल से।
नारियल का वृक्ष लगाया अपने आँगन में।।

एकदा पाठशाला से आकर देखा विचित्र नजारा।
वृक्ष पर किसी ने माटी को था डाला।।

बालक को यह देखकर क्रोध था आया।
माता से रोष से पूछा किसने ये किया।।

पिताजी मूकदर्शक बने हुए थे।
शांत होने पर कहा ये मैंने किया था।।

पिता का उत्तर सुन कोमल हृदय (हुआ) आहत।
गलती स्वीकार करके पश्चात्ताप किया बहुत।।

कभी क्रोध न करूँगा नियम किया तत्क्षण।

देर रात तक किया था उसने रूदन।।

बालक का धैर्य व निर्णय क्षमता

(चाल : तुम दिल की.....)

पैतृक भूमि के लिए सरकारी नोटिस आया था।
उसे देखकर माता-पिता का, मन घबराया हुआ था।।

पुनः नोटिस आने पर बालक ने दृढ़ता से कहा।
यह जमीन हमारी है अधिकार भी हमारा है।।

ना हम कोर्ट में आयेंगे ना आदेश पालेंगे।
सरकारी नोटिस को तत्काल फाड़ दिया है।।

दूसरी घटना

आठवीं कक्षा में जब वह बालक पढ़ता था।
दो सगे भाईयों को आपस में लड़ते देखा था।।

कुछ दिनों के बाद जब, वह स्कूल से आ रहा था।
देखा पुलिस सुपरिटेंडेंट कुछ पूछताछ कर रहा है।।

उनकी बात सुनकर कहा मैं घटना का प्रत्यक्षदर्शी हूँ।
रुपया लेकर निर्दोष को दोषी तुम बताते हो।।

यह केस यहाँ पर ही डिसमिस हो जाये।
नहीं तो मैं आपको यहाँ से जाने नहीं दूँगा।।

बालक का साहस देखकर, एफ.आई.आर. को फाड़ा।
इस प्रकार अन्याय के विरुद्ध, वह सदा ही लड़ता था।।

तीसरी घटना

ग्यारहवीं कक्षा में वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक बना।
विशाल जिला स्तरीय शिविर में भाग भी लिया।।

संघ की पत्रिका में बीड़ी का विज्ञापन देखकर।
पत्रिका में यह विज्ञापन क्यों? प्रचारक से प्रश्न किया।।

संघ कार्य में धन की, आवश्यकता होती है।

इसलिये विज्ञापन दिया कार्य संपादन हेतु।।

संघ प्रमुख कार्यकर्ताओं से प्रश्न किये हैं तार्किक।
सत्संस्कार संघ उद्देश्य से यह विपरीत काम है।।

अंत में बालक की जीत हुई विज्ञापन को हटा दिया।
तर्कणा शक्ति के कारण अनेक स्थान में विजय हुई।।

4. सहपाठी के दादाजी, एक पुस्तक के लेखक थे।
उनकी किताब पढ़कर कुछ प्रश्न मन में उठे थे।।

सहपाठी से समाधान न हुआ तो दादाजी के पास गये।
सत्यग्राही, सत्साहस, विनम्रता से प्रश्न पूछे।।

लेखक भी कुछ समर्पित उत्तर न दे पाये।
अपनी लिखी बात को भी साबित न कर पाये।।

5. कक्षा निरीक्षक अचानक परीक्षण हेतु कक्षा में आये।
अंग्रेजी में ऊँट पर भाषण देने को बच्चों को कहे।।

बालक ने ही दस मिनिट तक धारा प्रवाह भाषण दिया।
भाषण सुनकर निरीक्षक व शिक्षक भी प्रसन्न हुये।।

'ग्राम उत्तम है' इस विषय पर भाषण का अवसर मिला।
विभिन्न श्लोक, पर्यावरण दृष्टि से ग्राम श्रेष्ठ सिद्ध किया।।

सभी ने प्रसन्न होकर अति उत्साह बढ़ाया था।
एक पुस्तक व दर्पण पारितोषिक प्राप्त किया।।

बालक की तात्त्विक दृष्टि में सत्य ही परमेश्वर है।
समता की साधना व शांति ही प्राप्य है।।

इन सबके लिए केवल, ज्ञान ही आधार है।
परम सत्य को पाना ही मेरा परम लक्ष्य है।।

संगठन से शांति स्थापन

6. किसी कारण से जन्म ग्राम दो गुट में विभक्त हुआ।
एक-दूसरे के सुख-दुःख से किसी का न नाता रहा।।

स्नेह भावना से ओत-प्रोत बाल मन आहत हुआ।
ग्राम में एकता करने का मन में शुभ संकल्प किया।।
अपने अथक प्रयास से ग्राम में संगठन किया।
पूर्ववत् प्रेम संगठन कर वैर-विरोध दूर किया।।
विभिन्न धर्मस्थल-पर्यटन स्थल-ऐतिहासिक अनेक स्थल।
सत्य प्राप्ति हेतु परिभ्रमण कर सम्मेदशिखर जी पहुँचे।।
विमल सिन्धु के दर्शन करके अमूल्य जीवन धन्य किये।

आचार्य द्वय का गुणस्मरण व सान्निध्य

(आद्य मार्गदर्शक गुरु आचार्य विमलसागर जी गुरुदेव व आचार्य भरतसागर जी आचार्य द्वय का सान्निध्य मध्य-मध्य में 1975 से 1989 तक प्रायः 7 वर्ष। आ. भरतसागर जी गुरुदेव के साथ अंतिम मिलन 2004 नरवाली (राज.) में हुआ।)

-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : कोई दिवाना कहता है.....)

निमित्तों के ज्ञाता थे विमल सिन्धु दयासागर।
आप्त-आगम के अनुगामी गुणी वात्सल्य रत्नाकर।।
भेंट श्रद्धा सुमन करते तेरे चरणों में हे योगी।
हृदय से आपको वंदन करे सन्मार्ग दिवाकर।।
वाणी भूषण! विमलनंदन! तेरा गुणगान क्या गाऊँ।
गुरु उपसर्ग के जेता तेरी समता को मैं ध्याऊँ।।
याद आये भरत सिन्धु तेरी मूरत तेरी करुणा।
तेरे गुण बाँध लू जिसमें ऐसे जड़ शब्द ना पाऊँ।।
कनक गुरु के उपकारी मार्गदर्शक विमल सिन्धु।
ज्ञान के हो भण्डारी शिक्षा-दीक्षा सहायक हो।।
सहस्राब्दि महोत्सव में दीक्षा में बेलगोला में।
विमल सिन्धु का सान्निध्य सोनागिरी शिखरजी में।।
ज्ञान दाता हितैषी हैं शंका निवारण कर्त्ता।

प्रोत्साहक भरत सिन्धु सस्नेह आशीष दाता।।

बाहुबली प्रतिष्ठा में धर्मस्थल के महोत्सव में।
पुनः सोनागिरी में मिलन उन्नीसौ नवासी (1989) में।।

(चाल : जय हनुमान....., तुम दिल की.....)

विमलसूरी का आदेश हुआ श्रीसंघ को समयसार पढ़ावो।
द्रव्य संग्रह सहित दिन में दो-दो बार पढ़ाया।।

विमल गुरु व भरत सिन्धु ने कलिकाल समंतभद्र कहा।
आर्षमार्ग रक्षा हेतु आशीष दिया, ग्रंथ रचना हेतु आदेश किया।।

विश्व विज्ञान रहस्य, जिनार्चना द्वय, पुण्य पाप मीमांसा निमित्त उपादान।
अनेकांत सिद्धांत आदि की रचना तव आशीष से पूर्ण हुई।।

वात्सल्य रत्नाकर में लेख भी छपे ग्रंथ का संशोधन भी किया।
गुरु भरत सिन्धु के आदेश से सोनागिरी में आंशिक संशोधन किया।।

गुरु द्वय के पावन आशीष से उनके आदेश निर्देश से।
साहित्य लेखन प्रारंभ हुआ संप्रति (काल) में सतत हो रहा।।

पूज्य गुरुद्वय के श्री चरणों में, मेरा त्रय भक्ति से युक्त।
उन सम समता-शांति पाने नवकोटि से विनम्र प्रणाम।।

कनकनन्दी गुरुवर की यशोगाथा व बाबानगर यात्रा

(चाल : मेरे देश की धरती.....)

गुरु कनकनन्दी की यशोगाथा व अयाचक वृत्ति गुरु कनकनन्दी कीऽऽऽआऽऽऽओऽऽऽ

पाँच फरवरी उन्नीसौ इक्कासी को गोमटेश्वर बाहुबली में।
प्रायः द्विशतक साधु-साध्वी व सहस्त्रों नर-नारी थे।।

कुंथुसागर दीक्षादाता बहु श्रमणजन अनुमोदक थे।
मुनि कनकनन्दी अभिधान हुआ श्रमण संघ ने पाया रत्न।।...गुरु...(1)...

ग्रीष्मकाल प्रवास में अकलूज धर्म नगरी में।
कुंथुगुरु ने लिखकर बताया कनकनन्दी मेरा हिरा है।।

गुरुदेव ने मन में निश्चय किया मैं हिरा बनके दिखाऊँगा।
अपने ध्यान-अध्ययन से स्व को धर्मरत्न बनाया।।...गुरु...(2)...

बाल्यावस्था से ही इनको, अध्यापन कला अवगत है।
इस योग्यता को देखकर, गुरु ने उपाध्याय पद दिया।।

प्रायः (300) तीन सौ साधु-साध्वी को अध्ययन कराया है।
देश-विदेश के विद्वानों को धर्म का मर्म समझा रहे।।...गुरु...(3)...

सरस्वती के प्रज्ञा पुत्र अभिक्ष्णज्ञानोपयोगी।
परीषह जयी सहनशील, अयाचक इनकी वृत्ति।।

समनेवाड़ी के वर्षायोग में, ज्ञानामृत वर्षा हुई।
देशभूषण व कुंथुसूरी ने, 'सिद्धांत चक्री' पदवीं दी।।...गुरु...(4)...

कुंथु गुरुवर मानस्तंभ प्रतिष्ठा हेतु मुंबई विहार किया।
कुछ साधु-साध्वी स्वेच्छा से कनकनन्दी गुरु के साथ रहे।।

संघ विहार करते हुए विजापुर से खउटखोप पहुँचा।
महत्ती प्रभावना संघ ने की धार्मिक शिविर भी लगा।।...गुरु...(5)...

हे गुरुदेव! करबद्ध प्रार्थना बाबानगर यात्रा पे चले।
संघ की भावना लखकर गुरुदेव ने विचार किया।।

विहार हेतु न (मैं) याचना करूँ न किसी से सहायता मांगू।
उपवास भी करने तैयार हो तो मैं चलने को तैयार हूँ।।...गुरु...(6)...

खउटखोप के बच्चों ने कहा क्या हम यात्रा में आ सकते?
नंदीश्वर व शिर्डी ग्राम में संघ ने महत्ती प्रभावना की।।

आगे दो दिन चौका लगाने हेतु बच्चों ने पूर्ण व्यवस्था की।
आहारदान वैयावृत्ति कर, बच्चों ने पुण्य कमाया है।।...गुरु...(7)...

इस यात्रा का सुखद संस्मरण मन को आह्लादित करता है।
बच्चों की सेवा व दान तो प्रशंसनीय कार्य है।।

कालांतर में गुरु शिष्य का पुण्य-सस्नेह मिलन हुआ।
गुरुदर्शन को पाकर सबका मन आह्लादित हुआ।।...गुरु...(8)...

मुजफ्फर नगर व दिल्ली में हुई क्रांति

(चाल : तुम दिल की.....)

बड़ौत चातुर्मास में श्रीसंघ ने प्रभावना की।
चातुर्मास अनन्तर, मुजफ्फर नगर विहार हुआ।।

उन्नीसौ नब्बे (1990) का चातुर्मास इसी नगर में हुआ।
कनकनन्दी गुरुवर का क्रांति रूप प्रगट हुआ।।

सम्प्रति चातुर्मास में चालीस-पैतालीस साधु-साध्वी थे।
संघ का संपूर्ण नेतृत्व व अनुशासक गुरुवर (कनकनन्दी) थे।।

उसी काल में नगर में सांप्रदायिक दंगा हुआ।
नगर में शांति हेतु कर्फ्यू लगा हुआ था।।

संघ आहार चर्या हेतु कैसे नगर में जायेंगे।
समाज के प्रबुद्ध श्रावकों को बड़ी भारी चिंता हुई।।

कोई अप्रिय घटना, संघ के साथ न होवे।
विचार-विमर्श हेतु कुंथु गुरुवर के पास आये।।

हे गुरुवर! हम लोग क्या औषधालय में चौका करे?
संघ सुरक्षा करना तो, हम श्रावकों का धर्म है।।

कुंथु गुरु ने कहा हे भव्यों! संघ संचालक कनकनन्दी जी है।
वो जैसा निर्णय करेंगे, वैसा ही तुम लोग करना।।

कनकनन्दी गुरुदेव ने कहा तुम चिन्ता मत करना।
हम भारत के संत है न कि आतंकवादी।।

अपने घर ही चौका करो, कानून हमारे लिए नहीं।
सरकार अधीन हम नहीं, हम कायर न अपराधी।।

राजनीति, अर्थशास्त्र कानून व दण्ड व्यवस्था का ज्ञाता हूँ।
कानून के ठेकेदारों को 'मैं' कानून सिखा दूँगा।।

गुरुदेव की प्रेरणा से घर-घर में ही चौके लगे।
पुलिस को भी जता दिया भक्तों को आने से न रोकना।।

पूर्व में ही अधिसंख्य लोग प्रवचन सुनने आते थे।
दंगा होने पर तो और भी श्रावकगण आने लगे।।

एक महीना तक कर्फ्यू रहा हिंसा का तांडव चला।
पर गुरुकृपा से श्रीसंघ की चर्या निर्विघ्न हुई।।

दंगा अधिक भड़कने से शहर में 'मार्शल लॉ' लगा।
श्रावकगण पुनः चिंतित हुए संघ चर्या का क्या होगा।।

उपाध्याय श्री अब क्या होगा? यहाँ चौका लगाने की अनुमति दो।
गुरुवर का आदेश सुनने भक्तगण आतुर हुए।।

सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र-पेड़-पौधे व पशु-पक्षी।
मनुष्य निर्मित कानून क्या वे सब मानते है।।

हम भी प्राकृतिक जीवन जीते वसुधा हमारा कुटुम्ब।
सत्वेषु मैत्री हमारा भाव हमारा न किसी से वैर भाव।।

स्व-गृह में ही चौका लगाने का सबको निर्देश दिया।
आहार चर्या हेतु जब निकले, अनेक सेना (पुलिस) गाड़ियाँ पहुँची।।

गुरुदेव उन्हें देखकर भी शांति से आगे ही बढ़े।
श्रीसंघ की आहार चर्या शांति से निर्विघ्न सम्पन्न हुई।।

दंगाग्रस्त शहर का जब दूरबिन से निरीक्षण किया।
देखा पुलिस वाले एक निर्दोष दूध वाले को मार रहे।।

आपने घटना स्थल पर जाकर पुलिस वाले को फटकारा।
निर्दोष निरपराध व्यक्ति को मारने का कोई अधिकार नहीं।।

मुजफ्फर नगर की वह क्रांति आज भी अविस्मरणीय है।
सच्चे 'क्रांति के अग्रदूत' तो गुरुवर कनकनन्दी ही है।।

नये-नये अनुसंधानों में प्रथम कोई न साथ देते।
हर क्षेत्र में सफल होना आपका मूल-मंत्र है।।

नौ (9) मास प्रवास के बाद श्रीसंघ दिल्ली पहुँचा।
आहार चर्या में जाते समय संघस्थ साधु पर उपसर्ग हुआ।।

धर्म व संघ की रक्षा हेतु आपने समग्र क्रांति की।
न्याय नीति का प्रशासन को आपने पाठ पढ़ाया था।।

जैन संत मात्र जैनियों के नहीं जन-जन के हितैषी है।
भारत में निर्विवाद रूप से कही भी विहार कर सकते हैं।।

सूरी शांतिसागर जी के समान आपने भी धर्म क्रांतियाँ की।
आपकी न्यायपूर्ण क्रांति से दिल्ली प्रशासन हिल गया।।

दीर्घ अनुभव से आपने एक दृढ़ संकल्प किया।
जब तक समाज न आगे बढ़े सामाजिक काम न करूँगा।।

जब गुरुदेव नया शोध व क्रांति करते साधुवर्ग व समाज साथ न देते।
समाधि संबंधी समस्या (कोर्ट) हो या 'भरतसागर जी' की समाधि समस्या हो।।

फिर भी आप न हार मानते, सत्यान्वेषण करके ही रहते।
सफलता मिलने पर सभी, गुरुदेव का जय-जयकार करते।।

इन्हीं सभी दीर्घ अनुभवों से, सामाजिक लंद-फंदों से।
गुरुदेव अब तो दूर ही रहते, शक्ति-समय का सदुपयोग करते।।
स्वात्मा (मैं) का अन्वेषण ही करना गुरुदेव का परम लक्ष्य है।

मेरी प्रवृत्ति-निवृत्ति

(स्व-रमण हेतु पर-परिणति त्याग कर रहा हूँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., तुम दिल की.....)
समता-शांति निस्पृह वृत्ति...मौन एकांत शोध प्रवृत्ति।
सनम्र सत्यग्राही उदार वृत्ति...राग-द्वेष-मोह की क्षय प्रवृत्ति।। (1)

आत्मविशुद्धि आत्मानुभूति...मोक्ष प्राप्ति हेतु मेरी प्रवृत्ति।
बाल्यकाल से ही मेरी प्रवृत्ति...तीव्रता से बढ़ा रहा (हूँ) उक्त वृत्ति।। (2)

इसी हेतु त्यागा ख्याति पूजा लाभ...धन-जन-मान-नाम-सम्मान।
भीड़ जोड़ना ढोंग पाखण्ड करना...दबाव प्रलोभन वर्चस्व त्यागना।। (3)

संकीर्ण पंथ-मत-रीति-रिवाज...पक्षपात-वाद-विवाद-भेदभाव।

इसी हेतु लेख भाषण शंका समाधान...नवकोटि से त्यागूँ उक्त काम।। (4)

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागूँ...संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागूँ।
अन्य हेतु भी उक्त काम न करूँ...स्व-पर-विश्वहित चिन्तन करूँ।। (5)

संकोच भय द्वंद्व-उद्वेग...अंधानुकरण कट्टरता संकीर्ण।
परनिन्दा अपमान चिन्ता शंका...त्याग कर करूँ आत्मशुद्धि विकास।। (6)

प्रतिस्पर्द्धा दिखावा व दीन-हीन...दंभ त्यागकर पाऊँ स्वाभिमान।
इसी से परे 'सोऽहं' अहंभावी बनूँ...'कनक' स्वयं में ही रमण करूँ।। (7)

सीपुर, दिनांक 09.11.2016, प्रातः 9.25

(इस संबंधी विस्तृत वर्णन कवि ने अनेक गद्य व पद्य साहित्य में किया है।)

संदर्भ-

स्वसंवित्तिका स्पष्टीकरण

वपुषोऽप्रतिभासेऽपि स्वातन्त्र्येन चकासती।
चेतना ज्ञानरूपेयं स्वयं दृश्यत एव हि।। (168) (ध्यानशास्त्र)

'स्वतंत्रता से चमकती हुई यह ज्ञानरूपा चेतना शरीर रूप से प्रतिभासित न होने पर भी स्वयं ही दिखायी पड़ती है।'

समाधि में आत्मा को ज्ञानस्वरूप अनुभव न करने वाला योग आत्मध्यानी नहीं

समाधिस्थेन यद्यात्मा बोधात्मा नाऽनुभूयते।
तदा न तस्य तद्ध्यानं मूर्च्छावन्मोह एव सः।। (169)

'समाधि में स्थित योगी यदि आत्मा को ज्ञानस्वरूप अनुभव नहीं करता तो समझना चाहिए उस समय उसके आत्मध्यान नहीं, किन्तु मूर्च्छा वाला मोह ही है।'

आत्मानुभव का फल

तमेवानुभवंश्चायमेकाग्र्यं परमृच्छति।
तथाऽऽत्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरम्।। (170)

'उस ज्ञानस्वरूप आत्मा को अनुभव में लाता हुआ यह समाधिस्थ योगी परम-एकाग्रता को प्राप्त होता है तथा उस स्वाधीन आनंद का अनुभव करता है जो कि

वचन के अगोचर है।'

स्वरूपनिष्ठ योगी एकाग्रता को नहीं छोड़ता

यथा निर्वातदेशस्थः प्रदीपो न प्रकम्पते।

तथा स्वरूपनिष्ठोऽयं योगी नैकाग्र्यमुज्झति।। (171)

'जिस प्रकार पवन रहित स्थान में स्थित दीपक नहीं काँपता, उसी प्रकार अपने स्वरूप में स्थित योगी एकाग्रता को नहीं छोड़ता।'

स्वात्मलीन योगी को बाह्य पदार्थों का कुछ भी प्रतिभास नहीं होता

तदा च परमैकाग्र्याद बहिरर्थेषु सत्स्वपि।

अन्यत्र किञ्चनाऽऽभाति स्वमेवात्मनि पश्यतः।। (172)

'उस समाधि काल में स्वात्मा में देखने वाले योगी की परम एकाग्रता के कारण बाह्य पदार्थों के विद्यमान होते हुए भी उसे आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतिभासित नहीं होता।'

अन्य शून्य भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता

अत एवाऽन्य-शून्योऽपि नाऽऽत्मा शून्यः स्वरूपतः।

शून्याऽशून्यस्वभावोऽयमात्मनैवोपलभ्यते।। (173)

'इसीलिए अन्य बाह्य पदार्थों से शून्य होता हुआ भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता-अपने निजरूप को साथ में लिए रहता है। आत्मा का यह शून्यता और अशून्यतामय स्वभाव आत्मा के द्वारा ही उपलब्ध होता है-दूसरे किसी बाह्य पदार्थ के द्वारा नहीं।'

व्याख्या-पिछले पद्य में जो यह बात कही गयी है कि स्वात्मलीन योगी को बाह्य पदार्थों के विद्यमान होते हुए भी अन्य कुछ भी प्रतिभासित नहीं होता उसका फलितार्थ इतना ही है कि वह उस समय अन्य से-दूसरे किसी भी पदार्थ के संपर्क से-शून्य होता है; परन्तु अन्य से शून्य होता हुआ भी वह स्वरूप से शून्य नहीं होता-स्वरूप को तो वह तल्लीनता के साथ देख ही रहा है। इस तरह आत्मा उस समय शून्याशून्य स्वभाव को प्राप्त होता है-परद्रव्यादि चतुष्टय के अभाव की अपेक्षा शून्य और स्वद्रव्यादि चतुष्टय के सद्भाव की अपेक्षा अशून्य होता है और यह शून्याशून्य स्वभाव भी आत्मा के द्वारा ही उपलक्षित होता है-स्वसंवेद्य है।

मेरी शोध-बोध-गुणग्राही पद्धति-
दुर्गुणी से भी मैं सीखता हूँ सुगुण

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : नन्हा-मुन्ना राही.....)

छोटा-भोला छात्र हूँ...ज्ञान साधक पात्र हूँ...
सभी से मैं सीखता हूँ...कुगुणी से भी सीखता हूँ...
सत्य के साथ हूँ...गुण के साथ हूँ...(ध्रुव)...

अनेकांत होता है वस्तु स्वरूप...अस्ति-नास्ति आदि अनंत रूप...
प्रतिपक्ष सहित होते समस्त गुण...अर्पित-अनार्पित होते वे गुण...
अवक्तव्य होते अनंतगुण...(1)...

सुगुण के प्रतिपक्षी दुर्गुण होते...दुर्गुण के प्रतिपक्षी सुगुण होते...
सुगुण से लाभ तो दुर्गुण से हानि...दुर्गुण त्याग से सुगुण की वृद्धि...
ऐसे सीखता हूँ दुर्गुणी से गुण...(2)...

सम्यक्त्व के प्रतिपक्षी होता मिथ्यात्व...सम्यक्त्व से सुज्ञान मिथ्या से कुज्ञान...
मिथ्यात्व त्याग से मिलता सम्यक्त्व...जिससे रत्नत्रय होता सम्यक्...
रत्नत्रय से मोक्ष तो मिथ्या से संसार...(3)...

सफेद पट्टी में काला स्पष्ट दिखता...काला पट्टी में सफेद स्पष्ट दिखता...
दोष गुण जाने बिन न विवेक होता...भेद विज्ञान बिन मोक्ष न होता...
दोषी से सीखने का सूत्र ये होता...(4)...

दुर्गुणी को दुर्गुण से जो मिलता दुःख...उसे जानकर मैं हो जाता सतर्क...
आग से बिना जले मैं दूर रहता...जलकर ही मैं सतर्क न होता...
ठोकर खाये बिना मैं ठाकुर बनता...(5)...

हित प्राप्ति अहित परिहार है ज्ञान...मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ गुण...
सनम्र सत्यग्राही गुण ग्रहण (गुण)...आध्यात्मिक विकास मेरा संदर्भ...
ऐसा मैं पाता हूँ दोषी से सुगुण...(6)...

इस हेतु रहता हूँ सरल-साम्य...सजग-तटस्थ-विवेकवान्...

आत्मानुशासी (संयमी) धैर्यशाली गुणज्ञ...गुणग्राही अप्रभावी आदर्शवान्...
ऐसा (मैं) सीखता हूँ दुर्गुणी से सुगुण...(7)...

दोषी से भी (मैं) राग द्वेष मोह न करूँ...दुर्गुण को सुगुणमय न मानूँ...
वैद्य के समान व्यवहार मैं करूँ...दुर्गुण दूर करूँ (किन्तु) कुगुणी न बनूँ...
'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनूँ...(8)...

हर महापुरुष भी ऐसा ही करते...ज्ञान-वैराग्य से सम्वृद्ध होते...
रागी द्वेषी मोही ऐसा न करते...कुगुणी से दुर्गुण प्राप्त करते...
इसी से पापी वे अधिक होते...(9)...

सीपुर, दिनांक 12.11.2016, मध्याह्न 3.08

आत्मविश्वास V/S अंधविश्वास/(अहंकारी/ममकारी)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : इक परदेशी तेरा....., यमुना किनारे.....)

स्व-विश्वास होता है आत्मविश्वास, स्व-स्वरूप होता है सच्चिदानंद।
आत्मविश्वास होता सत्य विश्वास, स्व-पर प्रकाशी दीपक समान।। (ध्रुव)

जो दीपक न होता स्वयं प्रकाशी, वह न अन्य को कर सके प्रकाशी।
जो न होता है स्वयं ज्ञानी, वह अन्य को न करे ज्ञानी।।

तथाहि श्रद्धान व ज्ञान आचरण, समता-शांति व निस्पृहता।
उदार पावन आदर्श न महान्, आत्मानुभूति न आत्मा शुद्धता।। (1)

संकल्प-विकल्प व संक्लेश शून्य, आकर्षण-विकर्षण-द्वंद्व शून्य।
तर्क-वितर्क परे अनुभव पूर्ण, तन-मन-अक्ष परे स्वयं का ज्ञान।।

रीति-रिवाज व पंथ-मत परे, कट्टर संकीर्ण धार्मिक परे।
नीति-नियम व लौकिक परे, न्याय-संविधान राजनीति परे।। (2)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध परे, ईर्ष्या-तृष्णा व घृणा परे।
स्वयं (स्व, मैं) को जो न जाने (माने) चैतन्य पूरे, वे न होते आत्मविश्वास पूरे।।

उनका विश्वास अनात्म विश्वास, अहंकार-ममकार पूर्ण विश्वास।
यथार्थ से यह है अंधविश्वास, ज्ञान आचरण भी असम्यक्।। (3)

ईकाई रहित शून्य के समान, बीज रहित वृक्ष के समान।
आत्मविश्वास से जो होता शून्य, आत्म विकास में होते शून्य।।

आत्मविश्वासी के भाव व्यवहार, लक्ष्य वा साधना-विचार।
इनको लगते हैं मिथ्या-विपरीत, अंधा को न दिखाई देता सूर्य।। (4)

सामान्य काँच व असाधारण लेंस, सामान्य लोहा व चुंबकीय लोहा।
शक्ति यथा दोनों में भिन्नता, आत्मविश्वास इतर में भिन्नता।।

मिश्री का स्वाद न चखे बिना, आत्मा का ज्ञान न विश्वास/(श्रद्धा) बिना।
आत्मविश्वास है महान् काम, अज्ञान-मोह व मद से भिन्न/(शून्य)।। (5)

अज्ञान-मोह व मद सहित, होता विश्वास से अंधविश्वास।
संकीर्ण-कट्टरता व मूढ़तापूर्ण, संसार वर्द्धक दृढ़ता/(धूर्तता) पूर्ण।।

आत्मश्रद्धान सह तत्त्वार्थ श्रद्धान, होता (है) सम्यक् ज्ञान आचरण।
'स्वाभिमान' 'सोऽहं' अहं स्वभाव, उत्तरोत्तर से मिलते भाव।। (6)

आध्यात्मिक रहस्य यह महान्, आत्मा से परमात्मा बनने का ज्ञान।
अन्यथा संसार में होता परिभ्रमण, 'कनक' स्व का करे ज्ञान व ध्यान।। (7)

सीपुर, दिनांक 12.11.2016, प्रातः 6.17
(यह कविता मुनि आध्यात्मनंदी व क्षुल्लिका सुवीक्षमती के कारण बनी।)

संदर्भ-

चिंता का अभाव तुच्छ न होकर स्वसंवेदन रूप है

चिन्ताऽभावो न जैनानां तुच्छो मिथ्यादृशामिव।
दृग्बोध-साम्य-रूपस्य स्वस्य संवेदनं हि सः।। (160) तत्त्वा.

'(यह) चिंता का अभाव जैनियों के (मत में) मिथ्यादृष्टियों के समान तुच्छ अभाव नहीं है; क्योंकि वह चिंता का अभाव वस्तुतः दर्शन, ज्ञान और समता रूप आत्मा के संवेदन रूप है।'

व्याख्या-जैन दर्शन में अभाव को भी वस्तुधर्म माना है, जो कि वस्तु व्यवस्था के अंग रूप है। एक वस्तु में यदि दूसरी वस्तु का अभाव स्वीकार न किया जाय तो किसी भी वस्तु की कोई व्यवस्था नहीं बनती। इस दृष्टि से अभाव सर्वथा

असत् रूप तुच्छ नहीं है, जिससे चिंता के अभाव रूप होने से ध्यान को ही असत् कह दिया जाय। वह अन्य चिंताओं के अभाव की दृष्टि से असत् होते हुए भी स्वात्मचिंतात्मक-स्वसंवेदन की दृष्टि से असत् नहीं है और इसलिए तुच्छ नहीं है। ध्यान के लक्षण में प्रयुक्त निरोध अथवा रोध शब्द का अभाव अर्थ करने पर उसका यही आशय लिया जाना चाहिए, न कि सर्वथा चिंता के अभाव रूप, जिससे ध्यान का ही अभाव ठहरे। अन्य सब चिंताओं के अभाव के बिना एक चिंतात्मक जो आत्म ध्यान है वह नहीं बनता।

स्वसंवेदन का लक्षण

वेद्यत्वं वेदकत्वं च यस्त्वस्य स्वेन योगिनः।
तत्स्वसंवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम्।। (161)

'योगी के अपने आत्मा का जो अपने द्वारा वेद्यपना और वेदकपना है उसको स्वसंवेदन कहते हैं; जो कि आत्मा का दर्शनरूप अनुभव है।'

व्याख्या-स्वसंवेदन आत्मा के उस साक्षात् दर्शनरूप अनुभव का नाम है जिसमें योगी आत्मा स्वयं ही ज्ञेय तथा ज्ञायक भाव को प्राप्त होता है-अपने को स्वयं ही जानता, देखता अथवा अनुभव करता है। इससे स्वसंवेदन, आत्मानुभवन और आत्मदर्शन ये तीनों वस्तुतः एक ही अर्थ के वाचक हैं, जिनका यहाँ स्पष्टीकरण की दृष्टि से एकत्र संग्रह किया गया है।

स्वसंवेदन कोई करणांतर नहीं होता

स्व-पर-ज्ञाप्तिरूपत्वान्न तस्य करणान्तरम्।
ततश्चिन्तां परित्यज्य स्वसंवित्यैव वेद्यताम्।। (162)

'स्व-पर की जानकारी रूप होने से उस स्वसंवेदन अथवा स्वानुभव का आत्मा से भिन्न कोई दूसरा कारण-ज्ञप्तिक्रिया की निष्पत्ति में साधकतम-नहीं होता। अतः चिंता का परित्याग कर स्वसंवित्ति के द्वारा ही उसे जानना चाहिए।'

स्वात्मा के द्वारा संवेद्य आत्मस्वरूप

दृग्बोध-साम्यरूपत्वाज्जानन्पश्यन्नुदासिता।
चित्सामान्य-विशेषात्मा स्वात्मनैवाऽनुभूयताम्।। (163)

'दर्शन, ज्ञान और समता रूप होने से देखता, जानता और वीतरागता को धारण करता हुआ जो सामान्य-विशेष ज्ञानरूप अथवा ज्ञान-दर्शनात्मक उपयोग रूप

आत्मा है उसे स्वात्मा के द्वारा ही अनुभव करना चाहिए।'

कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वह्म।

ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना।। (164)

'समस्त कर्मज भावों से सदा भिन्न ऐसे ज्ञान स्वभाव एवं उदासीन (वीतराग) आत्मा को आत्मा के द्वारा देखना चाहिए।'

यस्मिन्मिथ्याभिनिवेशेन मिथ्याज्ञानेन चोज्झितम्।

तन्मध्यस्थं निजं रूपं स्वस्मिन्संवेद्यतां स्वयम्।। (165)

'जो मिथ्या श्रद्धान तथा मिथ्याज्ञान से रहित है और राग-द्वेष से रहित मध्यस्थ है उस निज स्वरूप को स्वयं अपने आत्मा में अनुभव करना चाहिए।'

इंद्रिय ज्ञान तथा मन के द्वारा आत्मा दृश्य नहीं

न हीन्द्रियधिया दृश्यं रूपादिरहितत्वतः।

वितर्कास्तन्न पश्यन्ति ते ह्यविस्पष्ट-तर्कणा।। (166)

'रूपादि से रहित होने के कारण वह आत्मरूप इंद्रिय ज्ञान से दिखायी देने वाला नहीं है, तर्क करने वाले उसे देखते नहीं। वे अपनी तर्कणा में विशेष रूप से स्पष्ट नहीं हो पाते-उनके तर्क अस्पष्ट बने रहते हैं।'

व्याख्या-पिछले पद्य (164) में आत्मा को आत के द्वारा देखने की जो प्रेरणा की गयी है, उसे यहाँ स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है कि वह इंद्रिय ज्ञान के द्वारा दृश्य नहीं है; क्योंकि इंद्रियाँ वर्ण, रस, गंध और स्पर्श विशिष्ट पदार्थ को ही देखती हैं और आत्मा इन वर्णादि गुणों से रहित है। अनुमानादि द्वारा तर्क करने वाले भी उसे देख नहीं पाते; क्योंकि (पराश्रित होने से) अपनी तर्कणा में वे सदा अस्पष्ट बने रहते हैं। वितर्क श्रुत को कहते है और श्रुत अनिंद्रिय (मन) का विषय है। इससे मन भी आत्मा को देख नहीं पाता, यह यहाँ फलितार्थ हुआ।

इंद्रिय-मन का व्यापार रुकने पर स्वसंवित्ति द्वारा आत्मदर्शन

उभयस्मिन्निरुद्धे तु स्याद्विस्पष्टतीन्द्रियम्।

स्वसंवेद्यं हि तद्रूपं स्वसंवित्त्यैव दृश्यताम्।। (167)

'इंद्रिय और मन दोनों के निरुद्ध होने पर अतींद्रिय ज्ञान विशेष रूप से स्पष्ट होता है (अतः) अपना वह रूप जो स्वसंवेदन के गोचर है उसे स्वसंवेदन के द्वारा ही देखना चाहिए।'

व्याख्या-जब इंद्रिय और मन दोनों के द्वारा आत्मा दृश्य नहीं है तब उसे किसके द्वारा देखा जाय? इस प्रश्न को लक्ष्य में लेकर ही प्रस्तुत पद्य का अवतार हुआ जान पड़ता है। इसमें बतलाया है कि जब इंद्रिय और मन दोनों का व्यापार निरुद्ध होता है-रोक लिया जाता है-तब अतींद्रिय ज्ञान प्रकट होता है, जो कि अपने में विशेषतः स्पष्टता अथवा विशदता को लिए रहता है। उस ज्ञानरूप स्वसंवित्ति के द्वारा ही उस आत्मस्वरूप को देखना चाहिए जो कि स्वसंवेद्य है-अन्य किसी के द्वारा वह जाना नहीं जाता। इससे आत्मदर्शन के लिए इंद्रिय और मन के व्यापार को रोकने की बड़ी जरूरत है और वह तभी रुक सकता है जबकि इंद्रियाँ तथा मन को जीतकर उन्हें अपने अधीन किया जाय।

स्वसंवित्ति का स्पष्टीकरण

वपुषोऽप्रतिभासेऽपि स्वातन्त्र्येन चकासती।
चेतना ज्ञानरूपेयं स्वयं दृश्यत एव हि।। (168)

'स्वतंत्रता से चमकती हुई यह ज्ञानरूपा चेतना शरीर रूप से प्रतिभासित न होने पर भी स्वयं ही दिखायी पड़ती है।'

समाधि में आत्मा को ज्ञानस्वरूप अनुभव न करने वाला योगी आत्मध्यानी नहीं

समाधिस्थने यद्यात्मा बोधात्मा नाऽनुभूयते।
तदा न तस्य तद्ध्यानं मूर्च्छावन्मोह एव सः।। (169)

'समाधि में स्थित योगी आदि आत्मा को ज्ञानस्वरूप अनुभव नहीं करता तो समझना चाहिए उस समय उसके आत्मध्यान नहीं, किन्तु मूर्च्छा वाला मोह ही है।'

आत्मानुभव का फल

तमेवानुभवंश्चायमेकाग्र्यं परमृच्छति।
तथाऽऽत्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरम्।। (170)

'उस ज्ञानस्वरूप आत्मा को अनुभव में लाता हुआ यह समाधिस्थ योगी परम-एकाग्रता को प्राप्त होता है तथा उस स्वाधीन आनंद का अनुभव करता है जो कि वचन के अगोचर है।'

स्वरूपनिष्ठ योगी एकाग्रता को नहीं छोड़ता

यथा निर्वातदेशस्थः प्रदीपो न प्रकम्पते।

तथा स्वरूपनिष्ठोऽयं योगी नैकाग्रयमुज्झति।। (171)

'जिस प्रकार पवन रहित स्थान में दीपक नहीं काँपता, उसी प्रकार अपने स्वरूप में स्थित योगी एकाग्रता को नहीं छोड़ता।'

स्वात्मलीन योगी को बाह्य पदार्थों का कुछ भी प्रतिभास नहीं होता

तदा च परमैकाग्रयाद् बहिरर्थेषु सत्स्वपि।

अन्यन्न किञ्चनाऽऽभाति स्वेवात्मनि पश्यतः।। (172)

'उस साधि काल में स्वात्मा में देखने वाले योगी की परम एकाग्रता के कारण बाह्य पदार्थों के विद्यमान होते हुए भी उसे आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतिभासित नहीं होता।'

अन्य शून्य भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता

अत एवाऽन्य-शून्योऽपि नाऽऽत्मा शून्यः स्वरूपतः।

शून्याऽशून्यस्वभावोऽयमात्मनैवोपलभ्यते।। (173)

'इसीलिए अन्य बाह्य पदार्थों से शून्य होता हुआ भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता-अपने निजरूप को साथ में लिए रहता है। आत्मा का यह शून्यता और अशून्यतामय स्वभाव आत्मा के द्वारा ही उपलब्ध होता है-दूसरे किसी बाह्य पदार्थ के द्वारा नहीं।'

व्याख्या-पिछले पद्य में जो यह बात कही गयी है कि स्वात्मलीन योगी को बाह्य पदार्थों के विद्यमान होते हुए भी अन्य कुछ भी प्रतिभासित नहीं होता उसका फलितार्थ इतना ही है कि वह उस समय अन्य से-दूसरे किसी भी पदार्थ के संपर्क से-शून्य होता है; परन्तु अन्य से शून्य होता हुआ भी वह स्वरूप से शून्य नहीं होता-स्वरूप को तो वह तल्लीनता के साथ देख ही रहा है। इस तरह आत्मा उस समय शून्याशून्य स्वभाव को प्राप्त होता है-परद्रव्यादि चतुष्टय के अभाव की अपेक्षा शून्य और स्वद्रव्यादि चतुष्टय के सद्भाव की अपेक्षा अशून्य होता है और यह शून्याशून्य स्वभाव भी आत्मा के द्वारा ही उपलक्षित होता है-स्वसंवेद्य है।

दृढ़ता बनाम मूढ़ता

(महान् जन में होती है दृढ़ता व अज्ञानी-मोही में होती है मूढ़ता-ढ़ीठता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., भातुकली.....)

सत्य-तथ्य व आत्म तत्त्व में, अविचल होना है दृढ़ता।
इससे भिन्न राग द्वेष मोह में, अविचल होना है मूढ़ता।।

दृढ़ता में होती समता-शांति, सत्यग्राहिता व धैर्य।
पक्षपात परे सत्य निष्ठा व, आत्मविशुद्धि व निर्भय।।

लोभ प्रलोभन दबाव रहित, ईर्ष्या तृष्णा घृणा परे।
आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र, ध्यान संयम क्षमादि पूरे।। (1)

मान-अपमान हानि लाभ शून्य, ख्याति पूजा प्रतिष्ठाहीन।
आत्मविशुद्धि आत्मानुभूति, आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण।।

अन्यथा दृढ़ता नहीं संभव है, भले हो मूढ़तापूर्ण ढीठता/(धृष्टता)।
हठाग्रह पूर्वाग्रह पक्षपातपूर्ण, ईर्ष्या तृष्णा घृणा संयुक्तता।। (2)

मोही रागी द्वेषी की होती है, स्वार्थपूर्ण अज्ञान दशा।
अंधविश्वासी कट्टर संकीर्ण, जीव में होती ऐसी ढीठता।।

महान् पुरुषों में होती है दृढ़ता, जिससे वे होते सत्यनिष्ठ।
अविकारी अविचल होते वे जन, एकला भी वे होते आत्मनिष्ठ।। (3)

इसी हेतु उन्हें मूढ़-क्रूरजन, मानते हैं अयोग्य जन।
उनकी निन्दा-अपमान से लेकर, करते विरोध हत्या तक।।

इस हेतु दृष्टांत तीर्थंकर बुद्ध, राम ऋषि ईसा सुकरात मीरा।
रावण कंस दुर्योधन हिटलर, मुसोलिन क्रूर तानाशाह राजा।। (4)

रावण कंस आदि में नहीं थी दृढ़ता, उनमें थी क्रूर-कट्टरता।
दृढ़ता से होता आत्मविकास, 'कनक' अतः चाहे दृढ़ता।।

निःशंकित-अमूढ़ दृष्टि अंग, समता व वीतरागता।
उपसर्ग परीषहजय आत्मनिष्ठ, व सनम्र सत्यग्राहिता।। (5)

आत्मानुशासन संयम धैर्य, क्षमादि धर्म आत्मध्यान।
दृढ़ता से ही संभव या, दृढ़ता में ये सभी समाहित।।

इनसे विपरीत मूढ़ता धृष्टता, अड़ियलपना व अहंकार।
कूपमण्डूकता संकीर्णता, मूर्खता मनमाना व अनुदार।। (6)

सीपुर, दिनांक 10.11.2016, रात्रि 9.09

संदर्भ-

अमूढ़दृष्टि अंग का लक्षण

लोकेशास्त्राऽऽभासे, समयाऽऽभासे च देवताऽऽभासे।
नित्यमपि तत्वरूचिना, कर्तव्यममूढ़दृष्टित्वम्।। (26) पु.सि.

तत्त्वरुचि वाले जीवों को सतत अमूढ़ दृष्टित्व गुण को अपनाना चाहिए। वह अमूढ़ दृष्टितत्त्व है। वस्तु स्वरूप जैसी है उसी को उसी प्रकार जानना चाहिए। जिनमत में कहे हुए देव, शास्त्र, गुरु में दृढ़ता रखनी चाहिए अर्थात् उनकी श्रद्धा, भक्ति में दृढ़ता रखनी चाहिए। जीवादि षट् द्रव्य जहाँ रहते हैं उसे लोक कहते हैं। जो शास्त्र के समान लगता है परन्तु यथार्थ शास्त्र नहीं है अर्थात् सदोष शास्त्र है उसे शास्त्राभास कहते हैं। इसी प्रकार वीतराग सर्वज्ञ निष्कलंक जिनेन्द्र भगवान् से अन्य देव देवताभास है। इनमें सम्यक्दृष्टियों को अमूढ़ दृष्टि होकर व्यवहार करना चाहिए। निश्चय से मोह भाव से रहित होने के कारण सम्यक्दृष्टियों को संशय विमोह विभ्रम नहीं होते हैं। इसलिये वे अमूढ़ दृष्टि वाले होते हैं। अनाप्त द्वारा कहे हुए तत्त्व में या चेतन-अचेतन पदार्थ में मोह रहितपना अमूढ़ दृष्टित्व है।

असत्य को सत्य मानना, अधर्म को धर्म मानना, अगुरु को गुरु मानना, सत्य-तथ्य से रहित रूढ़ियों को, परंपराओं को किम्वदंतियों को सत्य मानना मूढ़ता हैं। जितने प्रकार की मिथ्या धारणाएँ हैं, मिथ्या परंपराएँ हैं, मिथ्या मान्यताएँ हैं उतने प्रकार की मूढ़ता हैं तथापि (1) लोक मूढ़ता (2) देव मूढ़ता (3) गुरु मूढ़ता में अन्यान्य मूढ़ता गर्भित की जाती हैं। तीनों मूढ़ता के वर्णन निम्न प्रकार हैं।

भावार्थ-हे प्रभु! मेरा मन समस्त ममत्व बुद्धि (मोहासक्ति) से रहित होकर दुःख-सुख, शत्रु-मित्र, संयोग-वियोग, भवन-वन में सदा समता में रहे।

प्राप्त शिक्षाएँ-अनुकूलता-प्रतिकूलता, आकर्षण-विकर्षण, शत्रुता-मित्रता आदि

में अप्रभावित होकर संतुलित-तटस्थ रहने से मन में भाव में तनाव-क्षोभ-चञ्चलता-अस्थिरता आदि दुःख कारक तत्त्व उत्पन्न नहीं होते हैं, पापकर्म का आस्रव-बंध नहीं होता। इससे व्यक्ति शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक दुःख, रोग, समस्या से मुक्त हो जाता है। इसके साथ-साथ व्यापक साम्यभाव से व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैश्विक समस्या-संघर्ष-युद्ध आदि समाप्त हो जायेंगे। ऐसा ही भाव-व्यवहार दैनिक चर्या, भोजन, जीवन चर्या, गृह, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में, प्रकृति आदि में संतुलन होना स्वास्थ्य, सुख-शांति, विकास, व्यवस्था आदि के कारण है।

परमात्म चिन्तन में चित्तलीनता की भावना

मुनीश! लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ निषाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमोधुनानौ हृदि दीपिकाविव।। (4)

O Revered of all saints! may Thy feet be ever enshrined in my heart and act as a light to remove all darkness and three be engraved and impressed, and fixed, and imaged, and unified with it.

भावार्थ–हे मुनियों के स्वामी ! आपके चरण कमल मेरे हृदय में लीन, समावेश, स्थिर, उत्कीर्ण, बिम्बित, प्रकाशित होकर सदा विराजमान रहे।

प्राप्त शिक्षाएँ–केवल भगवान् का भजन, स्मरण, पूजन बाह्य-दिखावा रूप से करने से समय-साधन-श्रम का केवल दुरुपयोग होता है। क्योंकि इससे भाव में पवित्रता-स्थिरता नहीं आती है, पाप आस्रव एवं बंध नहीं रुकता है, सातिशय पुण्य बंध नहीं होता है, कर्म की निर्जरा नहीं होती है, किन्तु भगवत् स्मरण आदि पवित्रता-स्थिरता से करने से मन प्रसन्न होता है, तनाव-संक्लेश-भय-संदेह आदि दूर होते हैं, पापस्रव-बंध रुकता है, सातिशय पुण्य बंध होता है, कर्म की निर्जरा होती है, जिससे शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग दूर होते हैं, परंपरा से मोक्ष मिलता है। भाव की पवित्रता-एकाग्रता से आध्यात्मिक महापुरुषों के गुणानुवाद-गुण स्मरण से धीरे-धीरे वे आध्यात्मिक गुण भी भक्त के भाव में प्रगट होते जाते हैं जिससे भक्त धीरे-धीरे भगवान् बनता जाता है। जैसा कि सूर्य किरण लैन्स के माध्यम से केन्द्रीभूत होकर स्थिर होने पर तापमान में वृद्धि होते-होते अग्नि उत्पन्न हो जाती है; वैसा ही आध्यात्मिक महापुरुषों के ध्यान, मनन, स्मरण, पूजन, पवित्रता-एकाग्रता से करने से स्वयं में निहित आध्यात्मिक गुण (ज्ञान, समता, सुख, शांति) धीरे-धीरे प्रगट होते जाते हैं

और भव्य-भक्त भगवान् बनता जाता है।

दिध्यासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितम्।

विहायाऽन्यदनर्थित्वात् स्वमैवाऽवैतु पश्यतु।। (143) तत्त्वानु.

'जो स्वावलंबी निश्चयध्यान करने का इच्छुक है वह स्व को और पर को यथावस्थित रूप में जानकर तथा श्रद्धान कर और फिर पर को निरर्थक होने से छोड़कर स्व को (अपने आत्मा को) ही जानो और देखो।'

पूर्वं श्रुतेन संस्कारं स्वात्मन्यारोपयेत्ततः।

तत्रैकाग्र्यं समासाद्य न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।। (144)

'अतः पहले श्रुत (आगम) के द्वारा अपने आत्मा में आत्म संस्कार को आरोपित करे-आगम में आत्मा को जिस यथार्थ रूप में वर्णित किया है उस प्रकार की भावनाओं द्वारा उसे संस्कारित करे-तदनंतर उस संस्कारित स्वात्मा में एकाग्रता (तल्लीनता) प्राप्त करके और कुछ भी चिंतन न करें।'

श्रौती भावना का अवलंबन न लेने से हानि

यस्तु नालम्बते श्रौतीं भावनां कल्पनाभयात्।

सोऽवश्यं मुह्यति स्वस्मिन्बहिश्चिन्तां बिभर्ति च।। (145)

'जो ध्याता कल्पना के भय से श्रौती (श्रुतात्मक) भावना का आलंबन नहीं लेता वह अवश्य अपने आत्म-विषय में मोह को प्राप्त होता है और बाह्य चिंता को धारण करता है।'

श्रौती भावना की दृष्टि

तस्मान्मोह-प्रहाणाय बहिश्चिन्ता-निवृत्तये।

स्वात्मानं भावयेत् पूर्वमेकाग्र्यस्य च सिद्धये।। (146)

'अतः मोह का विनाश करने, बाह्य चिंता से निवृत्त होने और एकाग्रता सिद्धि के लिए ध्याता पहले स्वात्मा को श्रौती भावना से भावे-संस्कारित करें।'

श्रौती-भावना का रूप

तथा हि चेतनोऽसंख्य-प्रदेशो मूर्तिवर्जितः।

शुद्धात्मा सिद्धरूपोऽस्मि ज्ञान-दर्शन-लक्षणः।। (147)

'मैं चेतन हूँ, असंख्यप्रदेशी हूँ, मूर्तिरहित-अमूर्तिक हूँ, सिद्धसदृश शुद्धात्मा हूँ और ज्ञान-दर्शन लक्षण से युक्त हूँ।'

नान्योऽस्मि नाऽहमस्त्यन्यो नाऽन्यस्याऽहं न मे परः।

अन्यस्त्वन्योऽहमेवाऽहमन्योऽन्यस्याऽहमेव च।। (148)

'मैं अन्य नहीं हूँ, अन्य मैं (आत्मा) नहीं है। मैं अन्य का नहीं, न अन्य मेरा है। वस्तुतः अन्य अन्य ही है, मैं मैं ही हूँ, अन्य अन्य का है और मैं ही मेरा हूँ।'

अन्यच्छरीरमन्योऽहं चिदहं तदचेतनम्।

अनेकमेतदेकोऽहं क्षयीदमहमक्षयः।। (149)

'शरीर अन्य है, मैं अन्य हूँ; (क्योंकि) मैं चेतन हूँ, शरीर अचेतन है, यह शरीर अनेक रूप है, मैं एकरूप हूँ, यह क्षयी (नाशवान्) है, मैं अक्षय (अविनाशी) हूँ।'

अचेतनं भवेन्नाऽहं नाऽहमप्यस्म्यचेतनम्।

ज्ञानात्माऽहं न मे कश्चिन्नाऽहमन्यस्य कस्यचित्।। (150)

'अचेतन मैं (आत्मा) नहीं होता; न मैं अचेतन होता हूँ; मैं ज्ञानस्वरूप हूँ; मेरा कोई नहीं है, न मैं किसी दूसरे का हूँ।'

यहाँ तथा आगे-पीछे जहाँ भी अहं (मैं) शब्द का प्रयोग हुआ है वह सब आत्मा का वाचक है।

योऽत्र स्व-स्वामि-सबन्धो ममाऽभूद्वपुषा सह।

यस्त्वेकत्व-भ्रमः सोऽपि परस्मान्न स्वरूपतः।। (151)

'इस संसार में मेरा शरीर के साथ जो स्व-स्वामि-संबंध हुआ है-शरीर मेरा स्व और मैं उसका स्वामी बना हूँ-तथा दोनों में एकत्व का जो भ्रम है वह सब भी पर के निमित्त से है, स्वरूप से नहीं।'

जीवादि-द्रव्य-याथात्म्य ज्ञानात्मकमिहाऽऽत्मना।

पश्यन्नात्मन्यथाऽऽत्मानमुदासीनोऽस्मि वस्तुषु।। (152)

'मैं इस संसार में जीवादि-द्रव्यों की यथार्थता के ज्ञानस्वरूप आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा में देखता हुआ (अन्य) वस्तुओं में उदासीन रहता हूँ-उनमें मेरा कोई प्रकार का रागादिक भाव नहीं है।'

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता द्रष्टा सदाऽप्युदासीनः।

स्वोपात्त-देहमात्रस्ततः परं गगनवदमूर्तः।। (153)

'मैं सदा सत् द्रव्य हूँ, चिद्रूप हूँ, ज्ञाता-द्रष्टा हूँ, उदासीन हूँ, स्वगृहीत देह

परिमाण हूँ और शरीर त्याग के पश्चात् आकाश के समान अमूर्तिक हूँ।'

सन्नेवाऽहं सदाऽप्यस्मि स्वरूपादि-चतुष्टयात्।

असन्नेवाऽस्मि चात्यन्तं पररूपाद्यपेक्षया।। (154)

स्वरूपादि चतुष्टय की दृष्टि से-स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव अपेक्षा से-मैं सदा सत्रूप ही हूँ और पर-स्वरूपादि की दृष्टि से-परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा से-अत्यंत असत् रूप ही हूँ।

यहाँ सत् के विषय में स्वामी समंतभद्र की प्रतिक्षण-ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मक-दृष्टि से भिन्न उन्हीं की स्वद्रव्यादि-चतुष्टय की दृष्टि को अपनाया गया है; जैसा कि उनके देवागमगत निम्न वाक्य से स्पष्ट जाना जाता है-

सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादि-चतुष्टयात्।

असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते।। (15)

इसमें बतलाया है कि सर्वद्रव्य स्वरूपादि-चतुष्टय की दृष्टि से-स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से-सत्रूप ही हैं और पररूपादि-चतुष्टय की दृष्टि से-परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की विवक्षा से-असत्रूप ही हैं। यदि ऐसा नहीं माना जायेगा तो सत्-असत् दोनों में किसी की भी व्यवस्था नहीं बन सकेगी; क्योंकि दोनों परस्पर अविनाभाव-संबंध को लिए हुए हैं-एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं बनता। स्वरूपादि-चतुष्टय रूप सत्द्रव्य यदि परद्रव्यादि-चतुष्टय के अभाव को अपने में लिए हुए नहीं है तो उसके स्वरूप की कोई प्रतिष्ठा ही नहीं बनती और न तब संसार में किसी वस्तु की व्यवस्था ही बन सकती है।

यन्न चेतयते किञ्चिन्नाऽचेतयेत् किञ्चन।

यच्चेतयिष्यते नैव तच्छरीरादि नाऽस्म्यहम्।। (155)

'जो कुछ चेतता-जानता नहीं, जिसने कुछ चेता-जाना नहीं और जो कुछ चेतेगा-जानेगा नहीं वह शरीरादिक मैं नहीं हूँ।'

यदचेतत्तथा पूर्वं चेतिष्यति यदन्यथा।

चेततीत्थं यदत्राऽद्य तच्चिद्द्रव्यं सस्म्यहम्।। (156)

'जिसने पहले उस प्रकार से चेता-जाना है, जो (भविष्य में) अन्य प्रकार से चेतेगा-जानेगा और जो आज यहाँ इस प्रकार से चेतता-जानता है वह सम्यक् चेतनात्मक द्रव्य मैं हूँ।'

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत्।

नाऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता।। (157)

'यह दृश्य जगत् न तो स्वयं-स्वभाव से-इष्ट है-इच्छा तथा राग विषय है, न द्विष्ट है-अनिष्ट अथवा द्वेष का विषय है, किन्तु उपेक्ष्य है-उपेक्षा का विषय है। मैं स्वयं-स्वभाव से एष्टा-इच्छा तथा राग करने वाला-नहीं हूँ; न द्वेष्टा-द्वेष तथा अप्रीति करने वाला नहीं-हूँ; किन्तु उपेक्षिता हूँ-उपेक्षा करने वाला समवृत्ति हूँ।'

मत्तः कायादयो भिन्नास्तेभ्योऽहमपि तत्त्वतः।

नाऽहमेषां किमप्यस्मि ममाऽप्येते न किञ्चन।। (158)

वस्तुतः ये शरीरादिक मुझसे भिन्न हैं, मैं भी इनसे भिन्न हूँ। मैं इन शरीरादिक का कुछ भी (संबंधी) नहीं हूँ और न ये मेरे कुछ होते हैं।

श्रौती भावना का उपसंहार

एवं सम्यग्विनिश्चित्य स्वात्मानं भिन्नमन्यतः।

विधाय तन्मयं भावं न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।। (159)

इस प्रकार (भावनाकार) अपने आत्मा को अन्य शरीरादिक से वस्तुतः भिन्न निश्चित करके और उसमें तन्मय होकर अन्य कुछ भी चिंतन नहीं करें।

निश्चय-व्यवहारमय मेरा मोक्षमार्ग व मोक्ष

(निश्चय-व्यवहारमय मेरा विश्वास (श्रद्धान)-ज्ञान आचरण)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

रत्नत्रय के स्वरूप को जानूँ, अंतरंग-बहिरंग दोनों पहचानूँ।
रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग व मोक्ष, निश्चय से मेरा स्व-शुद्ध स्वरूप।। (1)

तत्त्वार्थ श्रद्धान होता सम्यक्दर्शन, देव-शास्त्र-गुरु का भी श्रद्धान।
निश्चय से स्व-आत्मश्रद्धान, पंचपरमेष्ठी रूप स्व-का श्रद्धान।। (2)

व्यवहार से भले मैं कर्मसहित, निश्चयनय से मैं कर्म से रिक्त।
शुद्ध-बुद्ध व आनंद स्वरूप, ऐसा श्रद्धान हैं सम्यक्दर्शन।। (3)

शंकारहित ऐसा आत्म श्रद्धान, निःशंकित अंग निश्चय श्रद्धान।

व्यवहार से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु, द्रव्य-तत्त्व व पदार्थ श्रद्धान।। (4)

आत्मास्वरूप प्राप्ति (ही) परम लक्ष्य, ख्याति पूजा लाभ मेरा नहीं लक्ष्य।
निःकांक्षित अंग दोनों प्रकार, निस्पृह वीतरागता पाना लक्ष्य।। (5)

आत्म स्वरूप ही है पावन मेरा, अन्य सभी तो अशुचि भरा।
द्रव्य-भाव-नोकर्म अशुचि, निश्चय-व्यवहार निर्विचिकित्सा।। (6)

उक्त विषय में मेरी नहीं मूढ़ता, आगम-अनुभव से श्रद्धान पक्का।
अमूढ़ दृष्टिअंग हैं मेरा स्वभाव, शुद्ध-बुद्ध व आनंद भाव।। (7)

आत्मिक गुणों को मैं बढ़ाता जाऊँ, अनात्म/(विभाव) भाव को छोड़ता जाऊँ।
दीन-हीन (व) अहंकार को त्यागूँ, अपरश्रावी उपगूहन पाऊँ।। (8)

स्व-स्वभाव में स्थित मैं रहूँ, राग द्वेष मोहादि मैं त्यागूँ।
अन्य के प्रति भी ऐसा मैं करूँ, स्थितिकरणअंग मैं पालूँ।। (9)

स्व आत्मिक गुणों में वात्सल्य धरूँ, मोह राग व आसक्ति त्यागूँ।
स्वधर्म/(सद्धर्म) व स्वधर्मी में वात्सल्य धरूँ, विश्वमैत्री की भावना करूँ।। (10)

स्वभाव का मैं विस्तार करूँ, विभाव भाव सभी परिहरूँ।
विश्व में सुधर्म का प्रचार करूँ, प्रभावना अंग ऐसा मैं धरूँ।। (11)

श्रद्धान अनुसार ज्ञान मैं करूँ, आत्मज्ञान युक्त सुज्ञान करूँ।
श्रुतज्ञान रूपी वीतराग विज्ञान से, आत्मोत्थ अनंत ज्ञानी मैं बनूँ।। (12)

इसी हेतु मैं आचरण भी करूँ, विभाव भाव पाप मैं त्यागूँ।
आत्मविकासमय गुणस्थान चढ़ूँ, आत्मविशुद्धि से कर्म नाशूँ।। (13)

इस हेतु ही ध्यान-अध्ययन करूँ, समता-शांति-निस्पृहता धरूँ।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागूँ, अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागूँ।। (14)

आत्मा द्वारा आत्मा में ही रमण करूँ, निर्मल-निर्विकार-अचल बनूँ।
शुद्ध-बुद्ध व आत्मानंद मैं बनूँ, 'कनक' स्वरूपमय मोक्ष मैं बनूँ।। (15)

सीपुर, दिनांक 13.11.2016, प्रातः 9.12

संदर्भ-

''उपयोगो लक्षणं जीवः'' इस सूत्रानुसार समस्त जीवराशि उपयोगमय है। परन्तु कर्म सापेक्षता एवं कर्म निरपेक्षतानुसार अनेकानेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं। सामान्यापेक्षा उपयोग एक, विशेषापेक्षा-शुद्ध-अशुद्ध की अपेक्षा दो, शुद्ध, शुभ, अशुभ रूप से तीन, गुणस्थानापेक्षा 14 इसी प्रकार संख्यात-असंख्यादि भेद-प्रभेद हैं। मध्यम प्रतिपत्ति के अनुसार उपयोग तीन प्रकार हैं। जिसमें समस्त भाव गर्भित हैं। यथा-

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणाम सब्भावो।। (9)

गाथार्थ-जब उपयोगात्मक जीव शुभ भाव से परिणमन करता है तब वह स्वयं ही शुभ होता है। जब अशुभ से परिणमन करता है, तब वह स्वयं ही अशुभ होता है और जब शुद्ध भाव से परिणमन करता है तब वह स्वयं शुद्ध होता है क्योंकि जीव परिणमनशील एक चैतन्य द्रव्य है।

टीकार्थ-जैसे स्फटिकमणि निर्मल होने पर भी जपा पुष्पादि लाल, काला, श्वेत उपाधि वश से लाल, काला श्वेत रंग रूप परिणत करता है वैसे ही यह जीव स्वभाव से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव होने पर भी व्यवहार से गृहस्थापेक्षा यथासंभव सराग सम्यक्त्वपूर्वक दान-पूजादि शुभानुष्ठान को करने से तथा मुनि की अपेक्षा मूल एवं उत्तर गुणादि शुभानुष्ठेन रूप परिणत होने से शुभोपयोग वाला जानना चाहिए। मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग ऐसे पाँच कारण रूप अशुभ योग सहित होता हुआ अशुभोपयोग जानना चाहिए, निश्चय रत्नत्रयात्मक शुद्धापयोग में परिणत करता हुआ शुद्ध जानना चाहिए। सिद्धांत में विस्तार प्रतिपत्ति अपेक्षा असंख्यात लोक मात्र परिणाम है। मध्य प्रतिपत्ति अपेक्षा मिथ्यादृष्टि आदि चतुर्दश गुणस्थान अपेक्षा वर्णन है। इस प्राभृत शास्त्र में उन्हीं गुणस्थान को संक्षेप में शुभ-अशुभ तथा शुद्धोपयोग रूप से कहा गया है-(1) मिथ्यात्व, (2) सासादन, (3) मिश्र इन तीन गुणस्थान में तारतम्य रूप से अशुभ उपयोग है। इसके आगे (4) असंयत सम्यग्दृष्टि, (5) देशविरत श्रावक, (6) प्रमत्त संयत आदि मुनि तीन गुणस्थान में तारतम्य रूप से शुभोपयोग है। इसके आगे (7) अप्रमत्त, (8) अपूर्वकरण, (9) अनिवृत्तिकरण, (10) सूक्ष्म साम्पराय, (11) उपशांतमोह, (12) क्षीणकषाय में तारतम्य रूप से शुद्धोपयोग होता है। इसके बाद (13) सयोगी, (14) अयोगी गुणस्थान इन दो में

शुद्धोपयोग का फल है। ऐसा इस गाथा का भावार्थ है।

इस आर्षवचन से निश्चित होता है कि शुभोपयोग का प्रारंभ चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ होता है एवं पाँचवाँ, छट्ठा, सातवाँ गुणस्थान में उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। उत्कृष्ट शुभोपयोग श्रावक को नहीं हो सकता है। वह भाव लिंगी सातवें गुणस्थानवर्ती मुनि को ही हो सकता है। शुद्धोपयोग (शुक्लध्यान) मुनि की ध्यानावस्था से आरंभ होकर 12वें गुणस्थान तक रहता है। 13वाँ, 14वाँ, गुणस्थान में पूर्ण शुद्धोपयोग प्रगट होता है जो शुद्धोपयोग का फल है।

प्रत्येक जीव स्वभाव से स्वयं सिद्ध भगवान् के समान शुद्ध, बुद्ध, निर्लेप, निरंजन, अनंत, ज्ञान, दर्शनवान् होते हुए भी कर्म के कारण जीव अनेक अवस्थाओं में रहता है। वह सामान्य से 14 प्रकार का है।

गुणस्थान–गुणस्थान का अर्थ है आध्यात्मिक सोपान। जिस सोपान के माध्यम से जीव संसार रूपी भूपृष्ठ से ऊपर चढ़ता हुआ मोक्षरूप महल में पहुँच जाता है। त्रिकाल में इस आध्यात्मिक सोपान के माध्यम से जीवात्मा परमात्मा बनता है, अन्य कोई उपाय न भूतो न भविष्यति। जीव की अत्यंत आध्यात्मिक सुप्त एवं निम्न श्रेणीय अवस्था मिथ्यात्व गुणस्थान है। इस पतित आत्मान्धकार रूपी अति नीच अवस्था में जीव अनादि कला से पतित होकर रच-पच रहा है। जब अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपी निमित्त एवं उपादान का सम्यक् समन्वय रूप समवाय होता है एवं सद्गुरु का उपदेश मिलता है तब जाकर सुप्त अवस्था नष्ट होकर, अर्थात् जाग्रत होकर खड़ा होता है तब स्वयं को अवलोकन करता है एवं स्वस्वरूप को प्राप्त करने के लिए मोक्ष की ओर उत्साहपूर्वक आगे पुरुषार्थ से सुदृढ़ कदम उठाता है। आगे बढ़ते-बढ़ते मोक्ष महल को प्राप्त करता है। इस अलौकिक मोक्ष महल की यात्रा को ही गुणस्थान कहते हैं।

''सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।''

इस सूत्र में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि बहुवचन है और मोक्षमार्ग एक वचन रखने का एक महान् रहस्य छिपा हुआ है, जिसका अर्थ है स्वतंत्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग नहीं है परंतु तीनों का सम्यक् समन्वय ही मोक्षमार्ग है। सूत्र में जो पद क्रम रखा गया है, उसमें भी एक महान् आगमिक एवं आध्यात्मिक सूक्ष्म रहस्य भरा है अर्थात् सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान और सम्यग्ज्ञान पूर्वक

सम्यक्चारित्र होता है। अन्य भी एक कारण है जो कि सम्यग्दर्शन पूर्ण होने के बाद भी साक्षात् तत्काल मोक्ष नहीं मिलता है, जैसे क्षायिक सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान में पूर्ण होने पर भी तत्क्षण मोक्ष नहीं है। कोई जघन्य से एक भव तो और कोई उत्कृष्ट से 4 भवों तक परिभ्रमण करता है।

सम्यग्ज्ञान 13वें गुणस्थान में पूर्ण हो जाता है तो भी तत्क्षण मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, जघन्य से अन्तर्मुहूर्त से लेकर उत्कृष्ट से कुछ कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक संसार में रुका रहता है। चौदहवें गुणस्थान के अंत में शैलेश अवस्था प्राप्त होती है एवं चारित्र पूर्ण होता है तब संपूर्ण कर्म नष्ट होकर शाश्वतिक मोक्ष पदवीं प्राप्त होती है। इस सिद्धांत को जब हम सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करते हैं तब पाते हैं कि सम्यग्दर्शन की पूर्णता मोक्षमार्ग की पूर्णता नहीं है, तथा सम्यग्ज्ञान की पूर्णता भी मोक्षमार्ग की पूर्णता नहीं है, किन्तु सम्यक्चारित्र की पूर्णता ही मोक्षमार्ग की पूर्णता है। इसलिये सूत्र में पहले सम्यग्दर्शन को उसके पश्चात् सम्यग्ज्ञान और शेष में सम्यक्चारित्र को रखा है। मोक्षमार्ग का प्रारंभ सम्यग्दर्शन से एवं पूर्णता सम्यक्चारित्र से होती है। जहाँ पर सम्यक्चारित्र है वहाँ सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान निश्चित रूप से रहेंगे ही, किन्तु जहाँ पर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान है वहाँ चारित्र भजनीय है अर्थात् हो भी सकता है और नहीं भी। जैसे किसी के पास दस हजार रुपये हैं उसके पास सौ रुपये, दस हजार रुपये हैं ही। किन्तु जिसके पास दस रुपये और सौ रुपये है उसके पास हजार रुपये हो सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं। इसलिये मोक्षमार्ग का धनी सम्यक्चारित्रवान् जीव है।

भयवसण मल विवज्जिद-संसार सरीर भोग णिव्विण्णो।
अट्ठ गुणं समग्गो दंसण सुद्धो हु पंचगुरु भत्तो।। (5) रयणसार

जो सप्त भय से रहित, सप्त व्यसन से रहित, सम्यग्दर्शन के 25 अतिचार मल दोष से रहित है, संसार शरीर भोग से विरक्त है, सम्यग्दर्शन के 8 अंग सहित है एवं पंचपरेष्ठी की जो भक्ति करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है।

क्या है परम परतंत्रता व परम दुःख

(पराधीनता से दुःख स्वाधीनता से सुख)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

विवश हैं मानव विवश हैं देव, विवश संसारी जीव कर्म परवश।
द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म आधीन, विभिन्न दुःख भोगते (जीव) हो कर्माधीन।। (1)

जब तक घातिकर्म न होता क्षय, तब तक न पाते जीव परम स्वतंत्र।
ज्ञानदर्शनावरणीय मोह अंतराय, इसके क्षय बिन जीव न बने स्वतंत्र।। (2)

शरीर-इन्द्रिय व मन से सहित, राग द्वेष मोह काम क्रोध सहित।
आहार भय मैथुन परिग्रह सहित, जीव होते हैं पराधीन विवश।। (3)

शारीरिक भूख-प्यास व सर्दी-गर्मी, विविध प्रकार रोग अंगों की कमी।
दुर्घटना से शरीर से होता त्रास, शारीरिक सुंदरता हेतु नाना प्रयास।। (4)

इन्द्रियों की विफलता व विविध रोग, इन्द्रियों की कुप्रवृत्ति से उत्पन्न रोग।
मानसिक विफलता मन के रोग, मानसिक दुष्प्रवृत्ति से उत्पन्न रोग।। (5)

राग द्वेष कुभाव से विवश जीव, आहार भयादि से आक्रांत जीव।
करते विभिन्न दुःख उत्पादक कर्म, जिससे होते जीव अधिक पराधीन।। (6)

इनसे युक्त कोई जीव न हुए सुखी, सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि युक्त भी।
भोगोपभोग से युक्त होते भी, न हुए परम सुखी परतंत्र हुए ही।। (7)

शांति कुंथु अरह तीनों पदधारी भी, गृहस्थावस्था (श्रावक) में न हुए परम सुखी।
परम स्वाधीन व अनंत सुख के लिए, साधु बनकर कर्मों को नाश वे किये।। (8)

स्वाधीनता अतएव परम सुख, पराधीनता ही अतः परम दुःख।
शुद्ध-बुद्ध होने से हैं परमानंद, स्वाधीन सुख 'कनक' का परम लक्ष्य।। (9)

सीपुर, दिनांक 12.11.2016, रात्रि 8.27

संदर्भ-

बंध का कार्य और उसके भेद

बन्धस्य कार्यः संसारः सर्वदुःखप्रदोऽङ्गिनाम्।
द्रव्य-क्षेत्रादिभेदेन स चाऽनेकविधः स्मृतः।। (7)

बंध तत्त्व का कार्य संसार है-भवभ्रमण है-जो कि देहधारी संसारी जीवों को सब दुःखों को देने वाला है और वह द्रव्य-क्षेत्रादि के भेद से-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव-भाव-परिवर्तनादि के रूप में-अनेक प्रकार का है, ऐसा सर्वज्ञ के प्रवचन का जो स्मृतिशास्त्र जैनागम है उससे जाना जाता है।

बंध के हेतु मिथ्यादर्शन आदि

स्युर्मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्राणि समासतः।
बन्धस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः।। (8)

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीनों संक्षेप रूप से बंध के कारण हैं। बंध के कारण रूप में अन्य जो कुछ कथन (कहीं उपलब्ध होता) है वह सब इन तीनों का ही विस्तार रूप है।

त्रिकाल-विषयं ज्ञेयमात्मानं च यथास्थितम्।
जानन्पश्यंश्च निःशेषमुदास्ते स तदा प्रभुः।। (238)
अनन्त-ज्ञान-दृग्वीर्य-वैतृष्णयमयमव्ययम्।
सुखं चाऽनुभवत्येष तत्राऽतीन्द्रियमच्युतः।। (239)

मुक्ति को प्राप्त हुआ जीवात्मा न तो मोह करता है, न संशय करता है, न स्व तथा पर-पदार्थों के प्रति अनध्यवसाय रूप प्रवृत्त होता हैं-स्व-पर पदार्थों से अनभिज्ञ रहता है-और न द्वेष करता है, किन्तु प्रतिक्षण स्व में स्थित रहता है। उस समय वह सिद्धप्रभु त्रिकाल-विषयक ज्ञेय को और आत्मा को यथावस्थित रूप में जानता-देखता हुआ उदासीनता-उपेक्षा को धारण करता है और मुक्ति में यह अच्युत सिद्ध उस अतींद्रिय अविनाशी सुख का अनुभव करता है जो अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य और अनंतवैतृष्ण्य रूप होता है।

मोक्ष सुख विषयक शंका-समाधान

ननु चाऽक्षैस्तदर्थानामनुभोक्तुः सुखं भवेत्।
अतीन्द्रियेषु मुक्तेषु मोक्षे तत्कीदृशं सुखम्।। (240)

इति चेन्मन्यसे मोहात्तन्न श्रेयो मतं यतः।

नाऽद्यापि वत्स! त्वं वेत्सि स्वरूपं सुख-दुःखयोः।। (241)

यहाँ कोई शिष्य पूछता है कि 'सुख तो इंद्रियों के द्वारा उनके विषयों को भोगने वाले के होता है, इंद्रियों से रहित मुक्त जीवों के वह सुख कैसा?' इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं-हे वत्स! तू जो मोह से ऐसा मानता है वह तेरी मान्यता ठीक अथवा कल्याणकारी नहीं है; क्योंकि तूने अभी तक (वास्तव में) सुख-दुःख के स्वरूप को ही नहीं समझा है-इसी से सांसारिक सुख को, जो वस्तुतः दुःख रूप है, सुख मान रहा है।

मोक्ष सुख-लक्षण

आत्माऽऽयत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरम्।

घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः।। (242)

'जो घातिया कर्मों के क्षय से प्रादुर्भूत हुआ है, स्वात्माधीन है-किसी दूसरे के आश्रित नहीं-निराबाध है-जिसमें कभी कोई प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती-अतींद्रिय है-इंद्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं-और अनश्वर है-कभी नाश को प्राप्त नहीं होता-उसको मोक्षसुख कहते हैं।'

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम्।

वदन्तीति समासेन लक्षणं सुख-दुःखयोः।। (9-12)

लोक में यह कहावत प्रसिद्ध है कि पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। अतः जो स्वात्माधीन सुख है वही वस्तुतः सुख है और उसी का नाम मोक्ष सुख इसलिए कहा गया है कि वह घातिया कर्मों के बंधन से मुक्त होने पर ही प्रादुर्भूत होता है।

सांसारिक सुख का लक्षण

यत्तु सांसारिकं सौख्यं रागात्मकमशाश्वतम्।

स्व-पर-द्रव्य-सम्भूतं तृष्णा-सन्ताप-कारणम्।। (243)

मोह-द्रोह-मद-क्रोध-माया-लोभ-निबन्धनम्।

दुःख-कारण-बन्धस्य हेतुत्वाद् दुःखमेव तत्।। (244)

और जो रागात्मक सांसारिक सुख है वह अशाश्वत है-स्थिर रहने वाला नहीं-स्वद्रव्य और परद्रव्य से (मिलकर) उत्पन्न हुआ है-इसीलिए स्वाधीन नहीं-तृष्णा तथा संताप का कारण है, मोह-द्रोह और क्रोध-मान-माया-लोभ का साधन है और दुःख

के कारण बंध का हेतु है, इसलिए (वस्तुत) दुःख रूप ही है।

इंद्रिय विषयों से सुख मानना मोह का माहात्म्य

तन्मोहस्यैव माहात्म्यं विषयेभ्योऽपि यत्सुखम्।
यत्पटोलमपि स्वादु श्लेष्मणस्तद्विजृम्भितम्।। (245)

इंद्रिय विषयों से भी जो सुख माना जाता है वह मोक्ष का ही माहात्म्य है-जो विषयों से सुख मानता है समझना चाहिए कि वह मोह से अभिभूत है। (जैसे) पटोल (कटु वस्तु) भी जिसे मधुर मालूम होती है वह उसके श्लेष्मा (कफ) का माहात्म्य है-समझना चाहिए कि उसके शरीर में कफ बढ़ा हुआ है।

सर्प डसो तब जानिये जब रुचिकर नीम चबाय।
कर्म डसो तब जानिये जब जैन-बैन न सुहाय।।

इसमें यह भाव दर्शाया गया है कि जिस प्रकार किसी मनुष्य को कोई विषधर सर्प काट लेता है तब वह निंब वृक्षों के कड़वे पत्तो को भी रुचि से चबाने लगता है-उसे वे पत्ते कड़वे न मालूम होकर मधुर जान पड़ते हैं-और उसका यह रुचि से नीम चबाना इस बात का प्रमाण होता है कि उसे अवश्य ही सर्प ने डसा है, किसी दूसरे जंतु ने नहीं। उसी प्रकार जिस मानव को जैन संतों का इंद्रिय-विषयों में सुख का निषेधक वचन अच्छा मालूम नहीं होता और वह उसके विपरीत विषय-सुख को ही सुख समझता है तो समझना चाहिए कि वह महामोह रूप कर्म-विषधर का डसा है, जिससे उसका विवेक ठीक काम नहीं करता।

मुक्तात्माओं के सुख की तुलना में चक्रियों-देवों का सुख नगण्य

यदत्र चक्रिणां सौख्यं यच्च स्वर्गे दिवौकसाम्।
कलयाऽपि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनाम्।। (246)

जो सुख यहाँ-इस लोक में-चक्रवर्तियों को प्राप्त है और जो सुख स्वर्ग में देवों को प्राप्त है वह परमात्माओं के सुख की एक कला के बहुत ही छोटे अंश के-भी बराबर नहीं है।

पुरुषार्थों में उत्तम मोक्ष और उसका अधिकारी स्याद्वादी

अतएवोत्तमो मोक्षः पुरुषार्थेषु पठ्यते।
स च स्याद्वादिनामेव नान्येषामात्मविद्विषाम्।। (247)

इसीलिए सब पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ उत्तम माना जाता है और वह मोक्ष

स्याद्वादियों के-अनेकांत मतानुयायियों के-ही बनता है, दूसरे एकांतवादियों के नहीं, जो कि अपने शत्रु आप हैं।

क्षण-क्षण करणीय-अकरणीय

-आचार्य कनकनन्दी

(ओडिसी राग : वाद्य-नृत्य सह गान.....)

क्षण-क्षण निशिदिन...3 आयु हो रही क्षीण...3
करो तू आत्मकल्याण...3 मानव जीव हो धन्य...3।

अन्यथा जीवन शून्य...3 यदि राग-द्वेष न क्षीण...3
इससे ही भवभ्रमण...3 अनंत दुःख की खान...3।। (1)

अनादि से अनंत जीवन...3 व्यर्थ हुए मोहाछन्न...3
आत्मा परमात्मा ज्ञान शून्य...3 चतुः संज्ञा से आछन्न...3।

क्रोध मान माया पूर्ण...3 हिताहित विवेक शून्य...3
जन्म जरा रुजा पूर्ण...3 अनंत दुःख सम्पन्न...3।। (2)

क्षण-क्षण होते कर्मबंधन...3 अनंत कर्माणु पूर्ण...3
आत्मप्रदेश होते पराधीन...3 जिससे दुःख होते उत्पन्न...3।

हर क्षण अतः कर मोहक्षीण...3 कर्मबंध होवे क्षीण...3
इससे ही आत्म उत्थान...3 अंत में परिनिर्वाण...3।। (3)

अतः कर तू ज्ञान-ध्यान...3 वैराग्य समता पूर्ण...3
धन-जन-मान शून्य...3 निस्पृहता परिपूर्ण...3।

आकर्षण-विकर्षण परे...3 बनो तू टंकोत्कीर्ण...3
बहिरंगता से शून्य...3 चिन्मय से परिपूर्ण...3।। (4)

इससे ही तेरा कल्याण...3 अन्य सर्व अप्रयोजन...3
सच्चिदानंद सम्पन्न...3 होना ही है प्रयोजन...3।

समस्त बंधन शून्य...3 होगा तू पूर्ण धन्य...3
'कनक' होगा परिपूर्ण...3 क्षण-क्षण स्व-लीन...3।। (5)

सीपुर, दिनांक 15.11.2016, प्रातः 6.12

मैं स्वयं में मस्त-व्यस्त, अतः पर हेतु अस्त-व्यस्त-संत्रस्त नहीं

मेरी स्वार्थ सिद्धि हेतु मैं व्यस्त-मस्त

मेरा समय मेरा स्वसमय (आत्मा) हेतु समर्पित

अतः परसमय हेतु मेरा समय अभाव

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

अनादि काल से अनंत भवों में जो न कार्य कर पाया हूँ अभी तक।
उस कार्य को अभी करने हेतु, कर रहा हूँ मैं पुरुषार्थ।।

अनंत काल से अनंत भवों में जो न हो पाया वह महान् काम।
इसलिए तो अभी नवकोटि से उसे करने हेतु हुआ मैं दत्तचित्त।। (1)

जिस काम को अनंत बार देव (दानव) मानव बनकर न कर पाया।
नारकी पशु भी बनकर न कर पाया उसे करने हेतु (मैं) सन्नद्ध हुआ।।

जन्म-मरण व जय-पराजय हानि-लाभ गर्व भोगोपभोग भय।
अनंत बार किया ये सब इसलिए ये सब करना सरल सहज।। (2)

राग द्वेष मोह काम क्रोध मद किया हूँ मैं अनंतानंत बार।
इसलिए ये सब करना होता है सरल-सहज व अविरल।।

ये सब काम क्षुद्रातिक्षुद्र जीव करने हेतु होते हैं दक्ष।
ऐसा काम करके मैं क्या न बन जाऊँगा नीच व तुच्छ।। (3)

(मैं) जिस काम हेतु कर रहा पुरुषार्थ वह मेरी स्व की उपलब्धि।
स्व-उपलब्धि मैं स्वयं में करूँ स्व-द्वारा ही स्वयं की प्राप्ति।।

इसी हेतु ही (मैं) करूँ ध्यान-अध्ययन मनन-चिंतन शोध-बोध।
लेखन-प्रवचन अध्यापन-प्रशिक्षण प्रायोगिक करण व अनुभव।। (4)

आत्मविशुद्धि व आत्मानुभूति समता-शांति निस्पृह वृत्ति।
ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व से निवृत्ति एकांतवास व मौन प्रवृत्ति।।

अतएव त्यागूँ मैं राग द्वेष मोह काम क्रोध मद ईर्ष्या तृष्णा द्वंद्व।
निन्दा चुगली व वाद-विवाद आलस्य व प्रमाद।। (5)

भीड़-प्रदर्शन ढोंग-पाखण्ड, (व) धन जन मान-सम्मान।
माईक मंच व विज्ञापन होर्डिंग, पत्रिका व कार्ड निमंत्रण।।

दबाव प्रलोभन चंदा चिट्टा, भौतिक निर्माण व धन संग्रह।
इस हेतु समस्त आयोजन त्याग जो आत्मकल्याण से बाह्य।। (6)

स्व-समय हेतु समय लगाता हूँ, अतः परसमय हेतु समय अभाव।
समय सारमय शुद्ध-बुद्ध बनूँ, इस हेतु 'कनक' कर रहा पुरुषार्थ।।

हर जीव जब स्व-स्व स्वार्थ हेतु, कर रहे हैं काम भी सतत।
मैं क्यों न स्व-स्वार्थ हेतु करूँ पुरुषार्थ ही सतत।। (7)

इस काम में व्यस्त-मस्त हूँ छोड़ के सभी अस्त-व्यस्त-संत्रस्त।
इसमें गौरव व संतोष अनुभव करता हूँ छोड़ के अनात्म काम।।

रागी मोही अज्ञानी जीव हेतु भले मेरा काम लगे हैं व्यर्थ।
ज्ञानानंद भरीत अमृत पान कर 'कनक' बन रहा है कृतकृत्य।। (8)

आनंद बिन सुख न मिलता है, सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि भोग से।
सत्ता संपत्ति आदि (बाह्य) आलंबन बिन सुख मिले वह उत्पन्न आत्मा से।। (9)

सीपुर, दिनांक 13.11.2016, रात्रि 8.17 व प्रातः 5.37

संदर्भ-

आत्मा एक चैतन्य वस्तु होने से उसमें भी अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनंत गुण विद्यमान है। परन्तु आत्मा के गुणों को अवरुद्ध करने वाले, विकृत करने वाले ह्रास करने वाले अनंत कर्म परमाणु रूप विरोधी तत्त्व उस स्वरूप की उपलब्धि के लिए बाधक कारण बने हुए हैं। इन विरोधी कारणों का संयोग होने के कारण आत्मा के वैभाविक परिणमन है। विरोधी तत्त्वों का संचय एवं विध्वंस का कारण तथा अनंतदर्शी होने के कारण बताते हुए गुणभद्रस्वामी आत्मानुशासन में कहते हैं-

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं,
त्वयापि भूयो जननादि लक्षणम्।
प्रतीहि भव्य प्रतिलोम वृत्तिभिः,

ध्रुवं फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणम्।। (106)

Thou host suffered the consequence of false knowledge, attachment and such evil acts in the shape of births and rebirths. Be assured that thou will certainly attain just the opposite result (i.e. liberation) by noble acts of an opposite character (absence of attachment, etc.).

हे भव्य! तूने बार-बार मिथ्यात्व, ज्ञान एवं राग-द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों-सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों-के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल-अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ।। (107) आ.शासन.

Pursue actively and straight, the path of continuous observance of compassion, selfcontrol, renunciation, and equanimity. This purily leads (thee) to th highest (position) free from anxietis and beyond the power of words (to dscribe).

हे भव्य! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इन्द्रिय दमन, दान और ध्यान की परंपरा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त कराता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

दया-दम-त्याग-समाधि निष्ठम् नय प्रमाण प्रकृताङ्ग्साऽर्थम्।
अधृत्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः, जिन! त्वदियं मतमद्वितीयम्।। (6)

युक्त्यानुशासनम्

हे वीर जिन! आपका यह अनेकांत रूप शासन अद्वितीय है। क्योंकि इसमें दया, दम, त्याग और समाधि में तत्परता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य पर्याय स्वरूप जीवादिक तत्त्वों का अविरोध रूप से, सुनिश्चित असंभव बोधक रूप से निर्णय किया गया है एवं इसमें समस्त एकांत प्रवादों दर्शन मोहनीय के उदय से सर्वथा एकांतवादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।

हे आत्मन्! मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनंत अनंतदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। वे अनंतज्ञान को प्राप्त करके पूर्ण रूप प्रत्यक्ष से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे

अतिरिक्त कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग है। आचार्य प्रवर समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

सद्दृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मेश्वरा विदुः।

यदिय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति।। (3) (रत्नकरण्ड श्रा.)

सद्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुधर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है, ऐसा धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताया है। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम पंक्ति में बताते है कि-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।। (तत्त्वार्थसूत्र)

Right belief, Right knowledge (right) Conduct, these (together constitute) the path to liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक (रत्नत्रयः) मोक्ष का मार्ग है।

"Self reverence, self knowledge and self control.
These three alone lead life to sovereign power."

आध्यात्मिक दर्शन के समर्थ प्रचारक-प्रसारक कुंदकुंदस्वामी आध्यात्मिक जगत् की अद्वितीय कृति समयसार में भी विमुक्ति मार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहते है-

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं तेसिमधिगमो णाणं।

रागादीपरिहरणं चरणं ऐसो दु मोक्खपहो।। (162) समयसार

सम्यग्दर्शन-

जीवादि सद्दहणं सम्मतं=जीवादिनवपदार्थानां विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।

जीवादि सद्दहणं सम्मतं=जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित जो सही श्रद्धान है, वही सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्ज्ञान-

तेसिमधिगमो णाणं=तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञानं सम्यग्ज्ञानं।

तेसिमधिगमो णाणं=उन्हीं जीवादि पदार्थों का संशय-उभयकोटिज्ञान, विमोह

विपरीत एक कोटिज्ञान, विभ्रम-अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है, निर्णय कर लिया जाता है, ज्ञात किया जाता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यक् चारित्र-

रागादि परिहरणं चरणं=तेषामेव सम्बन्धित्वेन रागादि परिहारश्चारित्रं।

रागादि परिहरणं चरणं और उन्हीं के संबंध से होने वाले जो रागादिक विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना सो सम्यक् चरित्र कहलाता है।

व्यवहार मोक्षमार्ग-

एसो दु मोक्खपहो इत्येष व्यवहारमोक्षमार्गः।

यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

निश्चय मोक्षमार्ग-

हाँ, भूतार्थनय के द्वारा जाने हुए उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्ध-आत्मा से पृथक् रूप में ठीक-ठीक अवलोकन करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है और उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादि रूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना, निश्चय सम्यक्चारित्र है, इस प्रकार यह निश्चय मोक्षमार्ग हुआ।

नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्रव्यसंग्रह में निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार बताते हैं-

सम्मंद्दसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।

ववहारा णिच्छायदो तत्तियमइओ णियो अप्पा।। (39) (द्रव्यसंग्रह)

Vyavahara, from the ordinary point of view, Samaddamsana Nanam Charanam, perfect faith, knowldge and Conduct, Mokkhassa, of lliberation, Karanam, cause, jane know, Nichchayado, really. Tattiyamaio, consisting of these three. Niyo, of one's own, Appa, Soul.

सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चरित्र स्वरूप जो निज आत्मा है, उसको मोक्ष का कारण जानो।

स्व-हित करणीय

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
अपकुर्वन्परस्याज्ञोदृश्यमानस्य लोकवत्।। (32)

O Witless one! thou art serving this visible show that is not thyself; thou shouldst now renounce dowing good to others and take to dowing good to thine own self!

हे भव्य! अविद्या अर्थात् मोह के कारण जो तुमने देहादि पर द्रव्यों का उपकार किया हैं अभी विद्या के बल पर उस परोपकार को त्याग करके आत्मानुग्रह प्रधान बनो। शरीर आदि परद्रव्य हैं, क्योंकि शरीर पुद्गल से निर्मित हैं। जिस प्रकार कि लोक में अज्ञान अवस्था में लोग दूसरों के उपकार करते हैं, परन्तु ज्ञान होने के बाद दूसरों का उपकार त्याग करके स्व का उपकार करते हैं।

समीक्षा-इस श्लोक में आचार्यश्री ने लौकिक उदाहरण देकर यह समझाया कि जिस प्रकार लोक में बिना जाने शत्रु का भी उपकार कर लेते हैं परन्तु जब पता चल जाता है कि ये मेरा शत्रु है तब उसका उपकार छोड़कर आत्म-उपकार करते हैं, उसी प्रकार शरीर, धन-संपत्ति आदि जो परद्रव्य हैं, उसको मोही जीव अपना मानकर उसका संरक्षण संवर्द्धन करता है, परन्तु स्व-आत्म-द्रव्य को न जानता है, न मानता है, न उसका उपकार करता है। इसलिये दयालु परोपकारी आचार्य गुरुदेव भव्य को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे भव्य! तुम अनादिकाल से मोह से मोहित होकर स्व-उपकार को भूलकर दूसरों के उपकार में ही लगे हुए हो। तुम अभी तक धोबी का काम, गधे का काम, गुलामी का काम करते आ रहे हो। जिस प्रकार धोबी दूसरों के गंदे कपड़े धोता रहता है उसी प्रकार तुम भी दूसरों की गलती को देखकर उसको दूर करने में लगे हुए हो परन्तु स्वयं की गलती का भान तक तुम्हें नहीं है। जिस प्रकार गधा दूसरों का बोझ ढ़ोता है उसी प्रकार तुम भी शरीर का, कुटुम्ब का, धन का, अभिमान ढो रहे हो, गधा अपने पीठ पर चंदन की लकड़ी का भार केवल ढ़ोता रहता है परन्तु चंदन की सुगंधी तथा शीतलता का अनुभव नहीं करता है इसी प्रकार जीव, शरीर, संपत्ति, कुटुम्ब का भार ढ़ोता रहता है। परन्तु आत्मा का आनंद अनुभव नहीं करता है। वह उस भार को ही अपना सर्वस्व, गौरव, बड़प्पन मान लेता है। जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से धन कमाता है उस धन के कारण वह स्वयं को बड़ा मान लेता है और दूसरे लोग भी उसको बड़ा मान लेते हैं। गुलाम जिस प्रकार

मालिक के आधीन होकर उसके निर्देश के अनुसार दीन-हीन होकर मालिक की सेवा करता है उसी प्रकार मोही जीव शरीर, कुटुम्ब, धन, संपत्ति तथा राग-द्वेष के गुलाम बनकर उसकी नौकरी करता है और यह सब करता हुआ भी स्वयं को श्रेष्ठ मान लेता है। जो ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न होकर परिवार तथा वैभवादि त्यागकर स्व-आत्म-कल्याण करना चाहता है, उसे भी ऐसे मोही जीव दीन-हीन असहाय गरीब मान लेते है। इसलिए आचार्यश्री ने यहाँ कहा कि हे मोही! तुमने अनंत संसार में दूसरों के लिए इतना रोया इतना आँसू बहाया कि यदि उस आँसू को इकट्ठा किया जाये तो अनेक समुद्र की जल राशि से अधिक हो जायेगा अनंत बार तुम दूसरों के गुलाम, भाई, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बने और दूसरे भी तुम्हारे अनंत बार बने। इन सबके उपकार के लिए तुमने जितना परिश्रम किया उसका अनंतवाँ भाग भी स्वोपकार में लगाओगे तो तुम तीन लोक का स्वामी अर्थात् सिद्ध भगवान् बन जाओगे। इसलिए कुंदकुंदाचार्य देव ने कहा है-''**आदहिदं कादव्वं**'' अर्थात् आत्महित अच्छी तरह से समग्रता से करना चाहिए। कहा भी है-

पीओसि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं।
अण्णण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहिययरं।। (18) (अ.पा.पृ. 265)

हे महाशय के धारक मुनि! तूने अनंत जन्मों में अन्य-अन्य माताओं के स्तन का इतना दूध पिया है जो समुद्र के जल से भी अत्यंत अधिक है-अनंतगुणित है।

तुह मरणे दुवरेणं अण्णाणं अणेय जणणीणं।
रूण्णाण णयणीरं सायरसलिलादु अहिययरं।। (19)

हे जीव! तेरा मरण होने पर दुःख से रोती हुई अन्य-अन्य अनेक माताओं का अश्रुजल समुद्र के जल से अत्यंत अधिक है।

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झियके सणहरणालट्ठी।
पुंजेइ जइ को वि जार हवदि य गिरिसमधिया रासी।। (20)

हे जीव! तूने अनंत संसार सागर में जिन केश, नख, नाभिनाल और हड्डियों को काटने के पश्चात् छोड़ा है यदि कोई यक्ष उन्हें इकट्ठा करे तो उनकी राशि पर्वत से भी अधिक हो जाये।

मादुपिदुसजणसंबंधिणो य सव्वे वि अत्तणो अण्णे।
इह तोग बंधवा ते ण य परलोगं समं णेंक्षि।। (720) (मू.चा.पृ. 6)

माता-पिता और स्वजन संबंधी लोग ये सभी आत्मा से भिन्न हैं। वे इस लोक में तो बांधव है किन्तु परलोक में तेरे साथ नहीं जाते हैं।

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति मम णाहओत्ति मण्णंतो।
अत्ताणं ण दु सोवदि संसारमहण्णवे बुडुं।। (703)

यह जो मर गया, मेरा स्वामी है वैसा मानता हुआ अन्य जीव अन्य का शोक करता है किन्तु संसार-रूपी महासमुद्र में डूबे हुए अपने आत्मा का शोक नहीं करता है।

अण्णं इमं सरीरादिगं पि जं होज्ज बाहिरं दव्वं।
णाणं दंसणमादात्ति एवं चिंतेह अण्णतं।। (704)

यह शरीर आदि भी अन्य है पुनः जो बाह्य द्रव्य हैं वे तो अन्य हैं ही। आत्मा ज्ञानदर्शन स्वरूप है इस तरह अन्यत्व का चिंतन करो।

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली।
अप्पा कामदुहा धेणू अप्पा मे नन्दणं वणं।। (36)

''मेरा अपना आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शाल्मलि वृक्ष है, काम-दुधा-धेनु है और नंदन वन है।''

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च दुपट्ठिय-सुपट्ठिओ।।37।।

''आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्त्ता-भोक्ता है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही शत्रु है।''

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्ताश्चात्मगोचरे।। (78)

इस प्रकार वही आत्मबोध को प्राप्त होता है जो व्यवहार में अनादरवान् है-अनासक्त है-और जो व्यवहार में आदरवान् है-आसक्त है-वह आत्मबोध को प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ-जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती उसी प्रकार आत्मा में एक साथ दो विरुद्ध परिणतियाँ भी नहीं रह सकतीं, आत्मासक्ति और लोकव्यवहारसक्ति ये दो विरुद्ध परिणतियाँ हैं। जो आत्मानुभवन में आसक्त हुआ आत्मा के आराधन में तत्पर होता है वह लौकिक व्यवहारों से प्रायः उदासीन रहता

है-उनमें अपने आत्मा को नहीं फँसाता और जो लोकव्यवहारों में अपने आत्मा को फँसाये रखता है-उन्हीं में सदा दत्तावधान रहता है-वह आत्मा के विषय में बिल्कुल बेखबर रहता है-उसे अपने शुद्ध स्वरूप का कोई अनुभव नहीं हो पाता।

आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के शोधपूर्ण साहित्य

I. जैन/(भारतीय) तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञानधारा)

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	मूल्य
1.	ब्रह्माण्डीय-जैविक-भौतिक एवं रसायन विज्ञान	151
2.	अनंत शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा तक	201
3.	करो साक्षात्कार यथार्थ सत्य का	50
4.	वैज्ञानिक आइंस्टीन के सिद्धांतों को पुनः परीक्षण की आवश्यकता	15
5.	ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्ड का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	15
6.	करो साक्षात्कार यथार्थ धर्म एवं भाव का	40
7.	विभिन्न क्रम विकासवाद एवं परम आध्यात्मिक विकासवाद (I.Q. < E.Q. < S.Q.)	25
8.	ब्रह्माण्ड-काल-आकाश एवं जीव अनंत (लघु)	25
9.	ब्रह्माण्ड-काल-आकाश एवं जीव अनंत (वृहत्)	201
10.	सत्य परमेश्वर	75
11.	अनंत परम सत्य का समग्र उल्लेख तथा उपलब्धि असंभव है	101
12.	ब्रह्माण्ड के परम विचित्र जीव-मानव	401
13.	सूक्ष्म जीव विज्ञान से शुद्ध जीव विज्ञान	801
14.	विश्व प्रतिविश्व एवं श्याम विवरण	35
15.	परम विकास के उपाय-स्वाध्याय	101
16.	मानव मान की विकृतियों का अनुसंधान, प्रायोगिक व आध्यात्मिक दृष्टि से	401
17.	सर्वोच्च शाश्वतिक विकास आध्यात्मिक ज्ञानानन्द	201

18.	वैज्ञानिक डार्विन तथा अन्यान्य जीव विज्ञान अधिक असत्य आंशिक सत्य	101
19.	प्राचीन-परग्रही (ANCIENT-ALIENS)	101
20.	WHAT IS GOD PARTICLE!? (क्या है ईश्वरीय कण)	121
21.	विश्व का स्वरूप एवं विश्व की कार्य प्रणाली	201
22.	बन्ध एवं मोक्ष	101
23.	समता साधक मुमुक्ष श्रमण की साधना	301
24.	कौन है भगवान् व कैसे बनते है भगवान्	101
25.	अपरिग्रह परमो धर्म-परिग्रह परमो अधर्म	101

II. पद्यात्मक कृतियाँ (गीताञ्जली)

1.	बाल-आध्यात्मिक गीताञ्जली	31
2.	प्रौढ़-आध्यात्मिक गीताञ्जली	51
3.	जैन-आध्यात्मिक गीताञ्जली	31
4.	नैतिक-आध्यात्मिक गीताञ्जली	51
5.	प्रकृति (पर्यावरण) गीताञ्जली	51
6.	विविध गीताञ्जली	21
7.	आत्म कल्याण-विश्व कल्याण गीताञ्जली	51
8.	महान् आध्यात्मिक-वैज्ञानिक तीर्थंकरों के व्यक्तित्व-कृतित्व-शिक्षा गीताञ्जली	51
9.	समीक्षा गीताञ्जली	31
10.	विश्व शांति गीताञ्जली (गद्य-पद्यमय)	51
11.	सर्वोदयी गीताञ्जली (गद्य-पद्यमय)	51
12.	स्वास्थ्य गीताञ्जली	75
13.	आधुनिक गीताञ्जली	101
14.	सर्वोदय शिक्षा गीताञ्जली	101
15.	ब्रह्माण्डीय विज्ञान गीताञ्जली	151
16.	मानवीय गीताञ्जली	51
17.	नारी गीताञ्जली (गद्य-पद्यमय)	31

18.	अनुभव गीताञ्जली	101
19.	भारतीय गीताञ्जली	51
20.	जैन एकता एवं विश्व शांति गीताञ्जली	31
21.	धर्म गीताञ्जली	101
22.	सफलता गीताञ्जली	71
23.	चिन्तन-स्मरण गीताञ्जली	31
24.	कथा-आत्मकथा गीताञ्जली	51
25.	धर्म दर्शन गीताञ्जली	51
26.	सर्वोदय गीताञ्जली	51
27.	अनुशासन गीताञ्जली	101
28.	व्यक्तित्व-विकास गीताञ्जली	101
29.	जीवन प्रबन्ध गीताञ्जली	101
30.	उपलब्धि गीताञ्जली	101
31.	भावना गीताञ्जली	51
32.	मैं (अहम्) गीताञ्जली	51
33.	स्वाध्याय गीताञ्जली	51
34.	संस्कृति-विकृति गीताञ्जली	51
35.	आत्म चिन्तन गीताञ्जली	51
36.	विश्लेषण-आत्म विश्लेषण गीताञ्जली	51
37.	समस्या समाधान गीताञ्जली	51
38.	आदर्श जीवन गीताञ्जली	51
39.	रहस्य गीताञ्जली	51
40.	गुरु गीताञ्जली	101
41.	सत्य-साम्य सुख गीताञ्जली	51
42.	मैं (अहम्) ध्यान गीताञ्जली	51
43.	आध्यात्मिक रहस्य गीताञ्जली	51
44.	धर्म-अधर्म मीमांसा गीताञ्जली	51
45.	निन्दा पुराण गीताञ्जली	101
46.	आध्यात्म बोध गीताञ्जली	101

47.	पुण्य-पाप मीमांसा गीताञ्जली	51
48.	नैतिक-शिक्षा-सामान्य ज्ञान-अनुभव गीताञ्जली	101
49.	परम-स्वतंत्रता गीताञ्जली	81
50.	जैन धर्म रहस्य गीताञ्जली	101
51.	शुद्ध-बुद्ध आनंद गीताञ्जली	81
52.	स्वधर्म/सुधर्म गीताञ्जली	75
53.	आध्यात्मिक संस्कृति गीताञ्जली	51
54.	नैतिक < धार्मिक < आध्यात्मिक गीताञ्जली	51
55.	समालोचना गीताञ्जली	81
56.	जैन सिद्धांत रहस्य गीताञ्जली	101
57.	आत्मकथा-आत्मव्यथा गीताञ्जली	75
58.	आत्मज्ञान गीताञ्जली	51
59.	निस्पृह साधक गीताञ्जली	101
60.	जीने की कला गीताञ्जली	101
61.	आत्मानुशासन गीताञ्जली	101
62.	वैश्विक समस्या-समाधान गीताञ्जली	101

III. आध्यात्मिक

1.	अनेकान्त सिद्धांत (द्वि.सं.)	41
2.	अहिंसामृतम् (द्वि.सं.)	25
3.	अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग	21
4.	अपुनरागमन पथः मोक्षमार्ग (तृ.सं.)	5
5.	आदर्श नागरिक की प्रायोगिक क्रियाएँ	10
6.	आहारदान से अभ्युदय (द्वि.सं.)	15
7.	उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	25
8.	जीवन्त-धर्म सेवा धर्म (द्वि.सं.)	15
9.	दिगम्बर साधु का नगनत्व एवं केशलोंच (हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू-11 सं.)	10
10.	धर्म जैन धर्म तथा भ. महावीर	75

11.	बन्धु बन्धन के मूल (द्वि.सं.)	51
12.	विनय मोक्षद्वार (द्वि.सं.)	31
13.	विश्व धर्म सभा (समवसरण)	51
14.	क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.)	35
15.	श्रमण संघ संहिता (द्वि.सं.)	61
16.	त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य (द्वि.सं.)	35
17.	सत्य परमेश्वर	07
18.	सनातन वैदिक धर्म में भी वर्णित है समाधिमरण	21
19.	मौन रहो या सत्य (हित-मित-प्रिय) कहो!	101
20.	दसण मूला धर्मो तहा संसार मूल हेतु मिच्छतं	25
21.	धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (भाग-1) स.सं.	15
22.	धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (भाग-2) स.सं.	20
23.	धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (भाग-3) स.सं.	30

IV. आध्यात्मिक मनोविज्ञान

1.	अतिमानवीय शक्ति (द्वि.सं.)	51
2.	क्रांति के अग्रदूत (द्वि.सं.) (तीर्थंकर का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण)	35
3.	कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.)	75
4.	ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.) (हिन्दी, अंग्रेजी)	51
5.	लेश्या मनोविज्ञान (द्वि.सं.)	21
6.	तत्त्व-चिंतन-सर्व धर्म समता से विश्व शांति	51
7.	कलिकाल में साधु क्यों बने?	75
8.	उत्सर्ग व अपवास स्वरूप मोक्षमार्ग	51

V. शिक्षा मनोविज्ञान

1.	आचार्य कनकनन्दी की दृष्टि में शिक्षा	11
2.	नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान	40
3.	सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत्)	401
4.	सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (लघु)	21

5.	सर्वोदय तथा संकीर्ण शिक्षा से स्वरूप एवं परिणाम	21
6.	सज्जन संगति से सुगति तो दुर्जन संगति से दुर्गति	

VI. शोध (धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक)

1.	अग्नि परीक्षा	21
2.	अनुभव चिन्तामणि	15
3.	उठो! जागो! प्राप्त करो! (हिन्दी, कन्नड़) (द्वि.सं.)	11
4.	जैन धर्मावलंबी संख्या और उपलब्धि (द्वि.सं.)	21
5.	जीवन विकास एवं विनाश के सूत्र	21
6.	जैन धर्मावलंबियों की दिशा-दशा-आशा	5
7.	जैन एकता एवं विश्व शांति (सं.द्वि.सं.)	5
8.	धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन (द्वि.सं.)	10
9.	नग्न सत्य का दिग्दर्शन (द्वि.सं.) (सत्य को जानो! मानो! स्वीकारो)	25
10.	निकृष्टतम् स्वार्थी तथा क्रूरतम प्राणी : मनुष्य	21
11.	प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता	75
12.	प्राचीन भारत की 72 कलाएँ (द्वि.सं.)	21
13.	भारत को गारत एवं महान् भारत बनाने के सूत्र	15
14.	भारत के सर्वोदय के उपाय	5
15.	मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास	10
16.	मेरा लक्ष्य साधना एवं अनुभव (आचार्यश्री की जीवनी)	10
17.	ये कैसे धर्मात्मा, निर्व्यसनी, राष्ट्रसेवी	21
18.	व्यसन का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (च.सं.) (सप्त व्यसन)	151
19.	विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य	20
20.	शाश्वत समस्याओं का समाधान (द्वि.सं.)	25
21.	शिक्षा, संस्कृति एवं नारी गरिमा	61
22.	संगठन के सूत्र (द्वि.सं.)	41
23.	संस्कार (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़) (15वाँ संस्करण)	10
24.	संस्कार (वृहत्)	50
25.	सत्यान्वेषी आचार्य कनकनन्दी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	10

26.	संस्कृति की विकृति	10
27.	संस्कार और हम	35
28.	हिंसा की प्रतिक्रिया है : प्राकृतिक प्रकोपादि (द्वि.सं.)	35
29.	क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.)	21
30.	विभिन्न क्रम विकासवाद एवं परम आध्यात्मिक विकासवाद	201
31.	भारत की अंतरंग खोज	10
32.	विभिन्न भावात्मक प्रदूषण एवं भ्रष्टाचार : कारण तथा निवारण	41
33.	वर्तमान की आवश्यकता : धार्मिक उदारता न कि कट्टरता (द्वि.सं.)	15
34.	वैश्वीकरण, वैश्विक धर्म एवं विश्व शांति	21
35.	वैज्ञानिक आध्यात्मिक धर्मतीर्थ प्रवर्तन	51
36.	अभी की समस्याएँ-सभी के समाधान	21
37.	मानव धर्म : स्वरूप एवं परिणाम (सं.द्वि.सं.)	15
38.	विकास के चतुः आयाम सिद्धांत	51
39.	एकला चलो रे!	
40.	आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से भी परे है प्राचीन जैन ग्रंथों का वर्णन	21
41.	सत्य गवेषणा	51
42.	बोल्ड स्मार्ट एवं ब्यूटीफूल पर्सनल्टी अप टू डेट बनने का फार्मूला (द्वि.सं.)	

VII. अनुवाद, टीका, समीक्षा (आध्यात्मिक विज्ञान)

1.	इष्टोपदेश (आध्यात्मिक मनोविज्ञान)	101
2.	पुरुषार्थसिद्धपुपाय (अहिंसा का विश्व स्वरूप)	201
3.	विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह)	101
4.	स्वतंत्रता के सूत्र (मोक्षशास्त्र/तत्त्वार्थसूत्र) (द्वि.सं.)	201
5.	सत्यसाम्य सुखामृतम् (प्रवचनसार)	601
6.	आध्यात्मिक रहस्य के रहस्य (द्वात्रींशतिका)	51
7.	भावसंग्रह (आध्यात्मिक क्रमविकास-गुणस्थान) (द्वि.सं.)	251

VIII. मीमांसा, समालोचना, संकलन

1.	कौन है विश्व का कर्त्ता-हर्त्ता-धर्त्ता?	21
2.	ज्वलंत शंकाओं का शीतल समाधान (द्वि.सं.)	75

3.	जिनार्चना पुण्य-1 (तृ.सं.)	75
4.	जिनार्चना पुण्य-2	21
5.	निमित्त उपादान मीमांसा (द्वि.सं.)	21
6.	पुण्य-पाप मीमांसा (द्वि.सं.)	35
7.	पूजा से मोक्ष-पुण्य-पाप भी	41
8.	भाग्य एवं पुरुषार्थ (हिन्दी, मराठी) (प.सं.)	15
9.	शोधपूर्ण ग्रंथ तथा ग्रंथकर्ता आचार्य कनकनन्दी	10
10.	अमृतत्व की उपलब्धि के हेतु समाधिमरण	40
11.	परोपदेश कुशल बहुतेरे	5
12.	विविध दीक्षा विधि	31
13.	विश्व हितकारी जैन धर्म का स्वरूप	10
14.	गुरु-भक्ति-पूजा	

IX. इतिहास

1.	ऋषभ पुत्र भरत से भारत (द्वि.सं.)	35
2.	धर्म प्रवर्तक 24 तीर्थंकर (द्वि.सं.)	21
3.	भारतीय आर्य कौन कहाँ से, कब से, कहाँ के?	50
4.	युग निर्माता भ. ऋषभदेव (द्वि.सं.)	61
5.	युग निर्माता भ. ऋषभदेव (पद्यानुवाद)	5
6.	विश्व इतिहास	51

X. स्मारिका (वैज्ञानिक संगोष्ठी)

1.	कर्म सिद्धांत और उसके वैज्ञानिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक आयाम	60
2.	शिक्षा-शोधक-स्मारिका	100
3.	स्मारिका (स्वतंत्रता सूत्र में विज्ञान)	81
4.	स्मारिका (स्वतंत्रता के सूत्र में विज्ञान)	51
5.	जैन धर्म में विज्ञान	150
6.	भारतीय संस्कृति में विश्व शांति और पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र	20
7.	मंथन (जैन दर्शन एवं विज्ञान)	

XI. स्वप्न शकुन-भविष्य विज्ञान, मंत्र सामुद्रिक शास्त्र

(शरीर से भविष्य ज्ञान)

1.	सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा (भाव-भाग्य तथा अंग विज्ञान)	251
2.	भविष्य फल विज्ञान (द्वि.सं.)	301
3.	मंत्र विज्ञान (द्वि.सं.)	35
4.	शकुन-विज्ञान	75
5.	स्वप्न विज्ञान (द्वि.सं.)	101

XII. स्वास्थ्य विज्ञान

1.	समग्र स्वास्थ्य के उपाय : तपस्या	25
2.	आदर्श विचार-विहार-आहार (द्वि.सं.)	75
3.	धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (भाग-1) (तृ.सं.)	50
4.	धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (भाग-2)	21
5.	शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम	201
6.	जीवनोपयोगी सामान्य ज्ञान	

XIII. प्रवचन

1.	क्रांति दृष्टा प्रवचन	11
2.	जीने की कला (स.द्वि.सं.)	25
3.	भगवान् महावीर तथा उनका दिव्य संदेश	5
4.	भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने के लिए समग्र क्रांति चाहिए	11
5.	मनन एवं प्रवचन (द्वि.सं.)	10
6.	विश्व शांति के अमोद्य-उपाय (द्वि.सं.)	10
7.	विश्व धर्म के दश लक्षण	41
8.	व्यक्ति एवं समाज निर्माण के आद्य कर्त्तव्य	15
9.	शांति क्रांति के विश्व नेता बनने के उपाय	41
10.	समग्र क्रांति के उपाय	15
11.	भ्रष्टाचार-हिंसा-मुक्ति	25
12.	दिव्य उपदेश	51

XIV. डॉ. एन.एल. कछारा के साहित्य (संस्थान के सचिव)

1. जैन कर्म सिद्धांत : आध्यात्म और विज्ञान 50
2. समवसरण (आचार्य कनकनन्दी जी से भेंटवार्ता)
3. Join Doctrine of Karmo 35
4. षटद्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा 30
5. जैन दर्शन संबंधी अंग्रेजी में डॉक्यूमेंट्री फिल्म सी.डी.

XV. आचार्यश्री के आगामी प्रकाशनाधीन ग्रंथ

1. संपूर्ण कला एवं वाणिज्य, न्याय, राजनीति, अर्थशास्त्र एवं समाज विज्ञान (नीतिवाक्यामृतम्) (शीघ्र प्रकाशनाधीन) : पृष्ठ प्राय : 1500

XVI. ताम्रपत्र में उत्कीर्ण ग्रंथ प्रकाशक एवं अर्थ सहयोग-प्रो. प्रभात कुमार जैन

1. द्रव्यसंग्रह 8500
2. समाधितंत्र 16000
3. तत्त्वार्थसूत्र 52000
4. इष्टोपदेश
5. भक्तामर स्त्रोत
6. कषाय पाहुड़-सिद्धांत सूत्र (कागज में भी छपे ग्रंथ)

   ताम्रपत्र के ग्रंथ लागत मूल्य से भी कम मूल्य में उपलब्ध है

   ताम्रपत्र के ग्रंथ तथा आधी छूट में आचार्यश्री कनकनन्दी जी के ग्रंथ एवं प्राचीन ग्रंथ क्रय करने के लिए संपर्क करें।
7. महावीराष्टक

XVII. कैलेण्डर

1. जीवनोपयोगी दोहा
2. आ. कनकनन्दी श्रीसंघ तथा भक्त-शिष्यों द्वारा धर्म प्रचार
3. आ. कनकनन्दी की आध्यात्मिक यात्रा
4. आ. कनकनन्दी श्रीसंघ के नियम
5. आ. कनकनन्दी जी संबंधित व्यक्तित्व-कृतित्व एवं भविष्य

XVIII. फोल्डर

1. फोल्डर - 14 प्रकार के

XIX. कथा

1. कथा सौरभ
2. कथा परिजात
3. कथा सुमन मालिका
4. कथा पुष्पाञ्जली
5. कथा चिन्तामणि
6. कथा त्रिवेणी

XX. अंग्रेजी साहित्य

1. Fate and efforts (II. e.d.)
2. Leshya Psychology (II. e.d.)
3. Moral Education
4. Nakedness of digamber jain saints and keshlonch (II. e.d.)
5. Sanskars
6. Sculopr the Rishabhdeo
7. Phylosophy of Scientific Religion
8. What kind of Dharmatma (Piousman) these are
9. Spiritual Meditation

XXI.

1. विलक्षण ज्ञानी (आचार्य कनकनन्दी का व्यक्तित्व व कृतित्व-आ. आस्थाश्री)
2. आचार्यश्री कनकनन्दी विधान आर्यिका आस्थाश्री राजश्री
3. गुरु अर्चना
   रचनाकार-मुनिश्री गुप्तिनन्दी जी, आर्यिका राजश्री
4. आनंद की खोज
   लेखिका-विद्याश्री सुषमा जैन, सहारनपुर

''सम्पर्क सूत्र एवं ग्रंथ प्राप्ति स्थल''

डॉ. नारायणलाल कछारा (सचिव)
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422, मो. 092144-60622
ई-मेल : nlkachhara@yahoo.com

विश्वकल्याणी जिनवाणी माँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : बंगला-उड़िया....., हाँ तुम बिलकुल ऐसे हो....., शत-शत वंदन....., कठिन-कठिन.....(मराठी).....)

जयतु जयतु माँ जिनवाणी...जयतु जयतु माँ श्रुतवाणी...
जयतु जयतु अनेकान्त वाणी...जयतु जयतु यथार्थ वाणी...(स्थायी)...
सर्वज्ञ देव से निसृत वाणी...गणधर द्वारा ग्रंथित वाणी...
सर्वभाषामयी श्री दिव्य वाणी...सर्व सत्य प्रकाशिनी वाणी...(1)...
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक...आत्मा से परमात्मा तक...
मूर्तिक से लेकर अमूर्तिक तक...समस्त सत्य-तथ्य प्रकाशक...(2)...
तर्क-प्रमाण सहित वाणी...तर्कातीत सत्य संयुक्त वाणी...
तन-मन-इन्द्रिय कथक वाणी...तन-मन-अक्ष परे बखानी...(3)...
कल्पनातीत भी आप बखानी...इन्द्रिय-मनातीत आपकी वाणी...
मानव बुद्धि व यंत्रातीत वाणी...सार्वभौम परम सत्य बखानी...(4)...
अनंत प्रज्ञा से निसृत वाणी...अनंत सत्य-तथ्य बखानी...
समस्त दुःखों की निवृत्त वाणी...अनंत मोक्ष सुख प्राप्ति बखानी...(5)
आप ही जगत् पावनी माता...निष्पक्ष-उदार कथक माता...
विश्वकल्याणी हे! जगज्जननी...'कनकनन्दी' की ज्ञानदायिनी...(6)...

विज्ञान व गणित से प्राप्त मुझे अनेक लाभ

स्वास्थ्य-ज्ञान-परिकल्पना-लेखन-चिन्तन-समन्वय-समता-शान्ति आदि

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., आत्मशक्ति.....)

विज्ञान व गणित से मुझे प्राप्त, हो रहे हैं अनेक लाभ।
सीखना-सिखाना पढ़ना-पढ़ाना, लिखना-प्रवचन में लाभ।।
स्वास्थ्य रक्षा-परिकल्पना, अनुमान ज्ञान-कार्य-कारण संबंध।
अनेकांत व व्यापक दृष्टि, सनम्र सत्यग्राही व ऊर्जा सिद्धांत।। (1)
तुलना करना समीक्षा करना, समन्वय व अन्तर्संबंध करना।

हित को जानना अहित त्यागना, अंधानुकरण नहीं करना।।

भौतिक विज्ञान व रसायन ज्ञान, जीव विज्ञान व मनोविज्ञान।
अणु विज्ञान व स्वास्थ्य विज्ञान, पर्यावरण ज्ञान-विश्व विज्ञान।। (2)

अङ्क गणित व बीज गणित, रेखा गणित से ले अलौकिक गणित।
उक्त विषयों हेतु होते सहयोगी, मात्रा से ले गुणवत्ता तक।।

कुछ उदाहरणों को मैं लिख रहा हूँ, उक्त विषयों के परिज्ञान हेतु।
मेरे शताधिक ग्रंथों में वर्णन है, कुछ वर्णन यहाँ साक्ष्य हेतु।। (3)

ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर त्यागना, सात्विक-शुद्ध/(पौष्टिक) आहार करना।
प्रदूषण रहित स्थान में रहना, ईर्ष्या तृष्णा घृणा क्रोधादि न करना।।

इससे तन-मन स्वस्थ्य रहते, बुद्धि लब्धि (I.Q.) भी अधिक होती।
तन-मन की ऊर्जा नष्ट न होती, उत्तरोत्तर दोनों की वृद्धि होती।। (4)

इससे सीखना-सिखाना आदि, काम उत्तरोत्तर बढ़ते जाते।
समता-शांति-तृप्ति बढ़ती, ज्ञान-वैराग्य-निस्पृहता बढ़ते।।

प्रदूषण रहित स्थान/(क्षेत्र) में रहने से, ऑक्सीजन/(प्राणवायु) पर्याप्त मिलती।
माइक्रोकॉण्ड्रिया जिससे रक्त बनाते, जिससे तन-मन को ऊर्जा मिलती।। (5)

अधिक सीखना व सिखाने हेतु, स्मरण-चिंतन-शोध-बोध हेतु।
अधिक प्राणवायु व रक्त चाहिए, दिमाग को ऊर्जा-आपूर्ति हेतु।।

भारतीय प्राचीन ग्रंथों में यह सब, वर्णन है विज्ञान अभी खोज रहा है।
किन्तु वैज्ञानिक पद्धति द्वारा, समझना-प्रयोग सरल हो रहा है।। (6)

केवल रूढ़ि व रीति-रिवाज से, सत्य-तथ्य का सही न होता ज्ञान।
सही ज्ञान के अभाव से अनुकरण, प्रयोग करना न होता आसान।।

विद्यार्थी अवस्था से ही उपरोक्त, अनेक विषय मुझे ज्ञात हैं।
अध्ययन-अनुभव-प्रयोग से, अनेक विषय मुझे ज्ञात थे।। (7)

इस हेतु भी मैं आधुनिक विज्ञान का, कर रहा शोध-बोध-अध्ययन।
विदेशी वैज्ञानिक टी.वी. चैनलों से, तथाहि वैज्ञानिक साहित्य अध्ययन।।

लेख-ग्रंथ-कविताओं में भी, कर रहा हूँ यह सभी वर्णन।

जिससे लाभान्वित हो रहे हैं, देश-विदेशों के प्रवृद्धजन।। (8)

जो हुए लाभान्वित अभी तक, वे सभी हो रहे हैं सुखी-सम्पन्न।
वे भी मुझे सहयोग कर रहे हैं, 'कनकनन्दी' भी हो रहे प्रसन्न।। (9)

सीपुर, दिनांक 23.11.2016, रात्रि 8.40

निस्पृह संत वैज्ञानिक श्रमणाचार्यश्री कनकनन्दी जी

गुरुदेव के पूर्व शोध-बोध का...
आधुनिक विज्ञान अभी शोध कर रहा है!

शोधार्थी-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : ले के पहिला-पहिला प्यार.....)

कनक गुरु का ये आगज/(आह्वान)...विश्वव्यापी बना आज...
शोध-बोध-अनुभव...पुरोगामी/(क्रांतिकारी) बना...(ध्रुव)...

बाल्यकाल से आप..जिज्ञासु छात्र हैं...सत्य-तथ्य शोधक..अनुभवधारी हैं...
होऽऽऽ अल्पवय में धारे..लक्ष्य महान् हैं...वैज्ञानिक संत विश्व नेता बनने के...
(अजी!) तीनों लक्ष्य किये साकार...बनके दिगम्बर मुनिराज...

शोध-बोध...(1)...

परिकल्पना शक्ति की..उड़ान देखो...ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म..गहन महान् है...
होऽऽऽ अनेकांत व्यापक दृष्टि..सत्यग्राही है...अनुमान ज्ञान कार्य-कारण सहित है...
(अजी!) अलौकिक गणित-विज्ञान...युति का है ये कमाल...

शोध-बोध...(2)...

उक्त वृत्तियों से हो रहे..अनेक लाभ है...सीखना-सिखाना-लिखना...पढ़ना-पढ़ाना है...
होऽऽऽ तुलनात्मक ज्ञान..समीक्षा करना...अंतर्संबंध व..समन्वय करना...
(अजी!) पूर्व के शोध-अनुमान...सत्य सिद्ध होते आज...

शोध-बोध...(3)...

जहाँ न पहुँचे रवि..वहाँ पहुँचे कवि...जहाँ न पहुँचे कवि..वहाँ आप अनुभवी...
होऽऽऽ जहाँ न पहुँचे..आधुनिक मनोविज्ञानी..उनसे भी आगे आप..महापुरोगामी...
(अजी!) विश्व कवि लेखक आप...ज्ञानियों में सरताज...

शोध-बोध...(4)...

भारतीय/(जैनागम) तथ्य जो..परम विज्ञान है...आधुनिक ज्ञान-विज्ञानों..से भी परे है...
होऽऽऽ स्व-रचित शताधिक..ग्रंथों में लिखकर...शोधपूर्ण साहित्य में..सिद्ध कर दिखाये हैं...
(अजी!) विश्व गुरु का आह्वान...'सुविज्ञ' जन पाओ ज्ञान...

शोध-बोध...(5)...

सीपुर, दिनांक 25.11.2016, मध्याह्न 1.07

आधुनिक विज्ञान से परे जिनागम विज्ञान

सृजन-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : सारे जहाँ से अच्छा....., सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों.....)

ऐ दुनिया वालों सुन लो...सत्य/(तथ्य) जिनागम साराऽऽऽ
अद्यतन विज्ञान परे...सर्वज्ञों की ये धाराऽऽऽ...ऐ दुनिया वालों...(टेक)...

आओ उदारभावी...सनम्र सत्यग्राहीऽऽऽ
अब आपको बताये...यह सूक्ष्म ज्ञान धाराऽऽऽ/(अलौकिक ज्ञान धारा) (1)

सापेक्षवाद थ्योरी...आइंस्टीन ने बताईऽऽऽ
अनेकांत-स्याद्वाद...परिपूर्ण है हमाराऽऽऽ/(वस्तु स्वभाव वालाऽऽऽ) (2)

भौतिक पुद्गल परमाणु...सिद्धांत सूक्ष्म जग मेंऽऽऽ
अद्यतन विज्ञान पूर्व...आगम में बतायाऽऽऽ/(भगवान् ने बतायाऽऽऽ) (3)

क्रम विकासवास डार्विन...अब फेल हो चुका हैऽऽऽ
मार्गणा, जीव-समास...शाश्वत है हमाराऽऽऽ/(फारवर्ड है हमाराऽऽऽ) (4)

जगदीश चन्द्र बसु ने...वनस्पति जीव सुझायाऽऽऽ
अत्यंत सूक्ष्म व्यापक...जीव विज्ञान हमाराऽऽऽ/(जीवकाण्ड गोम्मट्टसारऽऽऽ) (5)

फ्रायड मनोविज्ञानी...मनो विश्लेषण करायेऽऽऽ
संज्ञा, कषाय, लेश्या...मनोज्ञान अभ्रांति वालाऽऽऽ/(मनोविज्ञान हमाराऽऽऽ) (6)

पॅरा सायक्लोजी देखो...आधुनिक इस जगत् मेंऽऽऽ
चमत्कारपूर्ण है य...गुणस्थान ऋद्धि वालाऽऽऽ/(आत्मिक सोपान वालाऽऽऽ) (7)

खगोलीय शास्त्री देखो...अपूर्ण ज्ञान वालेऽऽऽ

गणितीय और व्यापक...लोकालोक ये हमाराऽऽऽ/(ब्रह्माण्डीय हमाराऽऽऽ) (8)
आधुनिक गणित ज्ञानी...संख्यात में है झूलेऽऽऽ
अनंत सीमा वाला...अलौकिक गणित हमाराऽऽऽ/(लोकालोक माप वालाऽऽऽ) (9)
आधुनिक शिक्षा देखो...संकीर्ण भौतिकवादीऽऽऽ
सर्वांगीण, सर्वोदयी...अध्यात्म शिक्षा प्यारीऽऽऽ/(व्यापक विकासदायीऽऽऽ) (10)
धर्म संपूर्ण विज्ञान...स्व-पर-विश्व हितकर/(शांतिकर)ऽऽऽ
विज्ञान है सत्यांश...कहते 'कनक' सूरीवरऽऽऽ/(जाने है ज्ञानीजनऽऽऽ) (11)

हल्दीघाटी, दिनांक 01.11.2013, रात्रि प्रायः 10.00

विज्ञान व गणित से प्राप्त मुझे अनेक लाभ

(स्वास्थ्य-ज्ञान-परिकल्पना-लेखन-चिन्तन-समन्वय-समता-शान्ति आदि...)

सृजेता-आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव
रूपान्तरण-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : ले के पहिला-पहिला प्यार.....)

विज्ञान-गणित से प्राप्त...हो रहे अनेक लाभ...
आओ सत्य जिज्ञासु...तुम भी बनो महान्...(ध्रुव)...
सीखना-सिखाना व पढ़ना-पढ़ाना...लिखना-प्रवचन-वार्ता लाभ...
होऽऽऽ स्वास्थ्य रक्षा व परिकल्पना...अनुमान ज्ञान कार्य-कारण संबंध...
अनेकांत दृष्टि उदार...सत्यग्राही सद्भाव...आओ...(1)...
तुलना करना समीक्षा करना...अन्तर्संबंध व समन्वय करना...
होऽऽऽ हित को जानना अहित त्यागना...अंधानुकरण कभी न करना...
जोड़ रूप होवे ज्ञान...गुणग्रहण का भाव...आओ...(2)...
भौतिक विज्ञान व रसायन ज्ञान....जीव विज्ञान व मनोविज्ञान...
होऽऽऽ अणु विज्ञान व स्वास्थ्य विज्ञान...पर्यावरण ज्ञान-विश्व विज्ञान...
धर्म-दर्शन-विज्ञान...होवे समन्वय महान्...आओ...(3)...
अङ्क गणित व बीज गणित...रेखा गणित से ले अलौकिक गणित...

होऽऽऽ उक्त विषयों हेतु होते सहयोगी...मात्रा से ले गुणवत्ता तक...
इन विषयों के परिज्ञान...मेरे साहित्यों में प्राप्त...आओ...(4)...
कुछ उदाहरणों को मैं लिख रहा हूँ...जो मेरे शताधिक ग्रंथों में साक्ष्य...
होऽऽऽ ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर त्यागना...सात्विक-शुद्ध/(पौष्टिक) आहार करना...
प्रदूषण रहित निवास...ईर्ष्या तृष्णा घृणा त्याग...आओ...(5)...
इससे तन-मन स्वस्थ्य रहते...बुद्धि लब्धि (I.Q.) भी अधिक होती...
होऽऽऽ तन-मन की ऊर्जा नष्ट न होती...उत्तरोत्तर दोनों की वृद्धि होती...
आई.क्यू. (I.Q.) ई.क्यू. (E.Q.) बढ़ती जाये...आध्यात्मिक लब्धि एस.क्यू. (S.Q.)
पाये...आओ...(6)...
इससे सीखना-सिखाना आदि...काम उत्तरोत्तर बढ़ते जाते...
होऽऽऽ समता-शांति-तृप्ति बढ़ती...ज्ञान-वैराग्य-निस्पृहता बढ़ती...
प्रदूषण रहित स्थान...ऑक्सीजन/(प्राणवायु) मिले पर्याप्त...आओ...(7)...
माइक्रोकॉण्ड्रिया जिससे रक्त बनाते...जिससे तन-मन को ऊर्जा मिले...
होऽऽऽ अधिक सीखना व सिखाने हेतु...स्मरण-चिंतन-शोध-बोध हेतु...
अधिक प्राणवायु रक्त...चाहिए दिमाग को ऊर्जा...आओ...(8)...
प्राचीन भारतीय ग्रंथों में यह सब...वर्णन है अभी विज्ञान खोज (कर) रहा है...
होऽऽऽ किन्तु वैज्ञानिक पद्धति द्वारा...समझना व प्रयोग सरल हो रहा है...
केवल रूढ़ि-रीति-रिवाज...से न होवे सत्य/(तथ्य) ज्ञान...आओ...(9)...
सही ज्ञान के अभाव से अनुकरण...प्रयोग करना न होता आसान...
होऽऽऽ विद्यार्थी अवस्था से ही उपरोक्त...अनेक विषय मुझे ज्ञात हैं...
अध्ययन अनुभव-प्रयोग से...अनेक विषय ज्ञात थे...आओ...(10)...
इस हेतु भी मैं आधुनिक विज्ञान का...कर रहा शोध-बोध व अध्ययन...
होऽऽऽ विदेशी वैज्ञानिक टी.वी. चैनलों से...तथाहि वैज्ञानिक साहित्य अध्ययन...
लेख-ग्रंथ-कविताओं में...कर रहा सभी वर्णन...आओ...(11)...
जिससे लाभान्वित हो रहे हैं...देश-विदेशों के प्रवृद्धजन...
होऽऽऽ जो हुए लाभान्वित अभी तक...वे सभी हो रहे सुखी-सम्पन्न...
वे भी कर रहे सहयोग...'कनकनन्दी' भी प्रसन्न...आओ...(12)...

सीपुर, दिनांक 25.11.2016, मध्याह्न 2.18

संकल्पपूर्वक भावात्मक-कल्पना/(चित्र) से होता है लक्ष्य प्राप्त

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू उत्तम भावना कर!...

संकल्पपूर्वक कल्पना करोऽऽऽ भावी-भाव चित्रण करऽऽऽ जिया...(ध्रुव)...

उत्तम भाव से पुण्य बंध होताऽऽऽ होती पाप की निर्जराऽऽऽ
उत्तम भाव व उत्तम संकल्प सेऽऽऽ भावी कल्पना करो साकारऽऽऽ
लक्ष्य भी होगा साकारऽऽऽ जिया...(1)...

यथा शिल्पकार संकल्पनापूर्वकऽऽऽ बनाता मन में मूर्ति आकारऽऽऽ
कम्पास, स्केल, उपकरणों के द्वाराऽऽऽ मूर्ति को करता साकारऽऽऽ
अनावश्यक को करे परिष्कारऽऽऽ जिया...(2)...

पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ, रूपातीतऽऽऽ एकाग्रचित्त से करो ध्यानऽऽऽ
स्वयं को शुद्ध-बुद्ध-आनंदमयऽऽऽ स्वयं में स्वयं करो ध्यानऽऽऽ
जिससे होगा स्वयं में प्रगटऽऽऽ जिया...(3)...

स्वयं की उपलब्धि ही परम उपलब्धिऽऽऽ जिससे बनोगे शुद्ध-बुद्धऽऽऽ
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य पूर्णऽऽऽ अनंत अव्याबाध गुण पूर्णऽऽऽ
स्वयं में ही स्वयं परिपूर्णऽऽऽ जिया...(4)...

इससे पूर्व अन्यान्य उपलब्धियाँऽऽऽ स्वयमेव होती उपलब्धऽऽऽ
फल प्राप्ति पूर्व पुष्पादि की प्राप्तिऽऽऽ यथा स्वयं होती उपलब्धऽऽऽ
(अतः) स्व-उपलब्धि का करो संकल्पऽऽऽ जिया...(5)...

यह है परम ध्यान, कल्पना-चित्रणऽऽऽ हर कार्य करने के नियमऽऽऽ
यही शिक्षा परम प्रशिक्षण आदिऽऽऽ परिकल्पना से ले सही परिश्रमऽऽऽ
'कनक' साधना करो ये महामंत्रऽऽऽ जिया...(6)...

सीपुर, दिनांक 23.11.2016, मध्याह्न 2.55

संदर्भ-

उक्त ध्यान कथन में भाव-अर्हंत विवक्षित है-द्रव्य-अर्हंत नहीं। जो आत्मा अर्हद्ध्यानाविष्ट होता है-अर्हंत का ध्यान करते हुए उसमें पूर्णतः लीन हो जाता है-वह उस समय भाव से अर्हंत होता है, उस भाव-अर्हंत में ही अर्हंत का ग्रहण है। अतः अतस्मिंस्तद्ग्रहः का-जो जिस रूप में नहीं उसे उस रूप में ग्रहण का-दोष नहीं आता।

परिणमते येनाऽऽत्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।
अर्हद्ध्यानाऽऽविष्टो भवार्हन् स्यात्स्वयं तस्मात्।। (190)

'जो आत्मा जिस भावरूप परिणमन करता है वह उस भाव के साथ तन्मय होता है अतः अर्हद्ध्यान से व्याप्त आत्मा स्वयं भाव-अर्हंत होता है।'

परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं।
तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेयव्वो।। (8)
येन भावेन यद्रूपं ध्यायत्यात्मानमात्मवित्।
तेन तन्मयतां याति सोपाधिः स्फटिको यथा।। (191)

'आत्मज्ञानी आत्मा को जिस भाव से जिस रूप ध्याता है उसके साथ वह उसी प्रकार तन्मय हो जाता है जिस प्रकार कि उपाधि के साथ स्फटिक।'

अथवा भाविनो भूताः स्वपर्यायास्तदात्मकाः।
आसते द्रव्यरूपेण सर्वद्रव्येषु सर्वदा।। (192)
ततोऽयमर्हत्पर्यायो भावी द्रव्यात्मना सदा।
भव्येष्वास्ते सतश्चाऽस्य ध्याने को नाम विभ्रमः।। (193)

'अथवा सर्वद्रव्यों में भूत और भावी स्वपर्यायें तदात्मक हुईं द्रव्यरूप से सदा विद्यमान रहती हैं। अतः यह भावी अर्हत्पर्याय भव्य जीवों में सदा विद्यमान है, तब इस सत्रूप से स्थित अर्हत्पर्याय के ध्यान में विभ्रम का क्या काम?-अपने आत्मा को अर्हंत रूप से ध्यान में विभ्रम की कोई बात नहीं है। यही भ्रांति के अभाव की बात अपने आत्मा को सिद्धरूप ध्यान के संबंध में भी समझनी चाहिए।'

यो द्रव्यान्तर-समितिं विनैव वस्तुप्रदेशसंपिण्डः।
नैसर्गिकपर्यायो द्रव्यज इति शेषमेव गदितं स्यात्।। (11)
द्रव्यान्तर-संयोगादुत्पन्नो देशसच्चयो द्वयजः।

वैभाविकपर्यायो द्रव्यज इति जीव-पुद्गलयोः।। (12)

जो संयोगज पर्यायें होती हैं उनका द्रव्य में सदा अस्तित्व नहीं बनता, जिसके लिए मूल में 'सर्वदा' 'सतः' जैसे पदों का प्रयोग किया गया है और इसलिए उनको परपर्याय तथा बाह्यभाव कहा जाता है।

अर्हद्रूप ध्यान को भ्रांत मानने पर ध्यान-फल नहीं बनता

किं च भ्रान्तं यदीदं स्यात्तदा नाऽतः फलोदयः।
नहि मिथ्याजलाज्जातु विच्छित्तिर्जायते तृषः।। (194)
प्रादुर्भवन्ति चाऽमुष्मात्फलानि ध्यानवर्तिनाम्।
धारणावशतः शान्त-क्रूर-रूपाण्यनेकधा।। (195)

'और यदि किसी तरह इस ध्यान को भ्रांतरूप मान भी लिया जाय तो इससे फल का उदय नहीं बन सकेगा; क्योंकि मिथ्या जल से कभी तृषा का नाश नहीं होता-प्यास नहीं बुझती। किन्तु इस ध्यान से ध्यानवर्तियों के धारणा के अनुसार शांतरूप और क्रूररूप अनेक प्रकार के फल उदय को प्राप्त होते हैं-ऐसा देखने में आता है।'

ध्यानफल का स्पष्टीकरण

गुरुपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।
अनन्तशक्तिरात्माऽयं मुक्तिं भुक्तिं च यच्छति।। (196)

'सम्यग् गुरु के उपदेश को प्राप्त हुए एकाग्र-ध्यानियों के द्वारा ध्यान किया जाता हुआ यह अनंत शक्ति युक्त अर्हन् आत्मा मुक्ति तथा भुक्ति को प्रदान करता है।'

ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये।
तद्ध्यानोपात्त-पुण्यस्य स एवाऽन्यस्य भुक्तये।। (197)

'अर्हद्रूप अथवा सिद्धरूप से ध्यान किया गया (यह आत्मा) चरम शरीरी ध्याता के मुक्ति का और उससे भिन्न अन्य ध्याता के भुक्ति का कारण बनता है, जिसने उस ध्यान से विशिष्ट पुण्य का उपार्जन किया है।'

ज्ञानं श्रीरायुरारोग्यं तुष्टिः पुष्टिर्वपुर्धृतिः।
यत्प्रशस्तमिहान्यच्च तत्तद्ध्यातुः प्रजायते।। (198)

ज्ञान, श्री (लक्ष्मी, विभूति, वाणी, शोभा, प्रभा, उच्चस्थिति), आयु, आरोग्य, संतोष, पोष, शरीर, धैर्य तथा और भी जो कुछ इस लोक में प्रशस्त रूप वस्तुएँ हैं वे सब ध्याता को (इस ध्यान के बल से) प्राप्त होती हैं।

तद्ध्यानाविष्टमालोक्य प्रकम्पन्ते महाग्रहाः।

नश्यन्ति भूत-शाकिन्यः क्रूराः शाम्यन्ति च क्षणात्।। (199)

उस अर्हत् अथवा सिद्ध के ध्यान से व्याप्त आत्मा को देखकर महाग्रह-सूर्य-चंद्रमादिक-प्रकंपित होते हैं, भूत तथा शाकिनियाँ नाश को प्राप्त हो जाती हैं-अपना कोई प्रभाव जमाने नहीं पातीं-और क्रूर जीव क्षण मात्र में अपनी क्रूरता छोड़कर शांत बन जाते हैं।

ध्यान द्वारा कार्यसिद्धि का व्यापक सिद्धांत

यो यत्कर्म-प्रभुर्देवस्तद्ध्यानाविष्टमानसः।

ध्याता तदात्मको भूत्वा साधयत्यात्मवाञ्छितम्।। (200)

'जो जिस कर्म का स्वामी अथवा जिस कर्म के करने में समर्थ देव है उसके ध्यान से व्याप्त चित्त हुआ ध्याता उस देवता रूप होकर अपना वांछित अर्थ सिद्ध करता है।'

वैसे कुछ ध्यानों और उनके फल का निर्देश

पार्श्वनाथ-भवन्मन्त्री सकलीकृत-विग्रहः।

महामुद्रां महामन्त्रं महामण्डलमाश्रितः।। (201)

तैजसी-प्रभृतीर्बिभृद्धारणाश्च यथोचितम्।

निग्रहादीनुदग्राणां ग्रहाणां कुरुते द्रुतम्।। (202)

'जो मंत्री-मंत्राराधक योगी-शरीर को सकली क्रिया से संपन्न किये हुए है, महामुद्रा, महामंत्र तथा महामंडल का आश्रय लिए हुए है और तैजसी आदि धारणाओं को यथोचित रूप में धारण किये हुए है वह पार्श्वनाथ होता हुआ-अपने को पार्श्वनाथ के रूप में ध्याता हुआ-शीघ्र ही उग्रग्रहों के निग्रहादिक को करता है।'

स्वयमाखण्डलो भूत्वा महीमण्डल-मध्यगः।

किरीटी कुण्डली वज्री पीत-भूषाऽम्बरादिकः।। (203)

कुम्भकी-स्तम्भ-मुद्राढ्यः स्तम्भनं मन्त्रमुच्चरन्।

स्तम्भ-कार्याणि सर्वाणि करोत्येकाग्रमानसः।। (204)

(उक्त विशेषण-विशिष्ट मंत्री) स्वयं मुकुट-कुंडल-वज्र-विशिष्ट और पीत-भूषण-वसनादिको धारण किये हुए इंद्र होकर पृथ्वीमंडल के मध्य में प्राप्त होता हुआ, कुंभकपवन को साधे हुए, स्तंभमुद्रा से युक्त और एकाग्रचित्त हुआ स्तंभनमंत्र का

उच्चारण करता हुआ सारे स्तंभन कार्यों को करता है।

स स्वयं गरुडीभूय क्ष्वेडं क्षपयति क्षणात्।
कन्दर्पश्च स्वयं भूत्वा जगन्नयति वश्यताम्।। (205)
एवं वैश्वानरीभूय ज्वलज्ज्वाला-शताकुलः।
शीतज्वरं हरत्याशु व्याप्य ज्वालाभिरातुरम्।। (206)
स्वयं सुधामयो भूत्वा वर्षन्नमृतमातुरे।
अथैनमात्मसात्कृत्य दाहज्वरमपास्यति।। (207)
क्षीरोदधिमयो भूत्वा प्लावयन्नखिलं जगत्।
शान्तिकं पौष्टिकं योगी विदधाति शरीरिणाम्।। (208)

वह मंत्री योगी ध्यान द्वारा स्वयं गरुडरूप होकर विष को क्षणभर में दूर कर देता है और स्वयं कामदेव होकर जगत् को अपने वश में कर लेता है। इसी प्रकार सैकड़ों ज्वालाओं से प्रज्ज्वलित अग्निरूप होकर और ज्वालाओं से रोगी के शरीर को व्याप्त करके शीघ्र ही शीतज्वर को हरता है; तथा स्वयं अमृतरूप होकर रोगी को आत्मसात् करके उसके शरीर में अमृत की वर्षा करता हुआ उसके दाहज्वर का विनाश करता है; और क्षीरोदधिरूप होकर सारे जगत् को उसमें तिराता, बहाता अथवा स्नान कराता हुआ वह योगी शरीरधारियों के शांतिक तथा पौष्टिक कर्म को करता है।

ध्यान के फल का उपसंहार

किमत्र बहुनोक्तेन यद्यत्कर्म चिकीर्षति।
तद्देवतामयो भूत्वा तत्तन्निर्वर्तयत्ययम्।। (209)

'इस विषय में बहुत कहने से क्या? यह योगी जो भी काम करना चाहता है उस-उस कर्म के देवतारूप स्वयं होकर उस-उस कार्य को सिद्ध कर लेता है।'

शान्ते कर्मणि शान्तात्मा क्रूरे क्रूरो भवन्नयम्।
शान्त-क्रूराणि कर्माणि साधयत्येव साधकः।। (210)

'यह साधक योगी शांतिकर्म के करने में शांतात्मा और क्रूरकर्म के करने में क्रूरात्मा होता हुआ शांत तथा क्रूर कर्मों को सिद्ध करता है।'

समरसीभाव की सफलता से उक्त भ्रांति का निरसन

आकर्षणं वशीकारः स्तम्भनं मोहनं द्रुतिः।

निर्विषीकरणं शान्तिर्विद्वेषोच्चाट-निग्रहाः।। (211)

एवमादीनि कार्याणि दृश्यन्ते ध्यानवर्तिनाम्।

ततः समरसीभाव-सफलत्वान्न विभ्रमः।। (212)

'ध्यान का अनुष्ठान करने वालों के आकर्षण, वशीकरण, स्तंभन, मोहन, विद्रावण, निर्विषीकरण, शांतिकरण, विद्वेषन, उच्चाटन, निग्रह इत्यादि कार्य दिखाई पड़ते हैं। अतः समरसीभाव के सफल होने से विभ्रम की कोई बात नहीं है।'

यत्पुनः पूरणं कुम्भो रेचनं दहनं प्लवः।

सकलीकरणं मुद्रा-मन्त्र-मण्डल-धारणा।। (213)

कर्माऽधिष्ठातृ-देवानां संस्थानं लिङ्गमासनम्।

प्रमाणं वाहनं वीर्यं जातिर्नाम-द्युतिर्दिशा।। (214)

भुज-वक्त्र-नेत्र-संख्या भावः क्रूरस्तथेतरः।

वर्णः स्पर्शः स्वरोऽवस्था वस्त्रं वस्त्रं भूषणमायुधम्।। (215)

एवमादि यदन्यच्च शान्त-क्रूराय कर्मणे।

मन्त्रवादादिषु प्रोक्तं तद्ध्यानस्य परिच्छदः।। (216)

इसके अलावा जो पूरण, कुंभन, रेचन, दहन, प्लवन, सकलीकरण, मुद्रा, मंत्र, मंडल, धारणा, कर्माधिष्ठाता देवों का संस्थान-लिंग-आसन-प्रमाण-वाहन-वीर्य-जाति-नाम-ज्योति-दिशा-मुखसंख्या-नेत्रसंख्या-भुजासंख्या-क्रूरभाव शांतभाव-वर्ण-स्पर्श-स्वर-अवस्था-वस्त्र-भूषण-आयुध इत्यादि और जो कुछ अन्य शांत तथा क्रूरकर्म के लिए मंत्रवाद आदि ग्रंथों में कहा गया है वह सब ध्यान का परिकर है-यथा विवक्षित ध्यान की उपकारक सामग्री है।

लौकिकादि सारी फल-प्राप्ति का प्रधान कारण ध्यान

यदात्रिकं फलं किञ्चित् फलसामुद्रिकं च यत्।

एतस्य द्वितयस्यापि ध्यानमेवाऽग्रकारणम्।। (217)

'इस लोक संबंधी जो फल है उसका और परलोक संबंधी जो फल है उसका भी ध्यान ही मुख्य कारण है-ध्यान से दोनों लोक संबंधी यथेच्छित फलों की प्राप्ति होती है।'

न ते गुणा न तज्ज्ञानं न सा दृष्टिर्न तत्सुखम्।

यद्योगोद्योतिते न स्यादात्मन्यस्ततमश्चये।। (कल्प 40)

मैस्टिन किप-बाइबल में इसे सबसे अच्छे तरीके से कहा गया है-स्वप्न के बिना लोग नष्ट हो जाते हैं।

लेअर्ड हैमिल्टन-मेरे मन में जो भी विचार आया है और मैंने जो भी किया है, उसे मैंने पहले अपने दिमाग में देखा। लोग मानसिक चित्रों की बात करते है, जिसका मतलब सिर्फ यही है कि आप किसी चीज को अपने दिमाग में देख सकते हैं। अगर आप इसे देख न पाये, तो आपके पास सपना हो ही नहीं सकता। आप किसी ऐसी चीज को साकार कैसे कर सकते हैं, जिसे आप पहले अपने दिमाग में न देखें?

नेत्र जगत् से जुड़े लोग और खिलाड़ी अपने सपने का चित्र बनाने की शक्ति जानते हैं। आपने ओलंपिक खेलों में एक के बाद एक खिलाड़ियों के मुँह से यह बात सुनी होगी कि वे पिछले चार सालों से स्वर्ण पदक जीतने के इस पल को अपने दिमाग में देखते आ रहे हैं। खिलाड़ी अपने प्रशिक्षण में मानसिक चित्रण की तकनीक का इस्तेमाल लगातार करते हैं, यानि अपनी मनचाही चीज को अपने दिमाग में देखकर विशिष्ट योग्यताओं का अभ्यास करना तथा उन्हें बेहतर बनाये।

लेन बीचली-खिलाड़ी के रूप में मानसिक चित्रण में मैंने बहुत समय लगाया। खिलाड़ी बनने के बारे में बेहतरीन चीज यह है कि मनचाहे परिणाम पाने के मानसिक चित्रण की तकनीक का इस्तेमाल करके आप सचमुच उसे पा सकते हैं।

पीट कैरल-हम लगातार मानसिक चित्रण के साथ काम करते हैं। हम लगातार उन सपनों के साथ काम करते हैं कि हम क्या बन सकते हैं। सारी शक्ति यह सपना देखने की योग्यता से आती है कि आप क्या बनना चाहते हैं। जब तक कि आप मंजिल की तस्वीर ही न देख सकें, तब तक आप वहाँ कैसे पहुँच सकते हैं? जब आप सफल हो जायेंगे, तो आपको कैसे पता चलेगा?

माइकल फेल्प्स (ओलंपिक चैंपियन तैराक)-''जब मैं सोने वाला होता हूँ, तो मैं उस बिंदु का मानसिक चित्र देखता हूँ, जिसके बारे में मैं सटीकता से जानता हूँ कि मैं उसे करना चाहता हूँ-गोता, ग्लाइड, स्ट्रोक, पलटना, दीवार तक पहुँचना, सेकेंड के सौवें हिस्से से विजय पाना, फिर उतनी बार दोबारा तैरना, जितने की जरूरत मुझे रेस जीतने के लिए होती है।''

हम जो चाहते हैं, उसे उत्पन्न करने के लिए खेल जगत् ने एक बहुत

शक्तिशाली आदत का सहारा लिया है-दिमाग में अपने मनचाहे परिणाम की तस्वीर बना लें। इस तकनीक का इस्तेमाल करके खेल जगत् में काफी सफलता हासिल की है, लेकिन इसके बावजूद लोग आमतौर पर इस तथ्य के बारे में अब भी अनजान है कि जीवन में सफलता हासिल करने के लिए वे भी इसी तकनीक का इस्तैमाल कर सकते हैं।

लेन बीचली–मैं केवल एक ही परिणाम की मानसिक तस्वीर देख सकती थी-मंच पर अपने सिर से ऊपर ट्रॉफी उठाने की तस्वीर, जबकि मुझ पर शैम्पेन का छिड़काव किया जा रहा था। मेरे लिए बस यही मायने रखता था।

स्वप्न या मानसिक चित्र बनाने का सबसे अहम् हिस्सा यह है कि आप अपने दिमाग में अंतिम या मनचाहे परिणाम का चित्र रख लेते हैं। अपने दिमाग से हर दूसरी चीज हटा दें। यह न सोचे कि आप इसे कैसे हासिल करने वाले हैं; बस अपने सपने का अंतिम परिणाम देखें। लेन बीचली ने शैम्पेन के छिड़काव के बीच विजेता मंच पर खड़े होने का चित्र चुना, क्योंकि यह स्वप्न स्पष्ट रूप से उनके मनचाहे परिणाम की प्राप्ति थी-विश्व चैंपियन बनना।

माइकल ऐक्टन स्मिथ–मुझे ड्रॉइंग करने, चित्र बनाने और स्केचिंग से प्रेम है। मैं घंटों तक अपनी नोटबुक भरता रहता हूँ। मैं उन चीजों को लिख लेता हूँ, जिन्हें मैं करना और हासिल करना चाहता हूँ।

जब आप अपने सपनों की चीजें स्केच करते हैं, तो आपका दिमाग स्केच से तुरंत स्वप्न बना लेता है। जब आप अपने सपने के बारे में नोट्स लिखते हैं, तो आपका दिमाग अपने आप आपके नोट्स से एक स्वप्न बना लेता है। दोनों ही तरीकों से आप मानसिक चित्र बना रहे हैं।

जीवन में जब भी मुझे कोई ऐसी चीज करनी होती है, जो मैंने पहले कभी नहीं की, तो मैं अपने मनचाहे परिणाम का मानसिक चित्र देखे बिना वह काम करने नहीं जाती हूँ। मैं उस चित्र को अपने दिमाग में देखती रहती हूँ और रोमांचित भावनाएँ महसूस करती हूँ, मानो यह वास्तव में हो चुका है। मैं इस बारे में नहीं सोचती कि मैं वह काम कैसे करूँगी; मैं तो बस अपने मनचाहे परिणाम व चित्र देखती हूँ। यह तकनीक इंसान की सबसे शक्तिशाली और कम पहचानी योग्यताओं में से एक है, जिसके द्वारा हम अपनी मनचाही चीज का जीवन

में सृजन कर सकते हैं। चूँकि आपका अवचेतन मन चित्रों से प्रेम करता है, इसलिए जब आप अपने अवचेतन मन में एक चित्र रख देते हैं, तो इसे उस चित्र को साकार करने के लिए हरसंभव चीज करनी ही होगी।

जी.एम. राव–मेरा सपना हमेशा से मेरे मन में था। शुरुआत से ही मैं अपने सपने को सजीव रखकर जी रहा था और इस पर काम कर रहा था, तब भी जब यह सिर्फ शुरुआती विचार के रूप में था। मेरे काम इस विचार से उत्पन्न हुए कि मेरा सपना पहले ही हासिल हो चुका है। इसके बाद मैं अपने कार्यों से परिणाम उत्पन्न होते देख सकता था।

अजीम प्रेमजी (भारतीय उद्योगपति)–''सफलता दो बार हासिल की जाती है। एक बार दिमाग में और दूसरी बार वास्तविक संसार में।''

पीटर फोयो–मैंने अपने जीवन में जो भी किया है, लगभग हर चीज इस बात का परिणाम नहीं है कि मैंने क्या पढ़ा है या कितनी कड़ी मेहनत की है। यह तो मानसिक चित्र देखने और यह जानने का परिणाम है कि मैं पहले ही वहाँ पहुँच चुका हूँ।

जब मैं द सीक्रेट फिल्म बना रही थी, तो मैंने दिन में कई बार अपने चाहे गये परिणाम का मानसिक चित्र देखा। मैंने परिणाम को इतनी स्पष्टता से अपने दिमाग में देखा, मानो यह पहले ही मिल चुका हो। मेरे मन में कोई शंका नहीं है कि मानसिक चित्रण ही वह सबसे शक्तिशाली चीज थी, जो मैंने द सीक्रेट को बेहद सफल बनाने के लिए की थी।

लोग सोचते हैं कि मानसिक चित्र देखते समय आप सरासर झूठे होते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं, ''यह नहीं हो रहा है। यह यहाँ है ही नहीं।'' ओह, हाँ यह है। यह बिलकुल यहीं है, क्योंकि अगर आप इसे सोच सकते हैं, तो यह हो भी सकता है।

एक बार जब आप दिमाग में अपने सपने के परिणाम का मानसिक चित्र देखने में माहिर हो जाते हैं, जहाँ आपको महसूस होता है मानो यह पहले ही हो चुका हो, तो आप इसी तकनीक का इस्तेमाल उन छोटे कदमों या लक्ष्यों के लिए भी कर सकते हैं, जिन्हें आप हीरो की यात्रा में हासिल करना चाहते हैं। भले ही आप सिर्फ अपनी मनचाही चीज के अंतिम परिणाम का मानसिक चित्र देख रहे हैं, लेकिन आपका स्वप्न

यह सुनिश्चित करता है कि किसी न किसी तरह, किसी न किसी तरीके से आप वहाँ पहुँच जायेंगे।

लिज मरे–चूँकि मेरा लक्ष्य सभी विषयों में ए ग्रेड पाना था, इसलिए मैं अपने स्कूल के ऑफिस में गई और मैंने उनसे मेरे ग्रेड प्रिंट करने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा, ''तुमने तो अभी शुरू ही किया है। तुम्हें अब तक कोई ग्रेड मिले ही नहीं है।'' मैंने कहा, ''नहीं, मैं तो खाली रिपोर्ट कार्ड चाहती हूँ।'' उन्होंने मेरा नाम लिखकर उसे छाप दिया और मैंने सीढ़ी पर बैठकर उसमें अपने ग्रेड भरे। मुझे महसूस हुआ, जैसे वे पहले से ही भविष्य में मौजूद थे, मुझे तो बस उनकी बराबरी करनी थी। जब मैं होमवर्क करती थी, तो मैंने उस रिपोर्ट कार्ड को पास में रख लिया, जिसमें लिखा था कि मैं कितने ए ग्रेड हासिल करना चाहती थी, ताकि मैं पढ़ते-लिखते वक्त उनकी ओर देख सकूँ। मैंने सचमुच इस भावना से काम किया कि यह पहले से ही सच था।

अपने जीवन में आप जिस भी स्थिति को अच्छी बनाना चाहते हैं, उसमें मानसिक चित्रण का इस्तेमाल कर सकते हैं। आप परीक्षाओं, ऑडिशन, साक्षात्कारों, बैठकों, सेल्स प्रस्तुति, प्रेम-प्रस्ताव, भाषण देने, अपने सास-ससुर से मिलने, यात्रा करने या कंपनी के इतिहास में बॉस द्वारा आपको दी जाने वाली सबसे बड़ी वेतनवृद्धि के परिणाम का मानसिक चित्र देख सकते हैं।

यह मानसिक चित्र देखना सुनिश्चित करे कि इस साल के अंत में आप कहाँ पहुँचना चाहते हैं और हर नये साल में वार्षिक स्वप्न को कायम रखें। इसके अलावा, एक बड़ा स्वप्न बनाये कि आज से पाँच साल बाद आप कहाँ होना चाहते हैं। फिर देखे कि आपके जीवन के साथ क्या होता है।

सारा ब्लेकली (स्पैंक्स की संस्थापक)– ''आपको यह मानसिक चित्र देखना होता है कि आप किस दिशा में जा रहे हैं और इस बारे में बहुत स्पष्ट होना होता है। आप कुछ सालों में कहाँ जा रहे हैं, इसकी एक पोलरॉइड तस्वीर ले लें।''

जॉन पॉल डिजोरिया–मैं सुबह जागता हूँ और मैं बस मैं होता हूँ। दूसरे शब्दों में, मैं टी.वी. नहीं चलाता हूँ, मैं कॉफी नहीं पीता हूँ। मैं कुछ नहीं करता हूँ। मैं वहाँ बिस्तर पर बैठा रहता हूँ और मैं बस होता हूँ। कोई निर्णय नहीं लिए जाने है, कोई फोन कॉल नहीं किए जाने हैं। बस पाँच मिनट तक मैं अपने दिमाग को साफ रखता हूँ और मैं यहाँ इस पल में रहता हूँ। इस तरह आपका दिमाग बगैर किसी शंका

के दिन में प्रवेश करता है और अगर आप कोई सपना हासिल करने की कोशिश कर रहे हैं, तो आखिरी दो मिनटों में आप उस सपने के बारे में थोड़ा सोचते हैं और यह भी कि आप इसे कितना ज्यादा चाहते हैं, आप इसे क्यों चाहते हैं और इसके ज्यादा करीब पहुँचने के लिए आप कौनसी चीजें कर सकते हैं।

जब आप दिन के शुरू होने से पहले दिमाग की आपाधापी को रोक देते हैं और अपने चेतन मन को पूरी शिथिल अवस्था में ले आते हैं, तो आपके स्वप्न में भविष्यदृष्टि सीधे आपके अवचेतन मन में पहुँच जाएगी। यह काफी हद तक किसी नये अपडेट या प्रोग्राम को इंस्टॉल करने के लिए कंप्यूटर को बंद करने जैसा है। जब आपका कंप्यूटर बहुत से दूसरे प्रोग्राम चला रहा हो, ता अपडेट इंस्टॉल नहीं किये जा सकते-और इसी तरह आपका अवचेतन मन आपके स्वप्न की तस्वीर को तब तक ग्रहण नहीं कर सकता, जब तक आपका दिमाग दूसरी चीजों में उलझा हुआ हो। लेकिन जब आप शिथिलीकरण द्वारा अपने दिमाग को बंद कर देते हैं, तो आपका स्वप्न सफलतापूर्वक इंस्टॉल हो जाएगा।

तब आप मानसिक चित्रण का सफलतापूर्वक इस्तेमाल कर लेते हैं, तो आपके आस-पास के लोग हैरान होंगे कि ऐसा कैसे हुआ कि अचानक हर चीज आपके मनचाहे तरीके से होने लगी और हर चीज आपकी खातिर ऐसे हो रही है, मानो आप कोई महामानव हो और आप जान जायेंगे कि आप तो बस सबसे सरल, लेकिन सबसे शक्तिशाली योग्यताओं में से एक का इस्तेमाल कर रहे हैं, जिसके साथ आप पैदा होते हैं और जो इस धरती पर रहने वाले हर इंसान के पास हमेशा रहती है।

पावन भाव ही धर्म, विभाव ही अधर्म

(पावन भाव हेतु मेरी साधना व अनुभव-परिणाम)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

सरल-सहज बनूँ मैं पावन, मेरा भाव न हो कभी मलीन।
इस हेतु करूँ मैं सतत साधना, अन्य सभी इस हेतु निमित्त कारण।। (1)

इस हेतु (ही) करूँ मैं ध्यान-अध्ययन, तप-त्याग व मनन-चिन्तन।
शोध-बोध व लेखन-प्रवचन, धार्मिक समस्त क्रिया पालन।। (2)

पावन भाव ही होता है धर्म, इससे विपरीत होता अधर्म।
पावन भाव हेतु धर्माचरण, समस्त मलीन भाव विसर्जन।। (3)

राग द्वेष मोह व काम क्रोध, ईर्ष्या घृणा व तृष्णा क्षोभ।
ख्याति पूजा लाभ व लंद-फंद, सभी अधर्म ये विभाव भाव।। (4)

आगम-अनुभव से मैं जाना हूँ, पंचपरमेष्ठी में यह पाया हूँ।
मनोविज्ञान में भी हो रहा है सिद्ध, विभाव से होते तनाव-रोग।। (5)

धर्म का स्वरूप है आत्मिक सुख, तनाव-रोग से न मिले सुख।
विभाव भाव से न मिले सुख, विभाव अतः न धर्म स्वरूप।। (6)

पावन भाव से मुझे मिलता सुख, मलीन भाव से मिलता दुःख।
अनुभव से यह मैं जान रहा हूँ, पावन भाव अतः मैं कर रहा हूँ।। (7)

अन्य भी प्रभावित हो रहे हैं, पावन भाव को अच्छा मान रहे हैं।
स्वप्रेरणा से पावन बन रहे हैं, दान सेवा सहयोग कर रहे हैं।। (8)

इत्यादि कारणों से मैं जान रहा हूँ, पावन भाव को धर्म मान रहा हूँ।
पावन भाव को बढ़ा रहा हूँ, 'कनक' पावन मैं बन रहा हूँ।। (9)

सीपुर, दिनांक 26.11.2016, मध्याह्न 2.49

(कवि (आ. कनकनन्दी) के पावन-भाव-व्यवहार से साधु-साध्वी-गृहस्थ तक प्रेरित व प्रभावित हो रहे हैं, इससे शिक्षा लेकर यह कविता बनी।)

सामाजिक जन V/S अलौकिक जन/(श्रमण)

(सामाजिक जन से परे होते हैं अलौकिकजन)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : बस्ती-बस्ती पर्वत.....2, सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया.....)

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि हेतु...मानव बनते सामाजिकजन।
भोगोपभोग व वर्चस्व हेतु...मानव चाहे सामाजिक बंधन।। (1)

जो इससे विरक्त हो गये...वे होते अलौकिकजन।
स्व-आत्मा की ही उपलब्धि हेतु...करते तप त्याग ध्यानाध्ययन।। (2)

धैर्य है पिता क्षमा है माता...शांति ही जिनकी शाश्वत भार्या।

सत्य है पुत्र दया है भगिनी...भ्राता है मन का संयम।। (3)

शय्या भूमितल दिशा है वसन...ज्ञानामृत का करे भोजन।
रत्नत्रय है जिनके भूषण...वैभव अनंत ज्ञानदर्शन।। (4)

आत्मानुशासन (ही) जिनका शासन...आत्मविकास हेतु ही संविधान।
आत्मविजयी से (वे) विश्वविजयी...आत्मसिद्धि (ही) जिनकी प्रसिद्धि।। (5)

स्व-निर्माण ही है परिनिर्वाण...मोक्षस्थल ही स्व-निवास/(स्व-भवन)।
ऐसे वीतरागी श्रमण हेतु...क्यों चाहिए सामाजिक बंधन।। (6)

स्व-सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री...भोगोपभोग व सुखवीर्य।
सब कुछ भी स्वयं में ही निहित...उन्हें क्यों चाहिए परतंत्र।। (7)

राजा-महाराजा-चक्रवर्ती तक...होते हैं सामाजिकजन।
इनसे भी परे/(श्रेष्ठ) होते श्रमण...उनके न होते सामाजिक बंधन।। (8)

समस्त बंधन परे होता मोक्ष...जो परम स्वतंत्र व स्वाधीन।
आत्मानुशासन व सार्वभौम...वहाँ कैसे सामाजिक बंधन।। (9)

चक्रवर्ती से भी पूज्य होते श्रमण...चक्रवर्ती को भी देते ज्ञानदान।
सब जीव को देते अभयदान...सभी को करते क्षमा प्रदान।। (10)

आकाश के सम होते निर्बन्ध...सीमातीत जिनके लक्ष्य।
सच्चिदानन्द है जिनका स्वरूप...'कनकनन्दी' का परम लक्ष्य।। (11)

सीपुर, दिनांक 25.11.2016, रात्रि 8.12

संदर्भ-

धैर्य्यस्य पिता क्षमाश्च जननी शान्तिश्चिर गृहिणी।
सत्यं सुनूरयं दया च भगिनी भ्रातः मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं। (रत्नत्रयभूषणम्)
ये ते यस्य कुटुम्बिनो पद सखे कस्मात् भीतो योगिनः।।
पाणिः पात्रं पवित्र भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं,
विस्तीर्ण वस्त्रमाशादशकमचपलं तल्पमस्दल्पभुर्वी।
येषां निःसंगतार्गीकरणपरिणतस्वात्मसंतोषिणस्ते,
धन्या संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराकर्मनिर्मूलयन्ति।।

आध्यात्मिक जन-संत की अलौकिक निस्पृह वृत्ति : तो भी वे न होते पलायनवादी या परपीड़क

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

विश्व हितंकर तीर्थंकर भी, त्याग करते हैं राज्य वैभव।
माता, पिता, पत्नी, पुत्र से लेकर, षट्खण्ड की प्रजा तक।। (1)
नग्न रहते व केशलोंच करते, करते केवल ध्यान-अध्ययन।
व्यापार राजनीति कृषि शिल्पादि, न करते रहते एकांत मौन।। (2)
सामाजिक व राजनैतिक बंधन से परे करते आत्मानुशासन।
आत्म तत्त्व व वैश्विक सत्य हेतु, करते शोध-बोध-अनुसंधान।। (3)
जब तक न होता केवलज्ञान, तब तक ऐसा ही करते काम।
तथापि वे न होते पलायनवादी, अयोग्य आलसी या परपीड़क।। (4)
केवलज्ञान के अनन्तर देवनिर्मित, समवसरण में हो विराजमान।
विश्वहित हेतु करते प्रवचन, ख्याति पूजा लाभ से नहीं प्रयोजन।। (5)
संकीर्ण कट्टर व पक्षपात शून्य, अनेकांतमय करते उपदेश।
अनेक सुदृष्टि नर-नारी-देव, पशु-पक्षी सुनते उपदेश।। (6)
कर्मक्षय व शरीर से रहित बनते, जन्म-जरा-मरण शून्य।
अनंत ज्ञान सुखवीर्य से सहित (होकर), सिद्ध अवस्था में रहते शाश्वत।। (7)
ये सब नहीं है संकीर्ण स्वार्थ व, कर्त्तव्यविमुख या पलायनवाद।
आलस्य प्रमाद या असामाजिकता या पर दुःखप्रद।। (8)
राज त्यागकर जब साधु बनते, अन्य के न दुःखप्रद भाव करते।
स्व-पर-विश्वहित हेतु साधु बनते, नवकोटि से अन्य को न दुःख देते।। (9)
पंचमहाव्रत व समिति पालते, सत्ता-संपत्ति व भोग न चाहते।
नग्न होकर अश्लीलता नहीं करते, समता-शांति से मौन रहते।। (10)
सर्वज्ञ के अनन्तर जिस समवसरण में तीर्थंकर प्रवचन (भी) करते।
उसका निर्माण स्वयं न करते, उसका कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता नहीं बनते।। (11)
भक्त-शिष्य व अनुयायी से भी, न राग-द्वेष-मोह करते।
उनके जो न होते भक्त आदि, उनसे भी द्वेष-घृणा नहीं करते।। (12)

मोक्ष के अनन्तर कर्म के अभाव से, पुनर्जन्म उनका नहीं होता।
शरीर इन्द्रिय व मन के अभाव से, संसार के काम भी नहीं करते।। (13)
यह ही जीव की शुद्धावस्था, संसारी जीवों की तो अशुद्ध दशा।
अशुद्ध दशा में ही जीव होते हैं, आलसी-प्रमादी-कर्त्तव्यशून्यता।। (14)
ऐसा अन्य आध्यात्मिकजन, जो होते निस्पृह निराडम्बर।
ध्यान-अध्ययन व मौन एकांत, साधना करते वे होते श्रेष्ठ नर।। (15)
आत्मिक विकास जो नहीं करते, वे ही यथार्थ से अज्ञानीजन।
कर्त्तव्यविहीन, पलायनवादी, आलसी, प्रमादी, परपीड़कजन।। (16)
मोही अज्ञानी कामी स्वार्थीजन, विपरीत भाव व्यवहार करते।
इनसे विपरीत आध्यात्मिकजन, करते 'कनकनन्दी' को यह ही भाते।। (17)

सीपुर, दिनांक 26.11.2016, रात्रि 8.45

संदर्भ-

संयोगमूलस्त्यागात्मा ज्ञानाधिष्ठानमुच्यते।
अपवर्गमतिर्नित्यो मतिधर्म सनातनः।। (महा. वेदवास)

संतोष ही जिसका मूल है, त्याग ही जिसका स्वरूप है, जो ज्ञान का आश्रय कहा जाता है, जिसमें मोक्षदायिनी बुद्धि नित्य होती है, वह सनातन यति-धर्म है।

मुनियों की अलौकिक वृत्ति

अनुसरतां पदमेतत्, करंविताचार नित्य-निरभिमुखाः।
एकांत विरति रूपा भवंति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः।। (16)
एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणि पात्रो दिगम्बरः।
कदाऽहं संभविष्यामि, कर्म निर्मूलनेक्षमः।। (1)
अतः कारणात् सर्व पाप विरतिः मुनीनामेव न तु गृहस्थानामित्यर्थः।

The life-routine of such saints as follows this path, as are ever a verse to questionable conduct, and have adopted complete renunciation, is uncommon indeed.

व्याख्या-भावानुवाद : संसार-रहित वृत्ति अर्थात् अलौकिक आचार निर्ग्रंथ मुनियों के होते हैं। इस आत्म तत्त्व पद का अनुसरण करता हुआ मुनि समस्त पापों से निवृत्त होकर व्यवहार से मिला हुआ आचार से सदैव विमुख होकर अर्थात् पाप क्रिया से मुक्त व्यवहार से विरक्त होकर सदैव अलौकिक वृत्ति अर्थात् पाप रहित

वृत्ति में विचरण करता है। कहा भी है-

भव्य मुमुक्षु विचार करता है कि मैं कब एकाकी, निस्पृह, शांत, पाणि-पात्री, दिगम्बर होकर कर्म को नष्ट करने में सक्षम बनूँ। इसलिए समस्त पाप से विरक्ति मुनि की होती है न कि गृहस्थों की।

एकदेश व्रत के उपदेश के योग्य शिष्य

बहुशः समस्त विरतिं, प्रदर्शिता यो न जातु गृह्णाति।
तस्यैकदेश विरतिः, कथनीयाऽनेन बीजेन।। (17)

He who, in spite of repeated dissertations, is unable to accept the path of absolute renunciation, should in that event, be lectured upon partial renunciation.

व्याख्या-भावानुवाद-जिस पुरुष को समस्त पाप विरक्ति रूप मुनि मार्ग का प्रदर्शन करने पर भी शक्ति की कमी के कारण ग्रहण नहीं कर पाता है उस भव्य जीव को एकदेश विरति रूप श्रावकाचार को बार-बार समझाना चाहिए। जो भव्य मुनि धर्म को अंगीकार करने में असमर्थ हैं उसे श्रावक धर्म का उपदेश देना चाहिए। यही इसका भावार्थ है।

दंडनीय उपदेश

यो यति धर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थ धर्म्ममल्प मतिः।
तस्य भगवत्प्रवचने, प्रदर्शितं निग्रह स्थानाम्।। (18)

The unwise (preceptor) who without discoursing upon the "order of saints" only lectures upon "order of the house-holder" is, according to the sayings of the worshipfull deserving of censure.

व्याख्या-भावानुवाद-जो उपदेशदाता गुरु सर्व-सावद्य विरति रूप मुनि धर्म का कथन न करके केवल गृहस्थ धर्म स्वरूप कुछ विरक्त कुछ अविरक्त रूप व्रत का कथन करता है वह पुरुष अल्पमति है। ऐसा अल्प, तुच्छ, स्तोक बुद्धि वाला गुरु केवल गृहस्थ धर्म का कथन करता है। वह भगवत् प्रवचन में दण्डनीय स्थान को प्राप्त होता है। इसका रहस्य यह है कि पहले मुमुक्षु भव्य को मुनि धर्म का प्रवचन देना चाहिए और यदि वह मुनि धर्म को स्वीकार करने में असमर्थ होता है तो गृहस्थ धर्म अर्थात् श्रावक धर्म का उपदेश देना चाहिए।

योग्य शिष्य को अपूर्ण उपदेश से हानि

अक्रमकथनेन यतः, प्रोत्साहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि संप्रवृत्तः, प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना।। (19)

Because, on account of the ill-regulated discourses of the unwise (preceptor), even the disciple, who had pitched up its resolution high, is made to content himself only with a low position and is thus misled.

व्याख्या-भावानुवाद-18वें नंबर श्लोक में जो कहा गया है कि जो पहले मुनि धर्म का उपदेश न देकर के गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है वह दण्डनीय हैं। उसका कारण यह है कि जिसके कारण से मुमुक्षु शिष्य उपासक रूपी अपदस्थ गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त हो जाता है जिसके कारण से दुर्बुद्धि गुरु के द्वारा शिष्य वंचित हो जाता है, ठगा जाता है। पहले अति उत्साहित होकर जब शिष्य गुरु के पास आकर धर्म श्रवण एवं ग्रहण करना चाहता है तब गुरु को पहले उत्साह के अनुसार उसे उत्कृष्ट मार्ग मुनि मार्ग का उपदेश देना चाहिए परन्तु इसके विपरीत श्रावक धर्म का कथन करने से वह उत्साहमान् भी शिष्य निश्चय धर्म रूप मुनि धर्म को न जानकर व्यवहार रूप श्रावक धर्म को अंगीकार कर लेता है। व्यवहार कथन से और निश्चय अकथन से व्यवहार ही निश्चय ऐसा जानकर शिष्य व्यवहार का ही आचरण करता है। अतः उपदेशदाता गुरु शिष्य को संसार सागर में ही रुला देता हैं। अतः मुनि धर्म को पहले प्रकाशन करना चाहिए उसके बाद श्रावक धर्म का कथन करना चाहिए।

उपदेश ग्रहण करने वाले पात्र का कर्त्तव्य

एवं सम्यग्दर्शन बोध-चारित्र त्रयात्मको नित्यम्।
तस्याऽपि मोक्षमार्गो, भवति निषेव्यो यथाशक्ति।। (20)

And, for him also the three-fold path of liberation, consisting of right belief, right knowledge, and right conduct, is to be constantly followed according to this capacity.

व्याख्या-भावानुवाद-आत्मा रत्नत्रय स्वरूप है। अतः मोक्षमार्ग तथा मोक्ष भी रत्नत्रयात्मक है। इसलिए मोक्ष के लिए रत्नत्रय की आराधना यथाशक्ति करनी चाहिए। परन्तु गुरुओं को निश्चय मोक्षमार्ग तथा व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन करना चाहिए। इसलिए गुरु को क्रम कथन को यथाशक्ति उल्लंघन नहीं करना चाहिए।

यथाशक्ति अक्रम कथन से दर्शन, ज्ञान, चारित्रात्मक मोक्षमार्ग का निषेध हो जाता है क्योंकि आत्मा सदैव रत्नत्रयात्मक है।

भूतार्थनय के द्वारा जाने हुए उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्ध-आत्मा से पृथक् अन्य में ठीक-ठीक अवलोकन करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है और जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादि रूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना, निश्चय सम्यक्चारित्र है, इस प्रकार यह निश्चय मोक्षमार्ग हुआ। नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती द्रव्यसंग्रह में निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार बताते हैं-

सम्मंद्दसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।

ववहारा णिच्छायदो तत्तियमइओ णियो अप्पा।।39।। (द्रव्यसंग्रह)

सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चरित्र स्वरूप जो निज आत्मा है, उसको मोक्ष का कारण जानो।

रत्नत्रय व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय से रत्नत्रय रूप परिणत आत्मा ही मोक्षमार्ग है। स्वयं आत्मा ही निश्चय से मोक्षमार्ग किस प्रकार होता है? इसका प्रतिउत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा है-

रयणत्तयंण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।

तम्हा तत्तियमइयो होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।।

The three jewels (i.e. perfect knowledge and perfect conduct) do not exist in any other in substance, excepting the soul. Therefore, the soul surley is the cause of liberation.

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता, इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है, वही निश्चय से मोक्ष कारण है।

कुंदकुंद स्वामी ने भी यह भेदाभेदात्मक निश्चय व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहा है।

दंसण णाण चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणां णिच्चं।

ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।।

साधु को व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र इन तीनों को भिन्न-भिन्न

समझकर नित्य-सदा ही इनकी उपासना करनी चाहिए। अपने उपयोग में लाना चाहिए। किन्तु शद्ध निश्चयनय से वे तीनों एक शुद्धात्मा स्वरूप ही हैं। उससे भिन्न नहीं हैं ऐसा समझना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पञ्चेन्द्रियों के विषय और क्रोधादि कषायों से रहित जो निर्विकल्प समाधि है उसमें ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों होते हैं।

आध्यात्मिक अलौकिक बाल ब्रह्मज्ञानी निस्पृह संत आचार्य कनकनन्दी गुरुवर

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : मेरा जूता है जापानी.....)

कनक गुरु की ज्ञानवाणी...सारे जहाँ ने है जानी/(मानी)...
शोध-बोध-अनुभव से...बनी पुरोगामी/(क्रांतिकारी)...(ध्रुव)...
बाल्यकाल से आप जिज्ञासु...सनम्र सत्यग्राही...अनुभवी गुणधारी...
अल्पवय में लक्ष्य महान्...संत-नायक-विज्ञानी...बालयोगी प्रज्ञाधारी...
लक्ष्य कर लिए साकार...बनके मुनि-विज्ञानी...शोध-बोध...(1)...
परिकल्पना की शक्ति से...बने बाल ब्रह्मज्ञानी...ज्ञानेश्वर जी ध्यानी...
ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म गहन...द्रव्य-तत्त्व के ज्ञानी...अपूर्वार्थी विज्ञानी...
अनेकांत दृष्टिधारी...तार्किक/(अनुमान) ज्ञानधारी...शोध-बोध...(2)...
कार्य-कारण प्रतिपादन की...शिक्षा पद्धति निराली...सर्वोदय मनोविज्ञानी...
अलौकिक गणित व विज्ञान से...आगम-निगम बखानी...वेद-पुराण बखानी...
विविध ज्ञान विधा की...अनूठी समन्वयकारी...शोध-बोध...(3)...
जैनागम के सत्य-तथ्य को...बताये परम विज्ञानी...अतिशय पुरोगामी...
स्वरचित शोधपूर्ण साहित्य...ज्ञानधारा में समानी...प्रभावना जिनवाणी...
विश्व कवि लेखक...सूरी संत की वाणी...शोध-बोध...(4)...
हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई...दिक् श्वेताम्बर भाई...समन्वय अभिलाषी...
आओ-आओ सत्य जिज्ञासु...उदार व गुणग्राही...सनम्र सत्यग्राही...
'सुविज्ञ' सुधीजन...पावे समता-शांति...शोध-बोध...(5)...

सीपुर, दिनांक 26.11.2016, रात्रि 7.45

निस्पृह संत आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव की शोध-बोध प्रवृत्ति

-श्रमणी आ. सुवत्सलमती

(चाल : आह्वा (बुंदेलखण्डी).....)

निस्पृह संत कनकनन्दी जी इनकी महिमा अपरम्पार।
शोध-बोध में वे अग्रणी इन सम दूजा नहीं दिखाय।। (ध्रुव)

बाल्यावस्था से शोधक बुद्धि, चिन्तन, मनन से शोध कराय।
वैज्ञानिक या विश्वनेता वा निस्पृह संत बनना चाह।।

महान् लक्ष्य थे अल्प वय में2, संत बनकर पूरे कराय।
निर्मल भाव व अंतः प्रेरणा से निर्मल ज्ञान सुधा बरसाय।। (1)

परिकल्पना शोध-बोध की देखो ऊँची है उड़ान।
ब्रह्माण्डीय सूक्ष्म गहन अनेकांत का महान् ज्ञान।।

अनुमान कार्य कारण ज्ञान2, अलौकिक गणित विज्ञान।
व्यापक दृष्टि सत्यग्राहीता से युक्ति से सत्य शोध कराय।। (2)

अंतः प्रेरणा से नाना विध का विषय प्रतिपादन कराय।
'विश्व विज्ञान रहस्य' हो या 'विश्व द्रव्य विज्ञान बताय'।।

सापेक्ष ज्ञान व समीक्षा करके2, आगम रहस्य हमें बताय।
जो सब जन विपरीत जानत है उसका रहस्य उद्घाटन कराय।। (3)

पूर्व में जो शोध-बोध किये हैं सम्प्रति में वे सत्य हो जाय।
अन्तर्संबंध व समन्वय करना गुरुदेव हमको सिखाय।।

शिक्षा-राजनीति-कानून की कमियाँ पूर्व में ही बताय।
भारतीय संस्कृति महान् होकर भ्रष्टतम् देश क्यों कहाय।। (4)

गुरुवर पहले से ही मानत हैं 'नगर नरक' तो ग्राम सुरग (स्वर्ग)।
ग्रामीण भोजन-प्राकृतिक जीवन, सेवा भावी जनता रहाय।।

किसान ही है अन्नदाता2, उसकी पीड़ा देखी न जाय।
सम्प्रति में आत्महत्या करते हैं नेता को आवे सद्बुद्धि महान्।। (5)

संकीर्ण स्वार्थ व पंथवाद से मानव अपनो पतन कराय।
'निकृष्टतम स्वार्थी है मानव' समाज राष्ट्र में विघटन कराय।।

विकृत हो गवो (गया) मानव समाज2, सतत आत्महत्या कराय।
क्षुद्र स्वार्थ पूर्ति के हेतु अन्य को सब कुछ नाश कराय।। (6)

'जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान परे परम विज्ञान'।
ज्ञानधारा की श्रृंखला द्वारा अज्ञात सत्य का बोध कराय।।

आइंस्टीन के सिद्धांत हो या2, डार्विन का विकासवाद।
सत्य कथन (कहन) में कभी न डरत हैं चाहे विश्व विरुद्ध हो जाय।। (7)

मगसीर वदी तेरस के दिन पच्चीसौ त्रालीस (2543) वीर निर्वाण।
श्रेयांस प्रभु चैत्यालय में रवीवासरे प्रातः समय काव्य बनाय।।

(26.11.2016) छब्बीस ग्यारह दो हजार सोलह2, गुरु गौरव गाथा कहाय।
सीपुर समता अतिशय धाम विश्व में ख्याति प्राप्त कराय।। (8)

सीपुर, दिनांक 26.11.2016, प्रातः 6.25

(विशेष परिज्ञान हेतु आचार्यश्रीकृत ज्ञानधार के 25 व अन्य विधा के ग्रंथों का पठन/ /मनन/चिन्तन/अनुकरण करें।)

'अहंकारी' व 'सोऽहं' भावी करते अधिक स्व (मैं) की चर्या व चर्चा!

(अहंकारी मोह-मद से तो 'सोऽहं' भावी आत्मविश्वास व आत्मविकास के लिए करते हैं स्व (मैं) की चर्या व चर्चा)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

विचित्र हैं कर्म विचित्र हैं भाव, विचित्र परिणमन विचित्र हैं काम।
मन-वचन-काय व कृत-कारित, अनुमत रूप से होते नाना परिणाम।। (1)

दृष्टि के अनुसार होती सृष्टि, परिणाम से होता परिणमन।
भावानुसार होते हैं वचन-काम, कोण व तापानुसार प्रकाश का वर्ण।। (2)

मोह-मद युक्त होते अहंकारी, इससे परे होते 'सोऽहं' भावधारी।

अहंकारी होते निश्चय से ममकारी, 'सोऽहं' भावी होते स्वाभिमानी 'अहं' भाव।। (3)
शरीर को अहंकारी मानते मैं (स्व) हूँ, स्वात्मा को 'सोऽहं' भावी मानते मैं (स्व) हूँ।
तन-धन-जन (मन) को मानते मेरे, अहंकारी के उक्त भाव से 'सोऽहं' भावी परे।। (4)
'सोऽहं' भावी (स्व) आत्मिक गुणों को मानते मेरे, आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र को मानते मेरे।
चार संज्ञा हेतु अहंकारी करते काम, आत्मोपलब्धि हेतु 'सोऽहं' भावी करते काम।। (5)
स्व-स्व दृष्टि अनुसार करते लक्ष्य, लक्ष्यानुसार करते दोनों पुरुषार्थ।
अष्टमद हेतु अहंकारी होता प्रवृत्त, अष्ट गुण प्राप्ति हेतु 'सोऽहं' भावी प्रवृत्त।। (6)
'अहंकारी' करते राग द्वेष व मोह, इसे नष्ट हेतु 'सोऽहं' भावी प्रयत्न।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा युक्त होते 'अहंकारी', इसे नष्ट हेतु प्रयत्न 'सोऽहं' भावी।। (7)
वर्चस्व प्रसिद्धि चाहते 'अहंकारी', इससे परे आत्मसिद्धि चाहे 'सोऽहं' भावी।
नाम हेतु काम करते 'अहंकारी', शुद्ध-बुद्ध बनने हेतु 'सोऽहं' भावी।। (8)
भेदभाव-पक्षपात युक्त 'अहंकारी', भेद विज्ञान समता युक्त 'सोऽहं' भावी।
मान-अपमान से प्रभावित 'अहंकारी', इससे परे 'अहं' ध्यान करे 'सोऽहं' भावी।। (9)
अहंकारी के 'मैं'-'मैं' बकरा सम होते, 'सोऽहं' भावी के 'मैं'-'मैं' शुद्धात्मा होते।
अहंकारी के 'मैं' से संसार बढ़ता, 'सोऽहं' भावी के 'मैं' से संसार कटता।। (10)
मोहात्मक 'मैं' को नाश करने हेतु, शुद्धात्मा 'मैं' का ध्यान अवश्य हेतु।
आध्यात्मिक अनुभव से यह संभव, 'कनकनन्दी' का मैं शुद्धात्मा भाव।। (11)
अज्ञानी-मोही 'मैं'-'मैं' करते रहते, आध्यात्मिक 'मैं' से घृणा करते।
आध्यात्मिक 'मैं' को न समझ पाते, आध्यात्मिक 'मैं' वालों से घृणा करते।। (12)
अंधेरा प्रकाश को मानो तम मानता, अपरिग्रही को परिग्रही मानो दीन मानता।
सती को वेश्या मानो स्वार्थी मानती, अहंकारी के ऐसी होती विकृत वृत्ति।। (13)

सीपुर, दिनांक 20.11.2016, मध्याह्न 1.00

संदर्भ-

आत्मा तीन अवस्थाओं में से जिनकी परद्रव्य में आत्मबुद्धि रूप बहिरात्मावस्था हो रही है उनको प्रथम ही सम्यक्त्व प्राप्त कर उस विपरीताभिनिवेशमय बहिरात्मावस्था को छोड़ना चाहिए और मोक्षमार्ग की साधक अंतरात्मावस्था में स्थिर होकर आत्मा की

स्वाभाविक वीतरागमयी परमात्मावस्था को व्यक्त करने का उपाय करना चाहिए।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्मातिनिर्मलः।। (5)

अन्वयार्थ-(शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिः बहिरात्मा) शरीरादिक में आत्म भ्रांति को धरने वाला-उन्हें भ्रम से आत्मा समझने वाला-बहिरात्मा है। (चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः आन्तरः) चित्त के, राग द्वेषादिक दोषों के और आत्मा के विषय में अभ्रान्त रहने वाला-उनका ठीक विवेक रखने वाला अर्थात् चित्त को चित्तरूप से, दोषों को दोषरूप से और आत्मा को आत्मरूप से अनुभव करने वाला-अंतरात्मा कहलाता है। (अति निर्मलः परमात्मा) सर्व कर्ममल से रहित जो अत्यंत निर्मल है वह परमात्मा है।

भावार्थ-मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत तत्त्वों का जैसा स्वरूप जिनेन्द्र देव ने बताया है उसको वैसा न मानने वाला बहिरात्मा अथवा मिथ्यादृष्टि कहलाता है। दर्शन मोह के उदय से जीव में अजीव की कल्पना और अजीव में जीव की कल्पना होती है, दुखदाई राग द्वेषादिक विभाव भावों को सुखदाई समझ लिया जाता है, आत्मा के हितकारी ज्ञान वैराग्यादि पदार्थों को अहितकारी जानकर उनमें अरूचि अथवा द्वेषरूप प्रवृत्ति होती है और कर्मबंध के शुभाशुभ फलों में राग, द्वेष होने से उन्हें अच्छे-बुरे मान लिया जाता है। साथ ही इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, विषयों की चाहरूप दावानल में जीव दिन-रात जलता रहता है। इसीलिये आत्म शक्ति को खो देता है और आकुलता रहित मोक्ष सुख के खोजने अथवा प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करता। इस प्रकार जाति तत्त्व और पर्याय तत्त्वों का यथार्थ परिज्ञान न रखने वाला जीव मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। चैतन्य लक्षण वाला जीव है, इससे विपरीत लक्षण वाला अजीव है, आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है, अमूर्तिक है और ये शरीरादिक परद्रव्य हैं, पुद्गल के पिंड हैं, विनाशीक हैं, जड़ हैं, मेरे नहीं हैं और न मैं इनका हूँ, ऐसा भेदविज्ञान करने वाला सम्यग्दृष्टि 'अंतरात्मा' कहलाता है। अत्यंत विशुद्ध आत्मा को 'परमात्मा' कहते हैं, परमात्मा के दो भेद हैं-एक सकल परमात्मा और निष्कल परमात्मा। जो चार घातिया कर्ममल से रहित होकर अनंत ज्ञानादि चतुष्टय रूप अंतरंग लक्ष्मी और समवसरणादि रूप बाह्य लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं उन सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशी आत्माओं को 'सकल परमात्मा' या 'अरहंत' कहते हैं और जिन्होंने संपूर्ण कर्ममलों का नाश कर दिया है, जो लोक के अग्र भाग में स्थित हैं, निजानंद निर्भर-

निजरस का पान किया करते हैं तथा अनंत काल तक आत्मोत्थ स्वाधीन निराकुल सुख का अनुभव करते हैं उन कृत-कृत्यों को 'निष्कल परमात्मा' या 'सिद्ध' कहते हैं।

मिथ्याज्ञान का लक्षण और भेद

ज्ञानावृत्युदयादर्थेष्वन्यथाऽधिगमो भ्रमः।
अज्ञानं संशयश्चेति मिथ्याज्ञानमिदं त्रिधा।। (10)

(दर्शनमोहनीय कर्म के उदयपूर्वक अथवा संस्कारवश) ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से (यथावस्थित) पदार्थों में जो उनके यथावस्थित स्वरूप से भिन्न अन्यथा ज्ञान होता है, उसका नाम मिथ्याज्ञान है और यह मिथ्याज्ञान संशय, भ्रम (विपर्यय) तथा अज्ञान (अनध्यवसाय) ऐसे तीन प्रकार का होता है।

मिथ्याचारित्र का लक्षण

वृत्तमोहोदयाज्जन्तोः कषाय-वश-वर्तिनः।
योगप्रवृत्तिरशुभा थ्याचारित्रमूचिरे।। (11)

(दर्शनमोहनीय कर्म के उदयपूर्वक अथवा संस्कारवश) चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से कषाय वशवर्ती हुए जीव की जो अशुभयोग प्रवृत्ति होती है-काय, वचन तथा मन की क्रिया किसी अच्छे भले शुभ कार्य में प्रवृत्त न होकर पापबंध के हेतुभूत बुरे एवं निंद्य कार्यों में प्रवृत्त होती है-उसको मिथ्याचारित्र कहा गया है।

व्याख्या-मोह के मुख्य दो भेद हैं-एक दर्शनमोह और दूसरा चारित्रमोह। दर्शनमोह के उदय से जिस प्रकार मिथ्यादर्शन की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार चारित्रमोह के उदय से मिथ्याचारित्र की सृष्टि बनती है। उस मिथ्याचारित्र का स्वरूप यहाँ मन-वचन-काय में किसी योग अथवा योगों की अशुभ प्रवृत्ति को बतलाया है और उसका स्वामी उस जीव को निर्दिष्ट किया है जो चारित्रमोह के उदयवश उस समय किसी भी कषाय अथवा नोकषाय के वशवर्ती होता है। काय, वचन तथा मन की क्रिया रूप जो योग यहाँ विवक्षित है उसके दो भेद हैं-एक शुभयोग और दूसरा अशुभोपयोग। शुभ परिणामों के निमित्त से होने वाला योग शुभ और अशुभ परिणामों के निमित्त से होने वाला योग अशुभ कहलाता है। अशुभ योग की प्रवृत्ति अशुभ होती है और उसी अशुभ प्रवृत्ति को यहाँ मिथ्याचारित्र कहा गया है। हिंसा, चोरी और मैथुनादि में प्रवृत्त हुआ शरीर अशुभकाय योग है। असत्य, कटुक तथा असभ्य

भाषणादि के रूप में प्रवृत्त हुआ वचन अशुभ वाग्योग है। हिंसादिक की चिंता तथा ईर्ष्या-असूयादि के रूप में प्रवृत्त हुआ मन अशुभ-मनोयोग है। इसी प्रकार योगों की यह अशुभ प्रवृत्ति, जो कृत-कारित-अनुमोदन के रूप में होती है, पापास्त्रव की हेतुभूत और इसी से मिथ्याचारित्र कहलाती है। दूसरे शब्दों में मन से, वचन से, काय से, करने-कराने तथा अनुमोदना के द्वारा जो हिंसादिक पाप क्रियाओं का आचरण अथवा अनुष्ठान है वह मिथ्याचारित्र है, जो सम्यक्चारित्र के उस लक्षण के विपरीत है।

सम्यक्चारित्र का लक्षण

चेतसा वचसा तन्वा कृताऽनुमत-कारितैः।
पापक्रियाणां यस्त्यागः सच्चारित्रमुषन्ति तत्।। (27)

मन से, वचन से, काय से कृत-कारित-अनुमोदना के द्वारा जो पापरूप क्रियाओं का त्याग है उसको सम्यक्चारित्र कहते हैं।

तत्सर्व सर्वतः कर्म पौद्गलिकं तदष्टधा।
वैपरीत्यात्फलंतस्य सर्व दुःखं विपच्यतः।। (240)

वह संपूर्ण पौद्गलिक कर्म सर्वदा आठ प्रकार का है, उसी कर्म का उल्टा विपाक होने से सभी फल दुःख रूप ही होता है।

नैवं यतः सुखं नैतत् तत्सुखं यत्र नाऽसुखम्।
स धर्मो यत्र नाधर्मस्तच्छुमं यत्र नाऽशुभम्।। (244)

शंकाकार का उपर्युक्त कहना ठीक नहीं है क्योंकि जिसको वह सुख समझता है वह सुख नहीं है। वास्तव में सुख वही है जहाँ पर कभी थोड़ा भी दुःख नहीं है, वही धर्म है, जहाँ पर अधर्म का क्लेश नहीं है और वही शुभ है जहाँ पर अशुभ नहीं है।

इदमस्ति पराधीनं सुखं बाधापुरस्सरम्।
व्युच्छिन्नं बन्धहेतुश्च विषमं दुःखमर्थतः।। (245)

यह इन्द्रियों से होने वाला सुख पराधीन है, कर्म के परतंत्र है, बाधापूर्वक है, इसमें अनेक विघ्न आते हैं, बीच-बीच में इसमें दुःख होता जाता है, यह दुःख बंध का कारण है तथा विषम है। वास्तव में इन्द्रियों से होने वाला सुख-दुःख रूप ही है।

मोही स्वभाव को प्राप्त नहीं करता है

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।
मत्तः पुमान् पदार्थनां यथा मदनकोद्रवैः।। (7)

Deluded by infatuation the knowing being is unable to acquire adequate knowledge of the nature of things, in the same way as a person who has lost his wits in conegaence of eating intoxicating is unable to know thow them properly!

यदि ये संसार के सुख और दुःख वासना मात्र ही है तब उसका यथार्थ परिज्ञान क्यों नहीं होता है? शिष्य का प्रश्न ये है-यदि वस्तुतः संसार के सुख एवं दुःख अवास्तविक हैं तब उसका परिज्ञान संसार के लोगों को अवास्तविक रूप में क्यों नहीं होता है? आचार्य शिष्य को प्रबोधन देते हैं-

''धातुनाम् अनेक अर्थत्वात्'' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ लभ धातु का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से आविर्भूत हो जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथंचित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है-जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है।

प्रश्न–अमूर्तिक आत्मा किस प्रकार मूर्तिक कर्म से आविर्भूत होता है, आबद्ध होता है?

उत्तर–शुद्ध आत्मा अमूर्तिक होते हुए भी संसारी जीव अभी अमूर्तिक नहीं है कर्म से आबद्ध संसारी जीव व्यवहारनय की अपेक्षा मूर्तिक है।

नशे को पैदा करने वाले कोद्रव-कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है, ऐसा पुरुष घट, पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता उसी प्रकार कर्म बद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञान गुण यद्यपि अमूर्त है, फिर भी मूर्तिमान कोद्रवादि धान्यों से मिलकर वह बिगड़ जाता है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसके गुण भी दब सकते हैं।

समीक्षा–सत्य से विपरीत मान्यता श्रद्धा/प्रतीति विश्वास रूप परिणाम व भावों को मोह/मिथ्यात्व कहते हैं। सत्य का पूर्ण साक्षात्कार सर्वज्ञ वीतरागी देव करते हैं। सर्वज्ञ भगवान् ने दिव्य ध्वनि मूलक उस परम सत्य का प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा

प्रतिपादन किया है, उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य अर्थात् जो उनके द्वारा कहे हुए द्रव्य, तत्त्व पदार्थों में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि उसकी श्रद्धारूप दृष्टि विपरीत होने के कारण वह पदार्थ को भी विपरीत रूप श्रद्धान करता है। सिद्धांत चक्रवर्ती नेमीचन्द्र आचार्य गोम्मट्टसार में कहते हैं-

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं च ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइः।। (18)

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हंत आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन, इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिनका वचन प्रकृष्ट है ऐसे आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम। प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते है तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्या रूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

मदि सुदणाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लेदे जिणुवदिट्ठं।
जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिण मग्ग लग्गरवो।।(2) (रयणसार)

जो मतिज्ञान श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुए मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के कारण उद्धत होकर स्वयं के मनमाने ज्ञान के द्वारा अपने मत अर्थात् पक्ष को लेकर स्वच्छंद होकर कपोल कल्पित मत का प्रतिपादन करते हैं, जिनवाणी को नहीं मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जिनधर्म से बाह्य हैं। यदि जिनागम को दिखाने पर यथार्थ वस्तु का श्रद्धान करने लगता है और पूर्व कल्पित मत-पक्ष का त्याग करता है तब वह सम्यग्दृष्टि बन जाता है अन्यथा मिथ्यादृष्टि रहता है।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।। (17)

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है अपितु अनेकान्तात्मक, धर्म, वस्तु स्वभाव, मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसंद नहीं करता।

दृष्टांत–पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे-दूध रसादि को पसंद नहीं करता, उसी

तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता है।

इंदिय विसय सुहादिसु मूढमदी रमदि न लहदि तत्त्वं।

बहुदुक्खमिदि ण चिंतदि सो चेव हवदि बहिरप्पा।। (29) (रयणसार)

जो मूढ़मति इन्द्रिय जनित सुख में रमण करता हुआ उसको सुख मानता है, बहु दुःखप्रद नहीं मानता है, वह आत्म तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

पूर्व संचित मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो स्वयंमेव विपरीत भाव होता है उसे निसर्ग व अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं, जो कुगुरु के उपदेश से विपरीत भाव होते है उसे अधिगमज व गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व के कारण जीव अवस्तु में वस्तुभाव, अधर्म में धर्मभाव, कुगुरु में गुरुभाव, कुशास्त्र में सुशास्त्र भाव को धारण करता है। बहिरात्मा केवल शरीर पोषण करता है, अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में ही लीन रहता है। बाह्य-भौतिक हानि वृद्धि में अपनी हानि-वृद्धि मानकर सुखी-दुःखी होता है। सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार होते हुए भी विशेष अपेक्षा अर्थात् द्रव्य-भाव से दो प्रकार, एकांत, विपरीत, संशय, विनय, अज्ञान की अपेक्षा पाँच प्रकार भी होता है। इसमें सांख्य चार्वाक मत मिलाने से 7 प्रकार का मिथ्यात्व होता है। विशेष रूप से क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादी के 67 और वैयनिकवादियों के 32 इस प्रकार मिथ्यावादियों के 363 भेद होते हैं।

मोही पर को अपनाता

वपुर्गृहं धनं दाराःपुत्रा मित्राणि शत्रवः।

सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते।। (8)

All the objects, the body, the house, the wealth, the wife, the son, the friend, the enemy and the like are quite different in their nature from the soul; the foolish an, however, looks upon then as his own!

मुमुक्षु का कर्त्तव्य

अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।

तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49)

That excellent and supreme light of the self is the destrayer

of ignorance, the seekers after saluation should always angage themselves in questioning others about it, in ectionately deeking it and in realizing if by actual exprionce!

पूर्वोक्त विषय को आचार्यश्री और भी बताते है-मुमुक्षु को सतत उस आनंद स्वरूप, ज्ञानमय, आत्म प्रकाशक अविद्या रूपी अंधकार को भेदन करने वाली परम् चितज्योति, विघ्नों को छेदन करने वाला महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य प्रकाश के बारे में गुरु आदि से सतत् पूछना चाहिए तथा उसकी इच्छा करनी चाहिए एवं उसका ही अनुभव करना चाहिए। आचार्य गुरुदेव ने शिष्य के प्रति परम करुणा से प्लावित होकर शिष्य को आत्म तत्त्व के बारे में विशेष ज्ञान कराने के लिए व उसमें स्थिर करने के लिए आत्म तत्त्व का सविस्तार यहाँ वर्णन किया है।

समीक्षा-संसारी जीव अनादि अनंत काल से स्व-आत्म स्वरूप को भूलकर उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिर-विस्मरणीय उपेक्षित स्व-आत्म द्रव्य और आत्म स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरूह है, क्लिष्ट साध्य है। कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।। (4) समयसार पृष्ठ-4

सुदा अनंत बार सुनी गई है परिचिदा अनंत बार परिचय में आई है अणु भूदा अनंत बार अनुभव में भी आई है। सव्वस्स वि सब ही संसारी जीवों के काम भोग बंध कहा काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिए गए हैं उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नर-नारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत-परिचित और अनुभूत है इसलिए दुर्लभ नहीं किन्तु सुलभ है। एयत्तस्स परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व का अवलंभों उपलंभ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना णवरि वह केवल ण सुलभो सुलभ नहीं है विहतस्स कैसे एकत्व का? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में

आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्यश्री ने कहा कि-हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत मोक्ष स्वरूप स्व-आत्म तत्त्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान करो। ग्रंथकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुए कहा है-

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्म ज्योति का स्वरूप कहे, उसी के संबंध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे जब तक अविद्या (अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकरान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है-

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव।। (9)

फिर शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृतपान किस प्रकार करूँ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति-विजाति का भेद नहीं और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्व-प्रकाश रूप हूँ, निश्चय रूपी अग्नि से अज्ञान रूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होने पर शोक रहित होकर परमानंद को प्राप्त हो।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।
आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखंचर।। (10)

यहाँ शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञान से अज्ञानरूपी वन के भस्म होने पर भी सत्यरूप संसारी की निवृत्ति न होने के कारण शोक रहित किस प्रकार होऊँगा? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य! जिस प्रकार रज्जु के विषे सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा के विषे जगत् की प्रतीति अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर। जिस स्वप्न में किसी पुरुष को सिंह मारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस कल्पित दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान का नाश करके सुखी हो। फिर

शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरो! दुःख रूप जगत् अज्ञान से प्रतीत होता है और ज्ञान से उसका नाश हो जाता है परन्तु सुख किस प्रकार प्राप्त होता है? तब गुरु समाधान करते है कि हे शिष्य! दुःखरूपी संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनंद स्वरूप हो जाता है, मनुष्य लोक से तथा देवलोक से आत्मा का आनंद परम उत्कृष्ट और अत्यंत अधिक है।

आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के प्रति मुनि चन्द्रगुप्त की भावाभिव्यक्ति

मेरे गमक तथा वाग्मी गुरु, प्रवचन भक्ति के साधन स्वरूप सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव के श्रीचरणों में आपके पौत्र चन्द्रगुप्त का त्रिभक्तिपूर्वक बारम्बार नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु।

गुरुदेव! ससंघ का स्वास्थ्य-रत्नत्रय कुशल होगा।

गुरुदेव! आज मैं संध्याकाल में जब कचनेर में भगवान् के सामने जप कर रहा था तब अचानक ही मेरे स्मृति पटल पर आपकी स्मृतियाँ हिलोरे लेने लगी व मुझे 18.4.2015 का वो दृश्य याद आने लगा जब आपका समागम हमने दूसरी बार शेषपुर में प्राप्त किया था। तब मैंने आपके पाद प्रक्षालन की तैयारी स्वयं अपने हाथों से की थी। आपके चरण संस्पर्श से अपने-आपको धन्य किया था। आज जप करते हुए पुनः वही भाव हो रहे थे व इतनी आकुलता हो रही थी कि, अब ऐसा स्वर्ण अवसर कब मिलेगा जब मैं आपके उन पावन-सुंदर चरणों को अपने हाथों से स्पर्श करके उस पावन धूली को मस्तक पर लगाऊँ। उन चरणों पर बड़े-बड़े कलशों से दूध-दही की धारा करके अपने अज्ञान रूप कीचड़ को धोकर कृत्य-कृत्य हो जाऊँ।

गुरुदेव! ऐसे भाव हो रहे थे कि मेरे हाथ आपके श्रीचरणों में हो व आपका हाथ मेरे मस्तक पर हो। इससे बड़ा अनमोल क्षण मेरे जीवन में और क्या हो सकता है। ऐसा सोचते-सोचते मुझे आँसू भी आ गये थे। मैं धन्य हूँ गुरुदेव! जो मुझ पर आपकी कृपादृष्टि हुई, आपके जैसे सिद्धांतवेत्ता गुरु की भक्ति करते-करते आपके ही श्रीचरणों में मेरा समाधिमरण हो। मुझे विश्वास है कि मेरे ये परिणाम व आपका समागम मेरे निकट भव्य होने का परिचय देते है। गुरुदेव! आपके जैसे गुरु उन्हीं को प्राप्त होते

होंगे जो निकट भव्य हो। गुरुदेव! चाहे इसे कोई मेरा आपके प्रति मोह कहे अथवा अहोभाव। पर गुरुदेव! मुझे इस प्रकार आपको स्मरण करके आपके दर्शन की आकुलता तो होती है परन्तु शांति भी मिलती है। गुरुदेव! अब अंत में मैं आपसे केवलज्ञान की प्राप्ति या मुक्ति की कामना/(भावना) से आशीर्वाद नहीं मांगूँगा क्योंकि मुझे आपकी भक्ति के प्रति/(श्रद्धान) है कि आपकी निश्चलता, समता, प्रतिकूलता में भी अनुकूलता ढूंढ़ने की प्रवृत्ति, अनेक अलौकिक गुणों के प्रति जो मेरा प्रशस्त राग है वह मुझे शीघ्र ही 'कैवल्यबोधि' की प्राप्ति करायेगा।

हे परम कृपालु भगवन्! मुझे शीघ्र ही आपके दर्शन हो तथा सदैव यह छोटा बालक आपके वात्सल्य का पात्र बना रहे, इसी शुभाशीष की सद्भावनाओं के साथ...

आपका बालक चन्द्रगुप्त

भावना के अतिरेक में कोई अविनय हुआ हो तो क्षमा करे गुरुदेव! नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु गुरुदेव।

मेरे आराध्य-प.पू. वैज्ञानिक धर्माचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव

-आ. दिव्यश्री

आज मेरा महान् पुण्य का उदय है कि मैं अपने शब्दों के द्वारा उन गुरु का गुणानुवाद कर रही हूँ, जिन्होंने मेरी जीवन बगिया को महकाने के लिए अनंत उपकार मुझ पर किये हैं। मनुष्य के जीवन में गुरु का बहुत महत्व है। क्योंकि संस्कारित जीवन का प्रारंभ गुरु के माध्यम से ही होता है। पशु-पक्षी आदि के जीवन का विकास इसलिए नहीं हुआ कि उन्हें जीवन में गुरु का सान्निध्य नहीं मिला और मनुष्य ने गुरु की आराधना करके अपने जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त भी कर लिया। कहते हैं कि माता तो कभी कुमाता हो सकती है लेकिन गुरु अपने शिष्य के लिए कभी कुगुरु नहीं बन सकते। माता-पिता जन्म देते हैं जिनके माध्यम से हमें शरीर की प्राप्ति होती है। वे हमारा पालन-पोषण भी करते हैं तो इस भावना के साथ कि मेरी संतान आगे मेरी सेवा करेगा। लेकिन गुरु के द्वारा हमें जीवन की परिभाषा, जीवन का महत्व, जीवन का लक्ष्य और जीवन की सफलता के सूत्र और उस सफलता के मार्ग में किया जाने

वाला व्यवहार आदि सिखाया जाता है आर वह भी इस भावना के साथ कि जीव इस मनुष्य भव को सफल करके अपने परम कल्याण को प्राप्त हो। अतः आचार्यश्री वादिभसिंह जी गुरुदेव की उक्ति ''गर्भाधान क्रिया न्यूनं गुरुरेव हि देवता'' हर महर्षि में चरितार्थ होती है। जैन धर्म में अनादि काल से ऐसे गुरुओं की शरण प्राप्त करके आज तक अनंतानंत जीव अपने स्वभाव में स्थित होकर अनंतानंत काल के लिए परम सुख को प्राप्त कर चुके हैं और आज मैं उन सौभाग्यशाली जीवों की श्रेणी में हूँ, जिनको गुरु ने अपना वरद हस्त प्रदान करके उन्हें योग्य एवं सबल बनाया है। गुरुओं की शरण पाकर मैं आज स्वयं अपने को धन्य मानती हूँ अतः गुरु की प्राप्ति मुझे किस प्रकार हुई यह सबको बताना चाहूँगी।

बचपन से ही मुझे साधु-संतों के चित्र बहुत आकर्षित करते थे। उम्र के 14 वर्ष बीतने तक सिर्फ मैं इतना ही जान पाई थी कि हम जिस धर्म के अनुयायी हैं उस धर्म में गुरु निर्ग्रंथ दिगम्बर रहते हैं वे एक हाथ में मोर पंख की पिच्छी और दूसरे में कमण्डल रखते हैं। लेकिन मैंने कभी भी इस रूप के दर्शन का लाभ प्राप्त नहीं किया क्योंकि वहाँ दिगम्बर साधुओं का आगमन बहुत कम होता था। सन् 1991 की बात है कि पूरे शहर में चर्चा का विषय था कि रोहतक शहर में चातुर्मास करने के लिए दिगम्बर साधुओं का बहुत बड़ा संघ आ रहा है। इसलिए सभी दिगम्बर जैन समाज के आबाल वृद्ध अत्यंत उत्साहित थे। जिस दिन संघ का प्रवेश नगर में हुआ, सभी साधुओं की आहारचर्या आदि की बातें भी मुझे सुनने को मिली कि इस संघ में बच्चे भी आहार दे सकते हैं। मैं विधि तो जानती नहीं थी किन्तु कौतूहलवश मैंने भी आहार देने की तैयारी की और जैसा मुझे बड़े लोगों ने बताया साड़ी पहनी और जैसे चौके वाले कर रहे थे मैंने भी करना शुरू किया। मेरे जैसी दो लड़कियाँ और मेरे साथ थी। पड़गाहन शुरू हुआ तो जैसा मुझे बताया गया मैंने भी बोलना शुरू कर दिया और देखते ही देखते हमारी गली के सामने आये **पूरे संघ के शिक्षा गुरु ''परम पूज्य उपाध्याय श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव''** और गुरुदेव को सामने देखते ही मैं क्या बोलना है भूल गई और गुरुदेव बड़ी ही सरल और शांत मुद्रा में अपने नियम को देख रहे थे। मैंने भी देखा गुरुदेव की नजर हम बच्चों की ओर थी। मुझे तो कुछ समझ नहीं आया किन्तु आंटी वगैरह ने एक बार हम तीनों को कलश लाकर दिया, फिर उस पर नारियल रखा। गुरुदेव स्मित मुस्कान के साथ वापस लौटने लगे तो हमारे सिर पर

कलश रख दिये और हम बोलने लगे तो गुरुदेव हमारे सामने आकर खड़े हो गये। पड़गाहन आदि करके जब गुरुदेव ने त्याग करने का इशारा किया तो सबने कहा कि तू नियम लेगी तो ही आहार दे सकेगी। डर तो मुझे लग ही रहा था अतः मैंने नियम ले लिया। गुरुदेव ने 4 माह तक बाजार की चीजें न खाने का नियम दिलाया। मैंने नियम लेकर आहार दिया और पूरा आहार गुरुदेव ने बच्चों से लिया। आहार के बाद जब गुरुदेव चले गये तो मुझे यह सोच-सोचकर बहुत खुशी हो रही थी कि आज मैंने बहुत बड़ा काम किया है और इस तरह श्रावक धर्म के संस्कारों का प्रारंभ मेरे जीवन में करने वाले वे महामना तपस्वी गुरुदेव उसी दिन से मेरे आराध्य हैं क्योंकि उन्होंने मेरे हाथों से आहार लेना स्वीकार किया और मुझे यह अहसास कराया कि मैं भी वह काम कर सकती हूँ, जो सिर्फ बड़े लोग कर सकते हैं। मैं उस दिन को कभी भी नहीं भूल सकती।

समय निकलता गया। चातुर्मास पूरा होने को आ गया किन्तु मैं दिल से निरंतर जिनकी भक्ति करती थी, उनके पास जाने की मेरी हिम्मत नहीं होती थी। दीपावली का दिन आया और उस दिन बहुत हिम्मत करके मैं सब भाई-बहनों को साथ लेकर गुरुदेव के कमरे में गई और एक ग्रीटिंग कार्ड गुरुदेव को डरते-डरते भेंट किया और बोली कुछ भी नहीं। गुरुदेव के अलौकिक ज्ञान और निस्पृह वृत्ति से तब तक रोहतक का बच्चा-बच्चा प्रभावित हो चुका था, अतः हर पल धीर-वीर-गंभीर मुद्रा में रहने वाले गुरुदेव के आज मैंने पहली बार पास जाकर दर्शन किये और गुरुदेव ने भी बहुत-बहुत आशीर्वाद कहकर मेरे ग्रीटिंग को खोलकर देखा और मुस्कुरा दिये। उनकी स्वीकारोक्ति और कृपादृष्टि ने मुझमें अनजाने ही साहस का संचार कर दिया क्योंकि उस समय तक मैं परम पूज्य गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी गुरुदेव और गणिनी आर्यिका कमल श्री माताजी के वात्सल्य से इतनी अभिभूत हो चुकी थी कि मैं भी संयम पथ पर चलने का भाव रखने लगी थी किन्तु उपाध्याय श्री के कठोर अनुशासन से डरती थी और ये सोचती थी कि उपाध्याय गुरुदेव का अनुशासनपूर्ण व्यवहार मुझसे हो पायेगा या नहीं। आज उनकी मधुर मुस्कान ने मेरे दिल का भ्रम निकाल दिया और मुझे विश्वास हो गया कि गुरुदेव सिर्फ अनुशासन ही नहीं करते प्रेम भी करते हैं और ऐसे वात्सल्य के सागर आचार्य गुरुदेव ने मुझे अपनाया, आज मेरा मन हर पल उनका स्मरण करके पवित्र होता है।

संघ के विहार के साथ मैंने भी गुरु छाँव में अपनी नई जीवन यात्रा प्रारंभ की। जयपुर नगर में 1 आर्यिका एवं 1 ऐलक दीक्षा के मंच पर मात्र 14 वर्ष की उम्र में मेरे भावों व मेरे आगामी भविष्य को देखते हुए आचार्य गुरुदेव ने मुझे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान करके हमेशा-हमेशा के लिए मुझे अपने दिल में एक स्थान दिया जिसका ऋण मैं अपने कई जन्मों में भी नहीं चुका सकती। अतिशय क्षेत्र पद्मपुरा में गुरुदेव ने मुझे इस योग्य समझा कि मैं उनकी शिक्षा को ग्रहण कर सकती हूँ अतः पूरे संघ के साथ मैं भी उपाध्याय गुरुदेव की कक्षा में गई। गुरुदेव समाधितंत्र पढ़ा रहे थे। गुरुदेव अध्यात्म विषय को अत्यंत उच्च भाषा में बहुत से उदाहरण देकर समझा रहे थे। जब गुरुदेव ने भाँप लिया कि मैं कुछ भी नहीं समझ रही हूँ तो गुरुदेव ने समझ न आने पर पूछने के लिए प्रेरित किया। मैंने घर छोड़ दिया था लेकिन मुझे सिद्धों के स्वरूप का भी ज्ञान नहीं था। अतः मैंने जिस तरह के प्रश्न किये, गुरुदेव मेरी बाल बुद्धि पर आज भी याद करके मुस्कुराते हैं और उस दिन इस महान् वैज्ञानिक प्रज्ञा पुंज के द्वारा जो मुझे सिद्ध भगवान् का स्वरूप ज्ञात हुआ, ऐसा प्रतीत हुआ कि मुझे विश्व का सर्वोत्कृष्ट रहस्य मिल गया क्योंकि गुरुदेव ने यह भी बताया था कि तुम भी साधना करके सिद्ध भगवान् बन सकते हो। इस तरह मेरे जीवन में आध्यात्मिकता का सूत्रपात भी गुरुदेव के हाथों से ही हुआ। अतः मुझे सिद्ध भगवान् से व मेरी आत्मा से परिचित कराने वाले गुरुदेव तब तक मेरे हृदय में विराजमान रहेंगे जब तक कि मैं सिद्ध भगवान् नहीं बन जाती।

आज जब लोगों की तरह-तरह की बातें सुनती हूँ कि कुछ आता तो नहीं घर छोड़ने से मोक्ष नहीं मिलता। पहले पढ़-लिखकर विद्वान् बनना चाहिए फिर दीक्षा लेनी चाहिए। तो मैं सोचती हूँ कि ये अज्ञानी और सिर्फ बातें बनाने वाले विषयों के लोलुपी लोग हमारे गुरुओं की प्रज्ञा को कब पहचान पायेंगे कि वे गुरुदेव भव्यत्व गुण के पारखी होते हैं। जैसे रत्न पारखी कनक पाषाण में सोना कहाँ और कितना है एक दृष्टि में ही पहचान जाते हैं और फिर उसमें से किट्ट कालिमा कैसे हटाई जाएगी, इस विषय को बखूबी जानते हैं, उसी प्रकार ये धरती के देवता निर्ग्रंथ ऋषि भी भव्य जीव में भगवान् के दर्शन करके सिर्फ अपनी संख्या बढ़ाने का काम नहीं करते, निरंतर परिश्रम करके शिष्य को भगवान् बनना सिखाते हैं और फिर भी निर्लिप्त रहते हैं। निरंतर हर प्राणी के उपकार की भावना करते हुए सभी प्रकार के उपसर्ग और परीषह

को सहन करते हुए ये प्राणी मात्र के हितकारक गुरुदेव समता की साधना करते हैं। आचार्यश्री गुणभद्र स्वामी जिनकी स्तुति करते हुए कहते हैं ''परहित रतिं पश्य महतः'' अर्थात् परोपकार व परहित की भावना करते हुए ये साधुगण ग्राम व नगरों में विहार करते हैं। अपने साधना के समय में से समय निकालकर भव्य जीवों के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह उनकी आश्चर्यकारक परहित में रति (प्रेम) भावना है।

श्री पद्मपुरा अतिशय क्षेत्र के बाद मुझे गुरुदेव के चरणों का सान्निध्य नहीं मिला और बीच में जब कभी मिला तो बहुत ही कम समय के लिए। फिर भी इतने अल्प समय में ही गुरुदेव ने मेरे दिल और दिमाग के कोरे कागज पर जो एक नक्शा बना दिया था वह कभी भी मिटने वाला नहीं था, बल्कि अब उसमें ही रंग भरे जाने बाकी थे और उस नक्शे में चित्र भरने का काम भी गुरुदेव के परम प्रिय शिष्य एवं मेरे जीवन का उद्धार करने वाले मेरे आर्यिका दीक्षा एवं शिक्षा प्रदाता गुरु आचार्यश्री पद्मनंदी जी गुरुदेव और आप ही की शिष्या गणिनी आ. कमलश्री माताजी ने किया। अतः आज मैं जो कुछ भी हूँ, इन्हीं परम पावन तरण-तारण गुरुओं की कृपा प्रसाद का फल है। किसी ने कहा है ''शीश दिये यदि गुरु मिले, तो भी सस्ता जान।'' अतः मैं आज स्वयं को अत्यंत गौरवान्वित महसूस करती हूँ कि जिन गुरुओं की प्राप्ति शीश देकर भी होना मुश्किल है, उन्होंने स्वयं मेरा मार्गदर्शन किया, मुझे सत्य पथ और विश्व विज्ञान के रहस्यों से परिचित कराकर मनुष्य भव (स्त्री पर्याय) के सर्वोत्कृष्ट पद पर लाकर बैठा दिया। आज मेरे जीवन में जो भी खूबियाँ हैं वे सब गुरुजनों के पुरुषार्थ का ही परिणाम हैं।

बीस वर्ष की दीर्घ प्रतीक्षा के बाद आज मुझे गुरुदेव के चरणों का सान्निध्य प्राप्त हुआ बहुत ही कम समय के लिए हुआ किन्तु ऐसा लगा मानो जन्मों की प्यासी मरूभूमि में सावन का संदेश आ गया और गुरुदेव का वही वात्सल्य एवं अपनत्व पूर्ण हरा-भरा व्यवहार व आशीर्वाद मुझे तो मिला ही सही किन्तु मेरे सभी साधर्मियों को भी मिला जिन्होंने प्रथम बार ही गुरुदेव के दर्शन व चरण वंदना का लाभ प्राप्त किया था। मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि आज गुरुदेव कितने महान् बन चुके हैं और इतनी ख्याति, कीर्ति व महानता अर्जित करने के बाद भी हम जैसे गुमनाम शिष्य-शिष्याओं के लिए वही प्रेम व कुछ सिखाने की तत्परता। अर्थात् अहंकार का

तो दूर-दूर तक कहीं नामो-निशान भी नहीं। आज गुरुदेव ने सभी कषायों पर विजय प्राप्त कर ली है, सत्य व समता की साधना निरंतर वृद्धिगत हो रही है। आज गुरुदेव अपने विशिष्ट ज्ञान के बल पर विश्व के क्षितिज पर सूर्य की भाँति जगमगा रहे हैं। अभी तक गुरुदेव ने गणित, व्याकरण, राजनीति, कानून, षट् दर्शन, विज्ञान, न्याय आदि सभी विधाओं में पारंगतता प्राप्त करके, अपने अनुभव के नये सूत्र जोड़े हैं और शिक्षा के क्षेत्र में एक नई पद्धति को जन्म दिया है। अनुभव ज्ञान गुरुदेव की शिक्षा पद्धति की आत्मा है और इस पद्धति से गुरुदेव अल्पज्ञानी को भी ज्ञानी बनाने में सिद्धहस्त सिद्ध हुए हैं। गुरुदेव के द्वारा लिखित साहित्य संपूर्ण विश्व में सत्य प्राप्ति के लिए वैज्ञानिकों के द्वारा पढ़ा जा रहा है और जैसा कुछ आचार्यश्री ने लिखा है, खोज करते हुए वही सब कुछ सामने आ रहा है अतः गुरुदेव की शरण में आकर विज्ञान, जैन धर्म को विश्व धर्म सिद्ध कर रहा है। देश-विदेश के विद्वान्, वैज्ञानिक, न्यायाधीश व उच्च पदों पर स्थित गणमान्य सज्जन शिष्य बनकर गुरुदेव के ज्ञान से लाभान्वित होकर सत्य पथ का प्रचार-प्रसार करने में लगे हैं और गुरुदेव अपने जीवन का परम लक्ष्य स्वात्मोपलब्धि की साधना में जुटे हैं। व्यवहार धर्म का पालन करते हुए चतुर्विध संघ को ज्ञान-दान देकर अपने अंतरंग तप स्वाध्याय तप और ध्यान की सिद्धि कर रहे हैं। साथ ही शिष्यों का मार्ग प्रशस्त करके अपने आचार्य पद की सभी जिम्मेदारियों का निर्बाध पालन कर रहे हैं।

इतने सारे कर्त्तव्यों का पालन करते हुए भी मनुष्यों में जो गुण अत्यंत दुर्लभता से दिखाई देता है, वह गुण है कृतज्ञता और आचार्यश्री कृतज्ञता भावना से ओत-प्रोत हैं। बच्चा हो या बड़ा गुरुदेव के लिए यदि उसने अपने कर्त्तव्य का भी पालन किया है तो भी गुरुदेव उसका धन्यवाद ज्ञापित करना नहीं भूलते। उत्साह बढ़ाने के लिए उसके उस कार्य की बार-बार प्रशंसा करते हैं। ''न हि कृतमुपकारं विस्मरन्ति साधवः'' इस उक्ति के अनुसार हमें कभी भी किसी का छोटा-सा भी उपकार भूलना नहीं चाहिए। इस तरह न जाने कितने ही गुण हैं जो सिर्फ महसूस किये जा सकते हैं और हर बार उनका स्मरण करते ही मन श्रद्धा से नम्रीभूत हो जाता है किन्तु उन्हें लिखा नहीं जा सकता। गुरुदेव हमेशा कहते हैं कि जितना कुछ हम देखते हैं, उतना ना वचनों से कह सकते हैं और ना ही लिख सकते हैं अतः गुरुदेव के

जिस रूप व अपार गुणों को मैंने चार दिनों में देखा है उनका वर्णन करना तो शायद अन्य के भी सामर्थ्य से बाहर होगा, फिर मुझ अल्पज्ञ की तो बात ही क्या है? फिर भी गुरुदेव के प्रति मेरी भक्ति भावना मुझे बार-बार प्रेरित करती है अतः मैंने विशाल आकाश प्रमाण व्यक्तित्व के धारी मेरे आराध्य के गुणों को अपने शब्दों में बाँधने का प्रयास किया है। मैं परम प्रमोद भावना के वशीभूत हुई गुरुदेव के गुणों की प्राप्ति के लिए आपके चरणों में त्रिभक्तिपूर्वक कोटिशः नमन व चरण स्पर्श करती हुई गुरुदेव के परम स्वास्थ्य की मंगल कामना करती हूँ। नमोऽस्तु गुरुदेव। नमोऽस्तु गुरुदेव, नमोऽस्तु गुरुदेव।।

आचार्य कनकनन्दी जी की गुणवत्ता

खुशी जैन सुपुत्री राजेश कुमार जैन,
कक्षा-IX

(चाल : आज उनसे मिलना है हमें.....)

मन मेरा खिलता है ओ गुरुवर, मन मेरा रमता है ओ गुरुवर,
गुरु तेरे द्वारे मुझे आना है दर्शन पाकर ज्ञान पाना है।

कनक गुरु की भक्ति करो, आठ द्रव्यों से पूजन करो,
आहारदान भी देते चलो, शिक्षा भी लेते चलो,
कनक गुरु का लक्ष्य है, मैं को पाना लक्ष्य है।

तू ही तो माता है तू ही तो पिता है, तू ही तो मात-पिता भगवन्,
तेरे ही द्वारे जो आये वो हर्षायें आप ही विनम्रधाम हो।
संयमधारी उपकारी भी हो, ज्ञानी-दानी-ध्यानी भी हो। ला...ला...
गुरु तेरे द्वारे मुझे आना है...

प्रकृति व अन्य जनों से, शिक्षा लेते है गुरुवर,
तुमसे है अच्छाई तुमसे ही सच्चाई, खुशी भी माने यही बंधन,
छोटे श्रेयांसनाथ कनक गुरु, शांति सुखदायी जीते जीवन। ला...ला...
गुरु तेरे द्वारे मुझे आना है...

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 10.10.2016, समय 2.20

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव का विद्यार्थी रूप

खुशी जैन सुपुत्री राजेश कुमार जैन,
कक्षा-IX

(चाल : ताकते रहते तुमको साँझ-सवेरे.....)

दर्शन करूँ तेरे हर पल गुरु मैं, हृदय में बस गए हो गुरुवर मेरे2
तेरे मीठे-मीठे बोल, देते मेरे मन को चैन, देते मेरे मन को चैन, तेरे कमल नयन से नैन।

गुरुवर तेरी दृष्टि अलौकिक, समय तप में मौलिक स्वरूप,
जानती दयालु गुरुवर दिल से पुकारती, 'खुशी' भी गुरुवर को दिल से पुकारती।

चरणों में आये है गुरुवर तेरे, काव्यों में रच गये हो गुरुवर मेरे2,
तेरा सरल स्वभावी रूप, लगता है प्रभु स्वरूप, लगता है प्रभु स्वरूप, तेरा सरल समभावी रूप।

मन मोहना मेरे गुरुवर का रूप है, मुख मण्डल तेरा कितना अनूप है,
भक्त तुझे गुरुवर दिल से पुकारते, चरणों में आके तेरी जीवन सँवारते,

भोला-सा चेहरा तेरा बालक का रूप है, जानकर हम बने है विद्यार्थी रूप में2,
तेरे कमल नयन से नैन, देते मेरे मन को चैन, देते मेरे मन को चैन, तेरे मीठे-मीठे बोल।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 30.10.2016, समय 3.00

आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव की विशेषताएँ युक्त 'आरती'

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : भातुकली.....)

युग निर्माता, सत्यशोधक, लोकज्ञता, गुणी की।
बहुभाषाविद्, शिक्षा विज्ञानी, प्रतिभाशाली 'कनक गुरु' की।। (ध्रुव)

भव्यैक बन्धु, न्यायवन्त, माध्यस्थभावी, करूणाशील।
आत्मानुभवी, वात्सल्यधारी, पर दुःख कातर, सत्यवादी।।

निर्मल भावी, सरल सहज होऽऽऽ2 आर्जव भावी गुरुवर की।
(स्वर्ण) भाव दीप की ज्योति जलाकर आज उतारूँ आरती।। (1)

संक्लेश त्यागी, संयमधारी, विज्ञान सिन्धु, ब्रह्मलीन।

गुणानुमोदक, भविष्यज्ञाता, निमित्त ज्ञानी, विदाम्बर।।

प्रशमभावी, प्रगतिशील होऽऽऽ2 प्रोत्साहक, सूरीश्वर की।
श्रद्धा दीप को कर में लेकर आज उतारूँ आरती।। (2)

आकिंचन्यभावी, अद्वितीय, अलौकिक, अध्यात्म योगी।
सारस्वत, सम्वेगधारी, सत्यग्राही, सदाशयी।।

धर्ममूर्ति, श्रेयस भावी होऽऽऽ2 गौरवशाली मम गुरु।
ज्ञान दीप को प्रज्ज्वलित कर आज उतारूँ आरती।। (3)

सीपुर, दिनांक 21.11.2016, मध्याह्न 3.00

(यह आरती मुनिश्री सुविज्ञसागर जी कृत 'निस्पृह आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव की बहुगुणधारी विशेषताएँ' कविता के आधार पर बनी।)

बहुगुणधारी श्री कनकनन्दी गुरुवर की आरती/वंदना

(चाल : मिलो न तुम तो.....)

आत्मविज्ञानी ज्ञानानंदी सहजानंदी गुरु की, करूँ मैं वंदना2 (आरती) होऽऽ
स्वाध्याय तपस्वी विद्यानंदी व्यापक भावी गुरु की, करूँ मैं वंदना (आरती) होऽऽ करूँ मैं...

अध्यात्मवादी अपूर्व अर्थी हैं गुरुवरऽऽ,
विद्यासिंधु प्रज्ञावान् हैं यतिवरऽऽ
महातार्किक समताभावी आगमज्ञाता गुरु की, करूँ मैं...

शास्त्र विज्ञाता सुगुणग्राही हैं मुनिवरऽऽ
धर्म प्रभावक, सिद्धांत चक्री है ऋषिवरऽऽ
सुगुणग्राही सत्यग्राही सर्वोदयी ऋषि की, करूँ मैं...

आयुर्वेदज्ञाता ग्रामोत्थानी हैं प्रभुवरऽऽ
विद्या विशारद बहुअवधानी हैं यतिवरऽऽ
सुश्रुतज्ञानी महाकवि सुमतिज्ञानी यति की, करूँ मैं...

अलौकिक गणितज्ञ अध्ययनशील हैं गुरुवरऽऽ
सहिष्णुभावी आशुकवि हैं यतिवरऽऽ

मृदु स्वभावी उदार भावी अपरस्रावी मुनि की, करूँ मैं...

सहिष्णु भावी अध्ययनशील हैं सूरीवरऽऽ
कृतज्ञभावी परोपकार हैं मुनिवरऽऽ
एकांतप्रेमी मौनधारी नवाचारी गुरु की, करूँ मैं...

आर्षमार्गी परमागम ज्ञाता हैं गुरुवर
स्व-पर मत ज्ञाता तात्कालिक ज्ञानी हैं यतिवरऽऽ
शुभोपयोगी ध्यानयोगी ज्ञानोपयोगी गुरु की, करूँ मैं...

संवेदनशील धैर्यशाली हैं यतिवरऽऽ
अन्तर्मना स्थितप्रज्ञ हैं मुनिवरऽऽ
महासमीक्षक शब्दशिल्पी प्रखर वाग्मी सूरी की, करूँ मैं...

सीपुर, दिनांक 20.11.2016, मध्याह्न 1.30

अन्तर्ज्ञान का मैं सदुपयोग व संवर्द्धन करूँ

(मेरे अन्तर्ज्ञान से प्राप्त अनेक विध लाभ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर....., सायोनारा.....)

आत्मन्! तू अन्तर्ज्ञान को मानोऽऽ/जानोऽऽ
अन्तर्ज्ञान से जो होता अनुभवऽऽ वह विशेष परिज्ञानऽऽ (ध्रुव)

बहिरात्मा परे होता अंतरात्माऽऽ उससे परे होता परमात्माऽऽ
परमात्मा से संबंध होने सेऽऽ बहिरात्मा से ज्ञानी अंतरात्माऽऽ
(अतः) अन्तर्ज्ञान का संबंध अन्तरात्माऽऽ (1)

बहिरात्मा का ज्ञान होता इन्द्रिय ज्ञानऽऽ यंत्र व बाह्य चेतन-मन-ज्ञानऽऽ
इससे होता स्थूल भौतिक ज्ञानऽऽ न होता सूक्ष्म चेतन/(अमूर्तिक) ज्ञानऽऽ
पूर्ण सत्य न बहिरात्मा ज्ञानऽऽ (2)

स्थूल भौतिक से अधिक सूक्ष्म चेतन (है)ऽऽ जिसे न जाने बहिरात्मा ज्ञानऽऽ
अधिक सत्य जानने हेतु अतएव (तू)ऽऽ आश्रय लो अन्तरात्म ज्ञानऽऽ
स्वप्न शकुन अन्तः प्रज्ञा ज्ञानऽऽ (3)

बालकाल से भी (तुझे) हुए (अनेक) अनुभवऽऽ अन्तर्ज्ञान तो होता सत्यसिद्धऽऽ
धर्म विज्ञान व कानून राजनीतिऽऽ शुभाशुभ प्राकृतिक घटना (हुए) सत्यऽऽ
स्व-पर (के) भविष्य फल हुए सत्यऽऽ (4)

अन्तर्ज्ञान हेतु बनो सनम्र सत्यग्राहीऽऽ सरल-सहज-जिज्ञासु साम्यधारीऽऽ
निष्पक्ष निर्द्वंद्व निराकुल बनोऽऽ शांत-सजग-पावनमय बनोऽऽ
लोभ मोह-कलुषिताविहीनऽऽ (5)

तर्क अनुमान परे होता अन्तर्ज्ञानऽऽ सामान्यजन से न अनुभवगम्यऽऽ
रीति-रिवाज व कानून संविधानऽऽ लोकमत से न होता अन्तर्ज्ञानऽऽ
अन्तर्ज्ञान को मानो प्रामाणिक ज्ञानऽऽ (6)

विशेष क्षयोपशम से होता अन्तर्ज्ञानऽऽ अनुभव सहित जोड़रूप ज्ञानऽऽ
त्रिकालवर्ती पदार्थों का ज्ञान है मेधाऽऽ नये-नये उन्मेषशालिनी प्रतिभाऽऽ
इससे भी संभव परिकल्पनाऽऽ (7)

इससे भी मिल रहे तुझे अनेक लाभऽऽ शोध-बोध व लेखन प्रवचनऽऽ
आत्मसुधार आत्मनिर्णय निर्देशऽऽ भावी योजना करणीय-अकरणीयऽऽ
स्व-पर विश्व विकास उपायऽऽ (8)

इससे परे होता परमात्मा ज्ञानऽऽ जो आत्मोत्थ व अनंत ज्ञानऽऽ
उसे प्राप्ति हेतु बनो प्रयत्नवान्ऽऽ उपयोग करो इस हेतु अन्तर्ज्ञानऽऽ
'कनक' चाहे अनंत आत्मज्ञान ऽऽ (9)

सीपुर, दिनांक 27.11.2016, रात्रि 8.45 व प्रातः 6.46 व 8.35

संदर्भ-

श्रुतेन लिंगेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमधाभिधास्ये।। (3)
''एगो मे सासओ आदा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा''।। (1)

भावार्थ-यहाँ पर उस शुद्धात्मस्वरूप के प्रतिपादन की प्रतिज्ञा की गई है जिसे ग्रंथकार ने शास्त्रज्ञान से, अनुमान से और अपने चित्त को एकाग्रता से भले प्रकार जाना तथा अनुभव किया है। साथ ही, यह भी बतलाया है कि यह ग्रन्थ उन भव्य

पुरूषों को लक्ष्य करके लिखा जाता है जिन्हें कर्मो के क्षय से उत्पन्न होने वाले बाधा-रहित, निर्मल, अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करने की इच्छा है। शास्त्र से-समयसारादि जैनागम ग्रन्थों-से मालूम होता है कि आत्मा एक है, नित्य है, ज्ञानदर्शन-लक्षणवाला है (ज्ञाता-दृष्टा है) और शेष संयोग-लक्षण वाले समस्त पदार्थ मेरी आत्मा से बाह्य हैं- मैं उनका नहीं हूँ और न वे मेरे है। अनुमान से जाना जाता है कि शरीर और आत्मा जुदे-जुदे है; क्योंकि इन दोनों का लक्षण भी भिन्न-भिन्न है। जिनका लक्षण भिन्न-भिन्न होता है वे सब भिन्न होते हैं, जैसे जल और आग। इस तरह आगम और अनुमान के सहयोग के साथ चित्त की एकाग्रतापूर्वक आत्मा का जो साक्षात् अनुभव होता है वह तीसरी चीज है। इन तीनों के आधार पर ही इस ग्रन्थ के रचने की प्रतिज्ञा की गई है।

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्।। (4)

आत्मा कितने तरह का होता है, जिससे शुद्धात्मा ऐसा विशेष कहा जाता है और उन आत्मा के भेदों में किसका ग्रहण और किसका त्याग करना चाहिए? ऐसी आशंका दूर करने के लिए आत्मा के भेदों का कथन करते हैं-

भावार्थ-आत्मा की तीन अवस्थाएँ होती हैं-बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। उनमें से जब तक प्रत्येक संसारी जीव की अचेतन पुद्गल-पिंडरूप शरीरादि विनाशीक पदार्थों में आत्म-बुद्धि रहती है, या आत्मा जब तक मिथ्यात्व-अवस्था में रहता है तब तक वह 'बहिरात्मा' कहलाता है। शरीरादि में आत्म बुद्धि का त्याग एवं मिथ्यात्व का विनाश होने पर जब आत्मा सम्यग्दृष्टि हो जाता है तब उसे 'अंतरात्मा' कहते हैं। उसके तीन भेद हैं-उत्तम अंतरात्मा, मध्यम अंतरात्मा और जघन्य अंतरात्मा। अंतरंग-बहिरंग-परिग्रह का त्याग करने वाले, विषय-कषायों को जीतने वाले और शुद्ध उपयोग में लीन होने वाले तत्त्वज्ञानी योगीश्वर 'उत्तम अंतरात्मा' कहलाते हैं, देशव्रत का पालन करने वाले गृहस्थ तथा छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि 'मध्यम अंतरात्मा' कहे जाते हैं और तत्त्वश्रद्धा के साथ व्रतों को न रखने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि जीव 'जघन्य अंतरात्मा' रूप से निर्दिष्ट हैं।

आत्म गुणों के घातक ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय नामक चार घातिया कर्मों का नाश करके आत्मा की अनंत चतुष्टय रूप शक्तियों को पूर्ण विकसित करने वाले 'परमात्मा' कहलाते हैं अथवा आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था

को 'परमात्मा' कहते हैं। यदि कोई कहे कि अभव्यों में तो एक बहिरात्मावस्था ही संभव है फिर सर्व प्राणियों में आत्मा के तीन भेद कैसे बन सकते हैं? यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि अभव्य जीवों में भी अंतरात्मावस्था और परमात्मावस्था शक्ति रूप से जरूर है, परन्तु उक्त दोनों अवस्थाओं के व्यक्त होने की उनमें योग्यता नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो अभव्यों में केवल ज्ञानावरणीय कर्म का बंध व्यर्थ ठहरेगा। इसलिये चाहे निकट भव्य हो, दूरान्दूर भव्य हो अथवा अभव्य हो, सबमें तीन प्रकार का आत्मा मौजूद है। सर्वज्ञ में भी भूतप्रज्ञापन नय की अपेक्षा घृत-घट के समान बहिरात्मावस्था और अंतरात्मावस्था सिद्ध है।

आत्मा की इन तीन अवस्थाओं में से जिनकी परद्रव्य में आत्मबुद्धि रूप बहिरात्मावस्था हो रही है उनको प्रथम ही सम्यक्त्व प्राप्त कर उस विपरीताभिनिवेशमय बहिरात्मावस्था को छोड़ना चाहिए और मोक्षमार्ग की साधक अंतरात्मावस्था में स्थिर होकर आत्मा की स्वाभाविक वीतरागमयी परमात्मावस्था को व्यक्त करने का उपाय करना चाहिए।

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः।। (5)

भावार्थ–मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत तत्त्वों का जैसा स्वरूप जिनेन्द्र देव ने बताया है उसको वैसा न मानने वाला बहिरात्मा अथवा मिथ्यादृष्टि कहलाता है। दर्शन मोह के उदय से जीव में अजीव की कल्पना और अजीव में जीव की कल्पना होती है, दुखदाई राग द्वेषादिक विभाव भावों को सुखदाई समझ लिया जाता है, आत्मा के हितकारी ज्ञान वैराग्यादि पदार्थों को अहितकारी जानकर उनमें अरूचि अथवा द्वेषरूप प्रवृत्ति होती है और कर्मबंध के शुभाशुभ फलों में राग, द्वेष होने से उन्हें अच्छे-बुरे मान लिया जाता है। साथ ही इच्छाएँ बलवती होती जाती हैं, विषयों की चाहरूप दावानल में जीव दिन-रात जलता रहता है। इसीलिये आत्मा शक्ति को खो देता है और आकुलता रहित मोक्ष सुख के खोजने अथवा प्राप्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करता। इस प्रकार जाति तत्त्व और पर्याय तत्त्वों का यथार्थ परिज्ञान न रखने वाला जीव मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। चैतन्य लक्षण वाला जीव है, इससे विपरीत लक्षण वाला अजीव है, आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-द्रष्टा है, अमूर्तिक है और ये शरीरादिक परद्रव्य हैं, पुद्गल के पिंड हैं, विनाशीक हैं, जड़ हैं, मेरे नहीं हैं और न मैं इनका हूँ, ऐसा

भेदविज्ञान करने वाला सम्यग्दृष्टि 'अंतरात्मा' कहलाता है। अत्यंत विशुद्ध आत्मा को 'परमात्मा' कहते हैं, परमात्मा के दो भेद हैं-एक सकल परमात्मा और निष्कल परमात्मा। जो चार घातिया कर्ममल से रहित होकर अनंत ज्ञानादि चतुष्टय रूप अंतरंग लक्ष्मी और समवसरणादि रूप बाह्य लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं उन सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशी आत्माओं को 'सकल परमात्मा' या 'अरहंत' कहते हैं और जिन्होंने संपूर्ण कर्ममलों का नाश कर दिया है, जो लोक के अग्र भाग में स्थित हैं, निजानंद निर्भर-निजरस का पान किया करते हैं तथा अनंत काल तक आत्मोत्थ स्वाधीन निराकुल सुख का अनुभव करते हैं उन कृत-कृत्यों को 'निष्कलपरमात्मा' या 'सिद्ध' कहते हैं।

निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः।। (6)

भावार्थ-आत्मा अनंत गुणों का पिंड है। परमात्मा में उन सब गुणों के पूर्ण विकसित होने से परमात्मा के उन गुणों की अपेक्षा अनंत नाम हैं। इसी से परमात्मा को अजर, अमर, अक्षय, अरोग, अभय, अविकार, अज, अकलंक, अशंक, निरंजन, सर्वज्ञ, वीतराग, परम ज्योति, बुद्ध, आनंदकंद, शास्ता और विधाता जैसे नामों से भी उल्लेखित किया जाता है।

बहिरात्मेन्द्रियद्वारैरात्मज्ञानपराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवश्यति।। (7)

भावार्थ-मोह के उदय से बुद्धि का विपरीत परिणमन होता है। इसी कारण बहिरात्मा इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण में आने वाले बाह्य मूर्तिक पदार्थों को ही अपने मानता है। उसे अभ्यंतर आत्म तत्त्व का कुछ भी ज्ञान या प्रतिभास नहीं होता है। जिस प्रकार धतूरे का पान करने वाले पुरुष को सब पदार्थ पीले मालूम पड़ते हैं, ठीक उसी प्रकार मोह के उदय से उन्मत्त हुए जीवों को अचेतन शरीरादि पर पदार्थ भी चेतन और स्वकीय जान पड़ते हैं। इसी दृष्टि विकास से आत्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का परिज्ञान नहीं हो पाता और इसलिये यह जीवात्मा शरीर की उत्पत्ति से अपनी उत्पत्ति और शरीर के विनाश से अपना विनाश समझता है।

अन्तर्ज्ञान

-पीटर बरवॉश

मैंने छह वर्षों तक संसार भर के लीडरों का अध्ययन किया है और

उनमें से 99.9 प्रतिशत ने कहा कि अन्तर्ज्ञान तर्क से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। तर्क वह है जो आपने सीखा है। अन्तर्ज्ञान वह है जो आप हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि आप व्यावहारिक होकर तर्क व सहज बुद्धि का इस्तेमाल नहीं कर सकते, लेकिन वह पहली भावना बहुत, बहुत महत्त्वपूर्ण है।

''अपने हृदय और अन्तर्ज्ञान का अनुसरण करने का साहस रखें। क्या पता कैसे वे पहले से ही जानते हैं कि आप वाकई क्या बनना चाहते है।''

-स्टीव जॉब्स

ऐप्पल इन्कॉर्पोरेटिड के सह-संस्थापक

-मेस्टिन किप

अन्तर्ज्ञान वह बुनियादी औजार है, जिसकी जरूरत आपको अपने सपने को हकीकत में बदलने के लिए होती है। अपने अन्तर्ज्ञान पर भरोसा नहीं करेंगे, तो आप बार-बार गिरेंगे।

अन्तर्ज्ञान का ज्ञान वह कौंध है, जो जब आती है, तो बहुत प्रबल और सम्मोहक भावना के साथ आती है। यह भावना हमें अपने जीवन में होने वाली किसी चीज के साथ एक खास तरीके से जाने के लिए प्रेरित करती है। या कई बार किसी खास तरीके से न जाने के लिए। हालाँकि भावना हमेशा त्वरित और प्रबल होती है, लेकिन लोग अक्सर इस अविश्वसनीय संप्रेषण पर शंका करने और उसकी बात नकारने वाले अपने चेतन मन की आवाज को मान लेते हैं।

-माइकल ऐक्टन स्मिथ

दिल की आवाज में मेरा बहुत विश्वास है। बहुत से लोग इसे बकवास मानते हैं, क्योंकि इसके समर्थन में कोई आँकड़े नहीं होते, लेकिन मैं मानता हूँ कि वहाँ पर कुछ न कुछ तो होगा, क्योंकि हमारा अवचेतन मन हमारे चेतन मन से कहीं ज्यादा चीजें पकड़ लेता है और अवचेतन हमसे जिस तरह बोलता है, वह हमारे दिल की आवाज के जरिये होता है। जब किसी व्यक्ति या किसी स्थिति के बारे में मन में कोई भावना उत्पन्न होती है, तो उसे सुनना बहुत, बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। मेरे अनुभव में इसने फायदा नहीं पहुँचाने के मुकाबले, उससे कहीं ज्यादा बार फायदा पहुँचाया है।

हालाँकि विज्ञान अब तक यह नहीं खोज पाया है कि हमारा अन्तर्ज्ञान क्या है या यह कहाँ से आता है, लेकिन प्राचीन ग्रंथों में बताया गया है कि अन्तर्ज्ञान वह ज्ञान है, जो शाश्वत मस्तिष्क कही जाने वाली उच्चतर स्तर की

चेतना से आता है। यह ज्ञान तरंगों के जरिये हमारे अवचेतन मन तक संप्रेषित किया जाता है। तब ये तरंगें मस्तिष्क और हमारे शरीर की खास अंतःस्त्रावी ग्रंथियों तक संचारित की जाती हैं, जो उस ज्ञान की इस तरह व्याख्या करती हैं, ताकि हम समझ लें। इससे स्पष्ट हो जाता है कि जब हमें अन्तर्ज्ञान का कोई आवेग मिलता है, तो यह प्रायः हमारे पेट या दिल के आस-पास ही एहसास या आभास के रूप में क्यों आता है।

सरल भाषा में कहें, तो आपका अन्तर्ज्ञान सृष्टि के साथ संवाद है। शाश्वत मस्तिष्क अपने दृष्टिकोण से भविष्य को सटीकता से देख सकता है, इसलिए सृष्टि आपको एक खास राह पर चलने के लिए प्रेरित कर रही है। जब भी आपको संप्रेषण मिले, उस पर शंका न करें। चाहे इसके विरोध में कितने भी प्रमाण दिख रहे हों, अपने अन्तर्ज्ञान पर भरोसा करें, क्योंकि सृष्टि रास्ता जानती है।

-जॉन पॉल डिजोरिया

मैं लोगों को नौकरी पर रखते समय मुख्यतः अन्तर्ज्ञान के हिसाब से काम करता हूँ-यानि मैं उनके बारे में कैसा महसूस करता हूँ। अगर मैं किसी कारोबारी स्थिति में हूँ और मैं किसी के साथ व्यवसाय करने पर विचार करना चाहता हूँ, तो मैं अन्तर्ज्ञान की दिशा में जाता हूँ, क्योंकि आत्मा महसूस करती है।

-लेन बीचली

हम अपने अन्तर्ज्ञान के मूल्य को कम आँकते हैं। हम अपने सहज बोध पर विश्वास करने में असफल रहते हैं। मैंने अपनी कुछ सबसे बड़ी गलतियाँ तब की हैं, जब मैंने अपने अन्तर्ज्ञान की बात नहीं सुनी या अगर सुनी भी, तो मैंने उस पर सवाल किया। यह महत्त्वपूर्ण है कि आप इस पर भरोसा करना सीख लें। हो सकता है कि आपने अनजाने में ही अपने अन्तर्ज्ञान का द्वार बंद कर दिया हो, जैसा हममें से कई लोगों ने किया है, लेकिन आप अपने अन्तर्ज्ञान की योग्यताओं को दोबारा जाग्रत कर सकते हैं। हमारे अन्तर्ज्ञान का उपयोग ही इसे शक्तिशाली बनाता है। इसी कारण आप सफल लोगों को इस पर इतना ज्यादा भरोसा करते देखते हैं। उन्होंने अपने अन्तर्ज्ञान पर भरोसा किया, उन्होंने इसका अनुसरण किया, उन्होंने इस पर अमल किया और ऐसा करने पर अन्तर्ज्ञान की उनकी योग्यताएँ बहुत बढ़ गईं। ज्यादातर

सफल लोग जो भी निर्णय लेते हैं, लगभग हर निर्णय में अपने अन्तर्ज्ञान का इस्तेमाल करते हैं।

–लेअर्ड हैमिल्टन

जब भी मेरे मन में कोई सहज बोध आता है, तो मैं उस पर अमल करता हूँ। दिलचस्प बात यह है कि जब आप उस पर काम करने के बारे में सचेत होते हैं, तो आप उसमें बेहतर बन जाते हैं। दरअसल यह जीवन की एक ऐसी योग्यता है, जिसमें आप बेहतर बन सकते हैं।

अपने अन्तर्ज्ञान पर बस भरोसा करने और इसका ज्यादा बार अनुसरण करने के अलावा आपके अन्तर्ज्ञान की योग्यता बढ़ाने का एक आसान तरीका है। सवाल पूछें!

जब आप सवाल पूछते हैं, तो आपको आपके अन्तर्ज्ञान से जवाब ''मिलता'' है। आप शुरुआत में आसान सवाल पूछ सकते हैं। ऐसे सवाल, जिनके जवाब की आप तुरंत पुष्टि कर सकते हैं, जैसे, ''कोई व्यक्ति किस समय आएगा?'' या ''कोई खास व्यक्ति आज किस रंग के कपड़े पहनने वाला है?'' जब आपका फोन बजता है, तो आप नंबर देखे बिना पूछें, ''मुझे कौन फोन कर रहा है?'' कई बार आपका दिमाग जवाब देने की कोशिश करेगा, लेकिन अगर आप सवाल पूछते समय अपने दिमाग को शांत रख सकें, ताकि यह ग्रहण करने की अवस्था में रहे, तो अभ्यास के साथ फोन करने वाले व्यक्ति का नाम आपके जेहन में तुरंत कौंध जाएगा।

किसी सवाल को पूछने या किसी समाधान को माँगने में उसी प्रक्रिया का इस्तेमाल होता है, जिसके जरिये शाश्वत मस्तिष्क आप तक जवाब पहुँचाता है, बस इसकी दिशा बदल जाती है। सवाल पूछते वक्त आप अपना प्रश्न शाश्वत मस्तिष्क की ओर संचारित करते हैं। शायद अब आप समझ गए होंगे कि ऐसा कैसे होता है कि जब उद्यमी आदर्श विचार माँगते हैं जिसकी संसार को उस समय जरूरत है, तो उन्हें एक विचार मिलता है, जो अंततः ठीक वैसा ही साबित होता है, जिसकी संसार को उस वक्त जरूरत होती है!

जब आप अपने अन्तर्ज्ञान को बेहतर बनाते हैं, तो आपको खास चीजें करने की अधिक अन्तर्ज्ञानी प्रेरणाएँ मिलती रहेंगी, और जब वे सही साबित होती हैं, तो कई सफल लोगों की तरह ही आप भी अपने अन्तर्ज्ञान पर भरोसा करने लगेंगे और

जान जायेंगे कि यह आपकी सबसे शक्तिशाली योग्यताओं में से एक है।

(हीरो, रॉन्डा बर्न)

भीड़ तंत्र/(लौकिक जन) से परे मौलिक व स्वतंत्र बनूँ-।

(भीड़ मनोविज्ञान < सामाजिक विज्ञान < आध्यात्मिक ज्ञान)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा....., प्रथम तुला.....)

जिया रे! तू मौलिक-स्वतंत्र बनो! ऽऽऽ
भीड़ तंत्र का अंग न बनोऽऽऽ सत्य-समता-शांति पाओऽऽऽ...(ध्रुव)...

भीड़ में न होता मौलिक चिन्तनऽऽऽ सत्य-समता-शांति न होतेऽऽऽ
अंधानुकरण व दबाव प्रलोभनऽऽऽ दिखावा-वर्चस्व-रूढ़ि होतेऽऽऽ
प्रतिस्पर्द्धा-दीन-अहं ग्रंथिऽऽऽ जिया...(1)...

लोकानुरञ्जन व भीड़ मनोविज्ञानऽऽऽ भीड़ अनुसार वर्तन होतेऽऽऽ
सत्य-असत्य-हित-अहित केऽऽऽ यथार्थ निर्णय न होतेऽऽऽ
बाढ़/(सुनामी, वन्या) में बह जाने समऽऽऽ जिया...(2)...

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री काऽऽऽ होता भीड़ में विशेष प्रभावऽऽऽ
चमक-दमक-बाह्य-दिखावा काऽऽऽ होता है अफवाह का प्रभावऽऽऽ
तात्कालीन उत्तेजना विस्फोटऽऽऽ जिया...(3)...

बयाणवे प्रतिशत (92%) लोग भीड़ के कारणऽऽऽ
गलत को पचहत्तर प्रतिशत (75%) सही मानतेऽऽऽ
भीड़ के सहमत होने के कारणऽऽऽ अवास्तविक भी वास्तविक लगेऽऽऽ
दिमाग का कनफर्ममेटरी सही मानने सेऽऽऽ
/(विवेक सही जागृत न होने सेऽऽऽ) जिया...(4)...

भीड़ में नकलची होते हैं लोगऽऽऽ मिरर (इरर) न्यूरोन के कारणऽऽऽ
जम्भाई हँसी व डर के समानऽऽऽ नकलची होते हैं भीड़ तंत्र मेंऽऽऽ
फैशन-व्यसन-नकल समानऽऽऽ जिया...(5)...

भीड़ से तिरस्कार (या) बहिष्कार भय सेऽऽऽ लज्जा-संकोच या असहयोग सेऽऽऽ

भीड़ के अनुसार चलना होता हैऽऽऽ नहीं तो होते उक्त व्यवहारऽऽऽ
भीड़ के भागदौड़ से यथा मृत्यु तकऽऽऽ जिया...(6)...

इस कारण तीर्थंकर बुद्ध ऋषि मुनिऽऽऽ दार्शनिक वैज्ञानिक समाज सुधारकऽऽऽ
भीड़ से पृथक् होकर करते कामऽऽऽ यथा गडरिया करता भेड़ संचालनऽऽऽ
तथाहि 'कनक' मौलिक-स्वाधीन बनऽऽऽ
/(विश्व हित हेतु चिन्तन करऽऽऽ) जिया...(7)...

स्व-पर विश्व हित हेतु भावना भाओऽऽऽ सामाजिक उत्थान हेतु भावनाऽऽऽ
किन्तु सत्य-समता-शांति न त्यागोऽऽऽ आत्महित को दो प्रधानताऽऽऽ
'कनक' स्व-पर दीपक तू बनऽऽऽ जिया...(8)...

इस हेतु निस्पृह निराडम्बर बनऽऽऽ ख्याति पूजा लाभ से हो दूरऽऽऽ
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागकरऽऽऽ सामाजिक द्वन्द्व-फन्द से हो दूरऽऽऽ
'कनक' शुद्ध-बुद्ध-आनंद पूर्ण बनऽऽऽ जिया...(9)...

(यह कविता विदेशी वैज्ञानिक टी.वी. चैनलों से भी प्रभावित।)

मैं भीड़ तंत्र व सामाजिकता से परे आध्यात्मिक बनूँ-II

(भीड़ तंत्र < सामाजिकता < आध्यात्मिकता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

भीड तंत्र (व) सामाजिकता से भी परे, स्व-उपलब्धि हेतु आध्यात्मिक बनूँ।
मिथ्यात्व परे सम्यग्दर्शन सह, श्रावक परे श्रमण से सिद्ध बनूँ।।

भीड़ तंत्र सर्वथा अयोग्य होता, प्रेम-संगठन-सहयोग रिक्त।
नकल-प्रतिस्पर्द्धा-वर्चस्व होते, भेड़-भेड़ीया चाल मोह युक्त।।

अनियंत्रित भीड़ होती सुनामी सम, भूकंप से जायमान ज्वार सम।
नीति-नियम-सदाचार रहित, उद्दण्ड-उत्शृंखल उग्रता युक्त।। (1)

सामाजिकता इससे श्रेष्ठ होती, प्रेम-संगठन-सहयोग सहित।
परिवार-संगठन-दल-प्रदेश, देश-महादेश से अंतर्राष्ट्र।।

इस हेतु नीति-नियम-कानून, संविधान-रीति-रिवाज-व्यवस्था।

असि-मसि-कृषि वाणिज्य सेवा शिल्प, राजनीति-विवाह-खेल-व्यवस्था।। (2)

सामाजिकता अणुव्रत तक ही होती, आत्मिक सोपान पंचम तक ही होती।
आर्त्त-रौद्र-ध्यान तक भी होते, धर्मध्यान भी आंशिक रूप में होते।।

इसी से परे श्रमण अवस्था में, आध्यात्मिक भाव-व्यवहार अधिक होते।
महाव्रत पालन यही से होता, भीड़ तंत्र सामाजिक बंधन/(काम) परे।। (3)

समता-शांति आत्मविशुद्धि होती, विषय-कषायों से विरक्त होती।
ध्यान-अध्ययन, शोध-बोध होते, तप-त्याग-वैराग्य आदि होते।।

अपना-पराया भेद-भाव न होते, शत्रु-मित्र-भाई-बंधु कुटुम्ब न होते।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि के भाव न होते, परनिन्दा अपमान के भाव न होते।। (4)

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षादि न होती, संकल्प-विकल्प-संक्लेश नशते।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-तृष्णादि न होती, उदारता शुचिता की भावना होती।।

आत्मध्यान-चिन्तन व मनन होते, सच्चिदानंद स्वात्मतत्त्व ही भाते।
स्व-उपलब्धि ही परम उपलब्धि होती, 'कनक' इसे ही सर्वस्वमय मानते।। (5)

स्व-मैनेजमेंट के मेरे अनुभूत-सूत्र

(सफलता प्राप्त करने के मेरे अनुभूत-नियम)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

आत्म-विश्लेषण-आत्म-सुधार हेतु...कर रहा हूँ मैं स्व-संबोधन...
जिससे मैं शिक्षा-प्रेरणा लेकर...करता रहूँ आत्मकल्याण...

दीर्घकाल से मुझे अनुभव आ रहे...अनेक क्षेत्र के अनेक विध...
महान् लक्ष्य-पवित्र भाव से...प्राप्त होते हैं लाभ-विविध...(1)...

एकाग्रचित्त-दृढ़ संकल्प से...तथाहि सतत सुपुरुषार्थ से...
सही कार्य होते हिताहित विवेक से...कार्य-कारण संबंधों से...

समता-शांति-विनम्र भाव से...होते हैं कार्य धैर्य-साहस से...
कठिन काम भी सरल होते हैं...तन-मन-इन्द्रिय-आत्म-शक्ति से...(2)...

राग-द्वेष ईर्ष्या तृष्णा रहित...आकुलता-व्याकुलता-द्वन्द्व रहित...
अस्त-व्यस्त-संत्रस्त रहित...उत्तम कार्य होते क्रमबद्ध रूप...

आलस्य प्रमाद (अस्वस्थ) प्रतिस्पर्द्धा रहित...स्व-पर-विश्व कल्याण सहित...
दिखावा आडम्बर ढोंग रहित...होते उत्तम काम शंका रहित...(3)...

दीन-हीन-अहंकार रहित...भय-शोक-संकीर्ण स्वार्थ रहित...
होते उत्तम काम 'स्वाभिमान' सहित...'सोऽहं' व 'अहं' भाव सहित...

परनिन्दा अपमान प्रपञ्च रहित...परहानिकारक भाव-काम रहित...
परस्पर सहयोग सौहार्द्र सहित...दबाव वर्चस्व घृणा रहित...(4)...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि रहित...सरल सहज भाव सहित...
सहयोगी जनों को श्रेय देकर...स्वयं निस्पृह आकिञ्चन्य सहित...

दूरदृष्टि सम्पन्न योजना सहित...सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव सहित...
हीनयोग-अतियोग-मिथ्यायोग रहित...सम्यक् साधन सहित...(5)...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहित...संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित...
दबाव-प्रलोभन-अंधानुकरण रिक्त...सनम्र सत्याग्रह सहित...

आत्मविश्वास-अनुभव सहित...दोष से शिक्षा ले काम करने पर...
होते उत्तम काम कौन क्या कहते...क्या मानते की चिन्ता छोड़ने पर...(6)...

नवीन-नवीन ज्ञानार्जन से...अन्य से भी शिक्षा-प्रेरणा लेकर...
काम से शिक्षा व सुधार करने से...काम होते हैं उत्तमतर...

गुणग्राही व कृतज्ञ बनकर...श्रेष्ठतम की ही कल्पना कर...
हानि-लाभ-मान-अपमान में...समता रख शिक्षा लेने पर...(7)...

पुण्य भाव पुण्य कर्म से गुणी...गुरुजनों के मार्गदर्शन से...
उत्तम काम होते यथायोग्य...समय पर साध्य-साधन से...

एकांत मौन अनेकांत दृष्टि से...हित मित प्रिय वचन से...
उदार-व्यापक-समन्वय दृष्टि से...प्रतिप्रश्न सह शिक्षा पद्धति से...(8)...

स्व-पर-प्रोत्साहन व सम्मान से...सुकार्य हेतु अनुमोदना से...
सुगुणी-दुर्गुणी से शिक्षा लेकर...सुकार्य करता हूँ अनुभव से...

महापुरुषों के आदर्श जीवन से...शिक्षा व प्रेरणा प्राप्त करके...
कार्य संपादन होते सम्यक् रूप से...'कनक' काव्य रचा अनुभव से...(9)...

मेरे सकारात्मक भावों का स्मरण-आह्वान-संवर्द्धन

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जिन्दगी इक सफर....., सायोनारा.....)

भाव मेरा है कितना प्यारा...सभी जीव प्रति दयालु वाला...
आत्म तत्त्व को ही चाहने वाला...सत्य-असत्य को जानने वाला...(ध्रुव)...

आत्महित को चाहने वाला...सभी अहित त्यागने वाला...
गुण-गुणी प्रशंसा वाला...परनिन्दा न करने वाला...

शोध-बोध करने वाला...अंधानुकरण न करने वाला...
क्रोध-मान-माया-लोभ रिक्त...सरल-सहज-समता वाला...भाव...(1)...

ख्याति पूजा लाभ आसक्ति रिक्त...निस्पृह-निराडम्बर-शांति युक्त...
ध्यान-अध्ययन-मनन युक्त...लेखन-पठन-चिन्तन युक्त...

मैत्री प्रमोद कारुण्य युक्त...परोपकार व सेवा सहित...
अपना-पराया भेद रहित...वैश्विक शांति कल्याण युक्त...भाव...(2)...

अक्षमा भाव रहित चित्त...सोलह कारण भावना युक्त...
द्वादश अनुप्रेक्षा चिन्तन युक्त...दशलक्षण धर्म संयुक्त...

दीन-हीन-अहङ्कार रहित...स्वाभिमान-सोऽहं युक्त...
आकर्षण-विकर्षण-द्वंद्व रिक्त...संकल्प-विकल्प-संक्लेश रिक्त...भाव...(3)...

निश्चिन्त-निराकुल-निर्मल युक्त...एकाग्रता व धैर्य सहित...
वाद-विवाद-कलह रहित...ईर्ष्या घृणा तृष्णा से रिक्त...

स्व-प्रतिस्पर्द्धा-संवर्द्धन युक्त...पर-प्रतिस्पर्द्धा मात्सर्य रिक्त...
आत्मकल्याण प्रधानता युक्त...पर कल्याण-भावना सहित...भाव...(4)...

सेवा-दान करते जो भक्ति सहित...उनकी प्रशंसा व आशीष युक्त...
जो सेवा-दान आदि से रहित...उनकी घृणा व निन्दा रहित...

स्व-संघ हेतु भी जो करे सेवा-दान...उन्हें आशीष व प्रशंसा युक्त...

दबाव-प्रलोभन-याचना रिक्त...बोली-चन्दा-चिट्ठा आदि रहित...भाव...(5)...

स्व-गुण प्रशंसा व सेवा-दान से...स्व-गुण बढ़ते व गर्व घटते...
निस्पृह निराडम्बर साम्य बढ़ते...ख्याति-पूजा-लाभ से दूर रहते...

सुगुण स्मरण से सुगुण बढ़ते...इस हेतु पूजा आदि ध्यान करते...
आध्यात्मिक विकास (इससे) होता...आत्म विश्लेषण रचनात्मक होते...भाव...(6)...

प्रोत्साहन अनुमोदन गुण युक्त...कृतज्ञता-परोपकार गुण सहित...
सुनियोजित लापरवाही गुण युक्त...एकला चलने की दक्षता सहित...

उक्त कारणों से हो रहा सहज...देश-विदेशों में धर्म-प्रचार...
सुभाव बढ़ा रहे है 'कनक'...होकर निस्पृह व अकिञ्चित्कर...भाव...(7)...

आत्मविशुद्धि-अनुभव सहित...श्रद्धा-प्रज्ञा व आचरण युक्त...
अन्तर्ज्ञान से प्रेरणा सहित...विभाव भाव निर्मूलन युक्त...

स्व-शुद्धात्म भाव हेतु कारणभूत...तव स्मरण अतः करूँ सतत...
आह्वान-सम्वर्द्धन करूँ सतत...शुद्ध-बुद्ध-आनंद (भाव) निमित्त...भाव...(8)...

अशुभ भाव त्याग हेतु (तू) निमित्त...शुभ से शुद्ध बनूँ लक्ष्य सहित...
इसी हेतु ही मैं साधनारत...'कनक' चाहे स्व-स्वभाव सतत...भाव...(9)...

सीपुर, दिनांक 29.11.2016, रात्रि 1.25 से 2.24 व प्रातः 6.33

मेरे लिए आत्मकल्याण ही सर्वकल्याण अन्य सभी आनुसंगिक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू आत्मकल्याण करऽऽ
आत्मकल्याण से (होता) सर्वकल्याणऽऽ अन्य सभी विकल्प छोड़ोऽऽ...(ध्रुव)...

तीर्थंकर तक आत्मकल्याण हेतुऽऽ त्यागते समस्त विकल्पऽऽ
मुनि अवस्था में उपदेश भी न करतेऽऽ ऋद्धिओं का न उपयोगऽऽ
केवल ज्ञान हेतु (करते) पुरुषार्थऽऽ...जिया रे...(1)...

तेरे पास नहीं अवधिज्ञान भीऽऽ एक भी ऋद्धि नहींऽऽ
तुम तो तीर्थंकर मुनि से हो पीछेऽऽ तुम्हें करना है अधिक पुरुषार्थऽऽ
वृथा न कर समयशक्ति नष्टऽऽ...जिया रे...(2)...

गृहस्थ संबंधी त्यागो सभी ही कार्यऽऽ विषय-आशावशातीतऽऽ
ज्ञानध्यान व तप में हो रतऽऽ ख्याति पूजा लाभ से विरक्तऽऽ
संकीर्ण कट्टर पंथमत से हो विरक्तऽऽ...जिया रे...(3)...

जिस कार्य से भी होता है संक्लेशऽऽ होता राग द्वेष मोह विद्वेषऽऽ
परावलंबन व पर अपेक्षा युक्तऽऽ उन कामों से हो तू विरक्तऽऽ
तू संकल्प-विकल्प द्वंद्वातीतऽऽ...जिया रे...(4)...

धन-जन मान-सम्मान सहितऽऽ समता-शांति-निस्पृहता युक्तऽऽ
अनेकान्त व आत्मविशुद्धि युक्तऽऽ शोध-बोध अनुभव युक्तऽऽ
आत्म प्रगति में हो दत्तचित्तऽऽ...जिया रे...(5)...

अन्य के कारण तू न करो आत्मपतनऽऽ अन्य के अनुसार न कामऽऽ
परनिन्दा अपमान अहित त्यागकरऽऽ स्व-पर विश्वकल्याण विचारऽऽ
'कनक' बनो शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽ...जिया रे...(6)...

सीपुर, दिनांक 02.12.2016, प्रातः 7.00

गुण कथन करूँ दोष कथन में मौन धरूँ

(प्रशंसा से मिलती है प्रसन्नता व अच्छे कार्य हेतु प्रोत्साहन)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

कारिका अंश- सद्वृत्तानां गुण-गणकथा दोष वादेच मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्म तत्त्वे।। (समाधि)

जिया रे! (तू) गुण-गुणी प्रशंसा करऽऽ
दोष कथन में मौन रहोऽऽ प्रिय हित वचन बोलोऽऽ
(आत्मतत्त्व भावना करऽऽऽऽ)...(ध्रुव)...

यह हे तेरी इष्ट प्रार्थना भीऽऽ समाधि भक्ति-प्रिय भक्ति भीऽऽ

सर्वज्ञ देव की आज्ञा भी यह हैऽऽ भावना स्व-पर उपकार कीऽऽ
भावना विश्व कल्याण कीऽऽ...जिया रे...(1)...

इससे संवर निर्जरा भी होतीऽऽ बंधती न पाप प्रकृतिऽऽ
आत्मविशुद्धि शांति मिलतीऽऽ परनिन्दा चिन्ता न होतीऽऽ
स्व-पर को न मिले अशांतिऽऽ...जिया रे...(2)...

अनादि काल से हर जीव भीऽऽ अज्ञान मोहादि दोष सहितऽऽ
तू भी अनादि से रहा है दोषीऽऽ अभी भी न बना पूर्ण निर्दोषऽऽ
स्वयं को निर्दोष बनाओऽऽ/(परदोष कथन से दोषी न बनोऽऽ)...जिया रे...(3)...

प्रिय-हित वचन सभी से बोलोऽऽ जिससे हो स्व-पर-उपकारऽऽ
इससे स्वयं भी प्रसन्न रहोगेऽऽ अन्य भी होंगे शांत-प्रसन्नऽऽ
स्व-दोष को करके निवारणऽऽ...जिया रे...(4)...

दोष निवारण व उपकार हेतु हीऽऽ स्व-शिष्य-भक्तिों को कहो दोषऽऽ
उपगूहन स्थितिकरण वात्सल्य सहऽऽ प्रभावना अंग परिपूर्णऽऽ
कहो हितकारी गुरु सम वचनऽऽ/(अन्यथा लगेगा दोष निदानऽऽ)...जिया रे...(5)...

देवशास्त्र गुरु गुणगुणी निन्दा सेऽऽ होता है सम्यक्त्व विनाशऽऽ
चारों ही घाती व असाता बंधतेऽऽ होता संसार परिभ्रमणऽऽ
अनंतानंत दुःख की खानऽऽ...जिया रे...(6)...

(गुण) प्रशंसा से होता मस्तिष्क प्रभावितऽऽ स्ट्रियाटम मस्तिष्क का भागऽऽ
उत्तम कार्य हेतु होता प्रोत्साहितऽऽ प्रशंसा से मिलती प्रसन्नताऽऽ
जिससे कुगुण भी होते ह्रासऽऽ/(अनुभवगम्य भी यह सत्यऽऽ)...जिया रे...(7)...

दोष व दोषी को (भी) न मानो उत्तमऽऽ तथापि न करो निन्दा-अपमानऽऽ
अधमाधमा परचिन्ता को त्यागोऽऽ करो स्वात्म चिन्ता ही उत्तमाऽऽ
'कनक' बनो विशुद्ध परमात्माऽऽ...जिया रे...(8)...

सीपुर, दिनांक 03.12.2016, प्रातः 6.51

संदर्भ-

पैसे जितनी खुशी तारीफ से

-श्रद्धा बेरवंशी

किसी भी रूप में पैसे आये तो हमें खुशी होती है, पर क्या आप जानते हैं कि इतना ही खुश व्यक्ति तब भी होता है जब उसे तारीफ मिलती है! शायद इस बात पर कभी ध्यान न गया हो, पर हाल ही में जापान के नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर फिजियोलॉजिकल साइंसेज के शोध ने बताया कि व्यक्ति को जितनी खुशी पैसे मिलते समय होती है, उतनी वह अपनी तारीफ के समय भी महसूस करता है। अध्ययन में बताया गया कि तारीफ व पैसे मिलने के दौरान **मस्तिष्क के स्ट्रियाटम** नामक हिस्से पर प्रभाव पड़ता है, जिसके चलते अगली बार व्यक्ति बेहतर कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। इसीलिए शोधार्थी कहते हैं कि शिक्षक बच्चों की व कंपनी के मालिक अपने कर्मचारियों की तारीफ करके उन्हें आसानी से बेहतर कार्य के लिए प्रेरित कर सकते हैं। यह शोध ओपन एसेस जर्नल पीएलओएस वन में प्रकाशित हुआ है।

ऐसे सुधरता है काम

अच्छे काम के लिए खुद से बात अहम

एक अध्ययन से यह बात सामने आई है कि कैसे एक तरीका किसी के परफॉर्मेंस के स्तर को ऊँचा उठा सकता है। यह तरीका है-पॉजिटिव सेल्फ टॉक। अध्ययन में शामिल लोगों को काम करने के तीन तरीके बताये गये। पहला तरीका था-खुद को काम में सफल होता देखें (इमेजनरी आउटकम)। दूसरा तरीका था-खुद से बात करें (सेल्फ टॉक)। इसमें किसी काम को खुद से बात करते हुए अंजाम देना था। तीसरा तरीका था-सफलता की प्लानिंग (इमेजनरी प्रोसेस) करें। बाद में इन सभी लोगों को उनके काम, काम करने के तरीके, परिणाम और भावनाओं को नियंत्रित रखने के स्तर पर परखा गया। रिसर्च में पता चला कि जो लोग खुद से बात करते हुए काम को अंजाम दे रहे थे, उन्होंने ज्यादा सफलता हासिल की। इसमें भी जो खुद से यह कह रहे थे कि-'मैं अपने बेस्ट स्कोर को बीट कर सकता हूँ', उन्हें सबसे ज्यादा सफलता मिली। दूसरे स्तर पर वो लोग सफल रहे जो खुद से कह रहे थे कि 'इस बार पहले से तेजी से काम करूँगा।' इसके बाद तीसरे और चौथे नंबर

पर वो लोग रहे, जिन्होंने इमेजनरी आउटकम और इमेजनरी प्रोसेस के तरीके को अपनाया। फ्रंटियर्स सायाकोलॉजी में प्रकाशित इस स्टडी में 44742 लोगों को शामिल किया गया। इनकी उम्र 16 से 92 वर्ष के बीच थी।

दूर करे नेगेटिविटि

आज की इस भागदौड़ भरी जिन्दगी में जहाँ किसी को अपने बारे में भी सोचना की फुर्सत नहीं, ऐसे में बार-बार यह सोचना कि लोग हमारे बारे में क्या सोचते होंगे, नकारात्मकता की ओर ले जाता है। कई बार सोच का यह नजरिया हमारे सकारात्मक विचारों को भी नकारात्मकता की तरफ मोड़ देता है, लेकिन व्यवहार में बदलाव और सकारात्मक सोच अपनाकर इससे बचा जा सकता है। दुष्प्रभाव हैं कई-लगातार नकारात्मक सोचते रहने से चिंता, परेशानी, चिड़चिड़ापन, रिश्तों में कड़वाहट और जीवन से निराशा जैसी समस्याएँ होने लगती हैं। इसी तरह तनाव में रहने की वजह से कई शारीरिक बीमारियाँ जैसे ब्लड प्रेशर, डायबिटीज, हृदय संबंधी रोग, थकान और नींद न आने की समस्या आदि होने लगती हैं। इस तरह बदलाव लाये।

1. किसी भी व्यक्ति या चीज के बारे में अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले विचार जरूर करे जैसे यह इतना बुरा नहीं है, जितना मैं सोच रहा हूँ। 2. कुछ नहीं से कुछ ज्यादा बेहतर है। 3. हमेशा खुद को दोष देने से अच्छा है कि सोचने का नजरिया बदल लिया जाये, जिससे सारे काम आसान हो जायेंगे। 4. लंबी गहरी साँस ले और रिलेक्स होने की कोशिश करें। 5. कैसी भी परिस्थिति हो, उसके साथ तालमेल बिठाने का प्रयास करें। 6. खुद को व्यस्त रखने की कोशिश करें। पसंदीदा कामों में मन लगाये। 7. लोगों से मिले, उनकी जगह खुद को रखकर व्यवहार को संतुलित रखें। 8. जब भी कुछ बढ़िया करे तो खुद की पीठ थपथपायें।

कारण जानना भी अहम

आलोचनाओं का सामना करने के तीन तरीके

आमतौर पर आलोचना के तीन कारण होते हैं। एक होता है-कंस्ट्रक्टिव फीडबैक। ये उन लोगों की तरफ से आता है जो आपको जानते हैं और आपका हित

चाहते हैं व बताते हैं कि क्या गलतियाँ हो रही हैं। ऐसे लोगों से खुलकर बात की जा सकती है और यह भी पूछा जा सकता है कि सुधार का कोई सुझाव है क्या। दूसरी आलोचना होती है-ईर्ष्या के कारण। जब आप कुछ बड़ा कर रहे होते हैं तो कई लोगों को यह बर्दाश्त नहीं होता। वे बेवजह कमियाँ निकालते हैं, आलोचना करते हैं। इनसे निपटने का बेहतर तरीका है-इनसे बात करने से बचना। लेकिन कई बार ये परिवार के सदस्य होते हैं या दफ्तर में आपके साथी। ऐसे में उन्हें पूरी तरह नजरअंदाज करना संभव नहीं होता। जब भी ये लोग आलोचना की कोशिश करे तो आप विषय बदल दीजिए। फिर भी अगर सुनना ही पड़े तो इसे बहुत गंभीरता से लेने की जरूरत नहीं है। तीसरी तरह की आलोचना उन लोगों की तरफ से आती है जो ना आपके शुभचिंतक होते हैं और ना ही तरक्की से जलते हैं। इनका काम होता है आलोचना करना। इन्हें इसमें आनंद आता है। ये आपसे बहस करना चाहते हैं। इसलिए इनसे बात करते समय सतर्क रहना जरूरी है। जब ये आलोचना कर रहे हों तो आप इनसे सहमत हो जाइये। इनकी आलोचना के जवाब में आप कह सकते हैं-हाँ आपका पॉइंट तो सही है। क्योंकि इनका आप कुछ नहीं कर सकते।

आडम्बर और सच्ची भक्ति

बहुत पुरानी बात है। चीन में एक बौद्ध भिक्षुणी रहती थी। उसके पास गौतम बुद्ध की एक सोने की मूर्ति थी जिसकी वह दिन-रात पूजा करती थी। जब चीन में महाबुद्ध उत्सव की शुरुआत हुई तो वहाँ कई लोग आये। भिक्षुणी भी बुद्ध की मूर्ति लेकर पहुँची। बौद्ध भिक्षुणी चाहती थी कि वह जो सामग्री अपने साथ लाई है उससे सिर्फ उसकी बुद्ध प्रतिमा की ही पूजा हो। उसने सोचा कि यदि मैं अपना धूप-दीप सबके सामने जलाऊँगी तो बाकी प्रतिमाएँ भी उसकी सुगंध ले लेंगी। ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए उस भिक्षुणी ने बाँस की एक पोंगली को स्वर्ण प्रतिमा के साथ सटाकर अपने धूप का धुआँ रोक दिया।

थोड़ी देर में धुएँ के कारण स्वर्ण निर्मित प्रतिमा का मुँह काला हो गया। मुखाकृति काली होने के कारण दर्शकों को बौद्ध प्रतिमा कुरूप लगने लगी। ऐसी प्रतिमा लाने के लिए भिक्षुणी की आलोचना होने लगी। ऐसा सुनकर वह खिन्न हो उठी। भिक्षुणी ने आयोजकों से शिकायत की। जब जाँच-पड़ताल हुई तो पाया गया कि

संकीर्णता एवं प्रदर्शन वृत्ति सच्ची भक्ति पर भारी थी। लोगों ने भिक्षुणी को समझाया कि जीवन के फैलाव की प्रगति ही पहला कदम है। जो लोग इस तथ्य को नहीं समझते वे निंदा एवं आलोचना के पात्र बन जाते हैं। इससे बचना चाहिए।

सुवचन प्रशंसा कुवचन निन्दा

जाग्रत्वं सौमनस्यं च कुर्यात्सद्वागलं परः।

अजलाशयसम्भूतममृतं हि सतां वचः।। (1) (सर्वोपयोगिश्लोक संग्रह, पृ. 410)

समीचीन वचन जागृति और सुजनता को करता है अथवा और जाने दो, वास्तव में सज्जनों का वचन बिना समुद्र से उत्पन्न हुआ अमृत है।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति मानवाः।

तस्मात् तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।। (2)

प्रिय वचन बोलने से सब मनुष्य संतुष्ट होते हैं, अतः वह बोलना चाहिए। वचन में दरिद्रता क्या है?

यन्नेन्दु किरणैः स्पृष्ट मनालीढं खेः करैः।

तत् त्वया हेलयोदस्तमन्तर्ध्वान्तं वचोऽशुभिः।। (3)

जो अंदर का तिमिर चन्द्रमा की किरणों से नहीं छुवा गया और न सूर्य की किरणों से व्याप्त हुआ, उसे तुमने वचनरूपी किरणों से अनायास ही नष्ट कर दिया।

तव वाक्प्रसरो दिव्यो विधुन्वन् जगतां तमः।

प्रकाशयति सन्मार्गं रवेरिव करोत्करः।। (4)

जगत् के अज्ञान तिमिर को दूर करता हुआ तुम्हारा दिव्य वचनों का समूह सूर्य के किरण-समूह के समान सन्मार्ग-समीचीन मार्ग (पक्ष में) आकाश को प्रकाशित करता है।

वाङ्माधुर्यात् सर्वलोक प्रियत्वं, वाक्पारुष्यात्स्वोपकारोऽपि नष्टः।

क्रिंतद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं, किं वा लोके गर्दभेनापनीतम्।। (5)

वचन की मधुरता से सब लोगों को प्रेम प्राप्त होता है और वचनों की कठोरता से किया हुआ अपना उपकार भी नष्ट हो जाता है। कोयल ने लोक में क्या दे दिया और गधे ने क्या छीन लिया? अपनी वाणी से ही वे प्रियता और अप्रियता को प्राप्त होते हैं।

वचस्तत्र प्रयोक्तव्यं यत्रोक्ते लभते फलम्।

स्थायी भवति चात्यन्तं रागः शुक्लपटे यथा।। (6)

वचन का प्रयोग वही करना चाहिए जहाँ वह फल को प्राप्त होता हो। जैसे रङ्ग सफेद वस्त्र पर ही स्थायी होता है।

हेतुयुक्तं च पथ्यं च सत्यं साधुजन प्रियम्।

यो हि वक्तुं न जानाति स जिह्वां किं न रक्षति।। (7)

जो हेतु सहित, हितकारी, सत्य और साधुजनों को प्रिय वचन कहना नहीं जानता, वह अपनी जिह्वा की रक्षा क्यों नहीं करता? चुप क्यों नहीं रहता?

एकापि कला सकलाः वचनकला किं कलाभिरन्याभिः।

वरमेका कामगवी जरद्गवां किं सहस्त्रेण।। (8)

एक वचन कला ही सब कला है, अन्य कलाओं से क्या प्रयोजन है। एक कामधेनु का होना अच्छा है, हजारों वृद्ध गायों से क्या प्रयोजन है।

किं किं नोपकृतं तेन किं दत्तं महात्मना।

प्रियं प्रसन्नवक्त्रेण प्रथमं येन भाषितम्।। (9)

जिस महात्मा ने प्रसन्न मुख होकर एक बार प्रिय भाषण कर लिया, उसने क्या-क्या उपकार नहीं किया और क्या-क्या नहीं दिया?

लक्ष्मीर्वसति जिह्वाग्रे जिह्वाग्रे मित्र बन्धवाः।

जिह्वाग्रे बन्धनं मृत्यु जिह्वाग्रे परमं पदम्।। (10)

जिह्वा के अग्रभाग में लक्ष्मी बसती है, जिह्वा के अग्रभाग में मित्र तथा बंधुजन बसते हैं, बंधन और मृत्यु भी जिह्वा के अग्रभाग में बसते हैं तथा उत्तम पद भी जिह्वा के अग्रभाग में निवास करता है। तात्पर्य यह है कि जिह्वा से मधुर वचन कहने पर उपर्युक्त पदार्थों की उपलब्धि होती है।

हितं मितं क्रियायुक्तं सर्वसत्त्व सुखावहम्।

मधुरं वत्सलं वाक्यं वक्तव्यं धर्मवत्सलैः।। (11)

धर्मस्नेही मनुष्यों को हित, मित, क्रिया सहित, सब जीवों को सुखोत्पादक, मधुर और स्नेहपूर्ण वाक्य बोलने चाहिए।

सत्यं हितं मितं तथ्यं वध बन्धादि दूरगम्।

वक्तव्यं व्रतिभिर्नित्यं मधुरं धर्मसूचकम्।। (12)

व्रती मनुष्यों को सदा सत्य, हित, मित, तथ्य ज्यों का त्यों, वध बंधन आदि से दूर, मधुर और धर्मसूचक वचन बोलना चाहिए।

जिनेश्वर मुखोत्पन्नं वाक्यं स्वर्गापवर्गदम्।
मिथ्यात्वकन्दसंछेत्तृ श्रूयतां भो हितैषिणः।। (13)

जो हित की इच्छा करने वाले भव्यजनों! तुम्हें वही वचन सुनना चाहिए जो जिनेन्द्र के मुख से उत्पन्न हो, स्वर्ग और मोक्ष को देने वाला हो तथा मिथ्यात्व रूपी कंद को छिन्न-भिन्न करने वाला हो।

यतः क्वचिच्चलेद् दैवान्मन्दरो वा धरातलम्।
न पुनर्देशकालेऽपि मुनीनां वचनावली।। (14)

क्योंकि कदाचित् दैववश मेरू और पृथ्वी विचलित हो जावे परन्तु किसी भी देश और किसी भी काल में मुनियों की वचनावली विचलित नहीं होती।

उदारं विकथोन्मुक्तं गम्भीर मुचितं स्थिरम्।
अपराधोज्झितं लोकमर्मस्पर्शि सदा वदेत्।। (15)

निरन्तर उदार, विकथाओं से रहित, गंभीर, उचित, स्थिर, अपराध से शून्य एवं लोकों के मर्म का स्पर्श करने वाला वचन सदा बोलना चाहिए।

विमर्शपूर्वकं स्वास्थ्यं स्थापकं हेतु संयुतम्।
स्तोकं कार्यकरं स्वादु निर्गर्वं निपुणं वदेत्।। (16)

विद्वानों को विचारपूर्वक, स्वास्थ्यवर्धक, निर्णायक, हेतु सहित, अल्प, कार्यकारी, मधुर, गर्वरहित और चातुर्यपूर्ण वचन बोलना चाहिए।

दुर्वाक्यं नैव यो ब्रूयादत्यर्थं कुपितोऽपि सन्।
स महत्त्वमवाप्नोति समस्ते धरणीतले।। (17)

जो अत्यंत कुपित होने पर भी दुर्वचन नहीं बोलता है, वह समस्त पृथ्वी तल में महत्त्व को प्राप्त होता है।

कर्कशं निष्ठूरं निन्द्यं पापदं दुःखकारणम्।
हिंसादिकरमन्यच्च न वक्तव्यं विवेकिभिः।। (18)

विवेकवान् जीवों को कर्कश, निर्दयतापूर्ण, निन्दनीय, पाप को देने वाले, दुःख के कारण, हिंसादि को करने वाले तथा इसी प्रकार के अन्य वचन नहीं कहने चाहिए।

स्वश्लाघा परनिन्दा च मत्सरो महतां गणे।

असम्बद्ध प्रलापित्वमात्मानं पातयन्त्यधः।। (19)

अपनी प्रशंसा, पर की निन्दा, महापुरुषों के समूह में ईर्ष्या और असम्बद्ध प्रकरण-विरुद्ध बहुत बोलना, ये कार्य अपने आपको नीचे गिरा देते हैं।

प्रायश्चित्तं च वैद्यं च ज्योतिष्कं धर्मनिर्णयम्।

विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्।। (20)

जो मनुष्य प्रायश्चित्त, आयुर्वेद, ज्योतिष और धर्मनिर्णय की बात शास्त्र के बिना कहता है, उसे ब्रह्मघाती कहते है।

अप्राप्तकालवचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।

प्राप्नुयाद् बुद्धयवज्ञानमपमानं च शाश्वतम्।। (21)

अवसर के बिना बोलता हुआ बृहस्पति भी बुद्धि की अवज्ञा और स्थायी अनादर को प्राप्त होता है।

अपि दावानलप्लुष्टं शाड्वलं जायते वनम्।

न लोकः सुचिरेणापि जिह्वानलकदर्थितः।। (22)

दावानल से जला हुआ भी वन हरा-भरा हो जाता है परन्तु जिह्वा रूपी अग्नि से पीड़ित मनुष्य चिरकाल में भी हरा-भरा-प्रसन्नचित्त नहीं होता।

सर्वलोकप्रिय तथ्ये प्रसन्ने ललिताक्षरे।

वाक्ये सत्यपि किं ब्रूते निकृष्टं परुषं वचः।। (23)

सब लोगों को प्रिय, यथार्थ, सरल और सुंदर अक्षरों वाले वाक्य के रहते हुए भी मनुष्य निकृष्ट वचन क्यों बोलता है?

मौन प्रशंसा

मुनेः कर्म सुधर्मोपदेशनारचितं वचः।

भावः शुद्धात्मध्यानं हि मौनं मुनिभिरीरितम्।। (1)

(सर्वोपयोगिश्लोक संग्रह, पृ. 428)

'मुनेर्भावः कर्म वा मौनं' इस व्युत्पत्ति के अनुसार मुनि के भाव अथवा कर्म को मौन कहते हैं। मुनि का भाव क्या है? शुद्धात्मा का ध्यान करना और कर्म क्या है? समीचीन धर्म के उपदेश के लिए रचित-वचनों-जिनागम का स्वाध्याय करना। मुनियों ने इसे ही मौन कहा है।

महान् विचार व कल्पना अयोग्य हेतु अकथनीय

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न....., सायोनारा.....)

जिया रे! एकांत (मौन) साधना करऽऽ
स्व-परहित की भावना करऽऽ गुप्त रहस्य/(भावी कल्पना) सभी को न बोलऽऽ..(ध्रुव)...

सभी न समझते हैं गुप्त/(सूक्ष्म, गूढ़) रहस्यऽऽ मानेंगे असंभव या गलतऽऽ
तुझे भी बोलेंगे घमण्डी व बड़बोलाऽऽ उत्पन्न (भी) कर सकते विघ्न बहुलऽऽ
हतोत्साह व निन्दा भी संभवऽऽ...जिया रे...(1)...

विघ्न संतोषी होते वे अज्ञजनऽऽ संकीर्ण स्वार्थी व दीन-हीनऽऽ
अनुदार व कल्पनाशील शून्यऽऽ ईर्ष्या-घृणा-मूढ़तापूर्णऽऽ
श्रद्धा-प्रज्ञा-गुण विहीनऽऽ...जिया रे...(2)...

उन्हें समझाने व मनाने के लिएऽऽ न करणीय वृथा पुरुषार्थऽऽ
संकल्प-विकल्प व संक्लेश होंगेऽऽ वाद-विवाद-कलह-तनावऽऽ
समता-शांति-साधना में विघ्नऽऽ...जिया रे...(3)...

दैवात् यदि कोई मिले ऐसा जनऽऽ उनसे भी करो शिक्षा ग्रहणऽऽ
अग्नि यथा होती घर्षण से उत्पन्नऽऽ (तथा) करो शोध-बोध-प्रयाणऽऽ
महापुरुष सम बन गतिमानऽऽ...जिया रे...(4)...

सिद्धांत ग्रंथ व प्रायश्चित्त ग्रंथऽऽ राष्ट्रीय सुरक्षा-मंत्र-मंत्रणाऽऽ
न कथनीय कभी अयोग्य जन कोऽऽ छिद्राणुवेशी निन्दक शत्रु विभेदकऽऽ
ऽऽ...जिया रे...(5)...

अनेक दार्शनिक वैज्ञानिक संतऽऽ शोध-बोध-लेखक-चिंतकऽऽ
समाज सुधारक पुरोगामी लोगऽऽ होते रहते अपमानित दंडितऽऽ
देश-विदेशों में होता सततऽऽ...जिया रे...(6)...

उदार गुणग्राही प्रोत्साहक ज्ञानीऽऽ अनुभवी जो कल्पनाशीलऽऽ
उन्हें भले कहो मार्गदर्शन हेतुऽऽ अयोग्य को न कहो उपकार हेतु भीऽऽ
कार्यसिद्धि से ज्ञान हो अन्य कोऽऽ...जिया रे...(7)...

अन्य की कल्पना व महान् विचारऽऽ तुझे लगते प्रिय व आकर्षकऽऽ

उससे प्रेरणा व उत्साह मिलतेऽऽ शोध-बोध आचरण करऽऽ
'कनक' साधना से साध्य को वरऽऽ...जिया रे...(8)...

सीपुर, दिनांक 03.12.2016, रात्रि 9.00

संदर्भ-

जले तैलं खले गृह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः।। (486) स.कौ.

जल में पड़ा हुआ थोड़ा सा तेल, दुर्जन को प्राप्त हुआ छोटा-सा गुप्त समाचार, पात्र में दिया हुआ थोड़ा-सा दान और बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त हुआ अल्प शास्त्र वस्तु स्वभाव के कारण स्वयंमेव विस्तार को प्राप्त हो जाता है।

अनृत पटुता चौर्य बुद्धिः सतामप्यपमानता।
मतिरविनये धर्म्मे साढ्यं गुरुष्वपि वञ्चना।।
ललित मधुरा वाक् प्रत्यक्षे परोक्षविधातिनी।
कलियुग-महाराजस्यैताः स्फुरन्ति विभूतयः।। (271)

असत्य बोलने में चतुराई, चोरी में बुद्धि, सत्पुरुषों का भी अपमान करना, अविनय में बुद्धि रखना, धर्म के विरुद्ध चलना, गुरुओं से छल करना, सामने सुंदर और मीठी बात करना तथा पीछे विघात करना, ये सब कलियुग रूपी महाराज की विभूतियाँ हैं।

यो भाषते दोषमविद्यमानं सतां गुणानां ग्रहणे च मूकः।
स पापभाक् स्यात् स विनिन्दकश्च यशोवधः प्राणवधाद् गरीयान्।। (285)

जो अविधमान दोष को कहता है तथा विद्यमान गुणों को ग्रहण करने में मूक रहता है वह पापी है और निंदक है। यश का वध करना प्राणों के वध से बड़ा है।

वाक्यं जल्पति कोमलं सुखकरं कृत्यं करोत्यन्यथा,
वक्रत्वं न जहाति जातु मनसा सर्पो यथा दुष्टधीः।
नो भूतिं सहते परस्य न गुणं जानाति कोपाकुलो,
यस्तं लोकविनिन्दितं खलजनं को वा सुधीः सेवते।। (286)

जो सुख उत्पन्न करने वाले मीठे वचन बोलता है परन्तु कार्य इससे विपरीत करता है। जो दुर्बुद्धि से युक्त हो साँप के समान मन से कभी कुटिलता को नहीं

छोड़ता है, जो क्रोध से आकुलित हो दूसरे की विभूति को सहन नहीं करता है और न उनके गुण को जानता है उस लोक निन्दित दुर्जन की कौन बुद्धिमान् सेवा करता है? अर्थात् कोई नहीं।

लेअर्ड हैमिल्टन–मना करने वाले हमेशा मौजूद रहते हैं और संवेदनशील इंसान के रूप में आप हमेशा इससे प्रभावित होंगे; सवाल तो यह है कि आप इसके साथ क्या करते हैं। इसके शिकार न बने, नहीं तो वे अपने उद्देश्य में सफल हो जायेंगे।

'नहीं' कहने वालों का क्या प्रभाव पड़ेगा, यह आप पर निर्भर करता है। सिर्फ आप ही फैसला करते हैं कि आप उन पर कैसी प्रतिक्रिया करते हैं। यदि आप एक 'नहीं' कहने वाले को अपने दिल तक पहुँचने की अनुमति देते हैं, तो आप अन्य कई 'नहीं' कहने वालों से प्रभावित होने का रास्ता खोल देते हैं, इसलिए उनकी वजह से खुद को परेशान न होने दें। यह मना करने वालों के इरादे का ठीक विपरीत होता है, लेकिन आपके हौसले पस्त करने के बजाय उनके शब्द आपको एक नई ऊर्जा के साथ प्रेरित भी कर सकते हैं, जो आपको अपना सपना हासिल करने के लिए प्रेरित करती है।

पीटर फोयो–किसी मना करने वाले को सफलता का प्रेरक घटक मानना एक बेहतरीन भावना है। वे दरअसल आपको ज्यादा खुद और ज्यादा सफल बनने की दिशा में ज्यादा तेजी से ले जाते हैं।

लेअर्ड हैमिल्टन–मैंने बहुत से मना करने वालों की बातों का इस्तेमाल ईंधन की तरह किया था। ''तुम यह नहीं कर सकते!'' को मैंने इस तरह लिया, ''ओह हाँ, मैं इसे कर सकता हूँ!'' इसकी बदौलत मैं चलता गया। मैंने इसे बस सिर के बल खड़ा कर दिया और एक नकारात्मक चीज को सकारात्मक चीज में बदल दिया, क्योंकि खास तौर पर मेरे संसार में, 'नहीं' कहने वाले बहुत से लोग थे और अब भी हैं।

पीटर बरवॉश–मैं आलोचना से ज्यादा विचलित नहीं हुआ, जब मुझे यह एहसास था कि मैं सही मार्ग पर चल रहा हूँ।

''मुझे बहुत बार बताया गया है कि यह नहीं किया जा सकता। बार-बार इसे घटित करने के लिए मुझे लगन के हर कतरे का इस्तेमाल करना पड़ा है।''

हॉवर्ड शुल्ट्ज (स्टारबक्स के चेयरमैन और सीईओ)-'नहीं' कहने वाले आपको किसी दूसरे, ज्यादा बेहतर मार्ग की दिशा दिखाने का काम भी कर सकते हैं। हो सकता है, आपने मन में अपना सपना हासिल करने का कोई तरीका तय कर लिया हो, लेकिन जब आप उस मार्ग का अनुसरण करते हैं, तो आपको मना करने वाले निर्णायक लोग मिलते हैं और वे आपके सपने को बीच राह में रोक देते हैं। चूँकि आप आगे नहीं जा सकते, इसलिए आपको मजबूरन दूसरे तरीके की तलाश करनी पड़ती है। अंततः आप अपने सपने को हासिल करने के लिए एक नया तरीका खोज लेते हैं, जो उस मार्ग से कहीं अधिक श्रेष्ठ होता है, जिस पर आप पहले चल रहे थे-मना करने वालों की बदौलत। भगवान् उनका भला करें!

पीटर फोयो-जब मैं बेहद नकारात्मक लोगों से टकराता हूँ, तो वे दरअसल मेरी मंजिल की राह दिखाने का काम करते हैं। वे मुझे पीछे खींचने के बजाय सही दिशा में ज्यादा तेजी से जाने की राह दिखाते हैं।

पीटर बरवॉश-जब मैं कैनेडा में खेल रहा था, तो उस वक्त टेनिस एसोसिएशन के प्रेजिडेंट ने मुझे एक पत्र लिखा, ''आपको खेलना छोड़ देना चाहिए, क्योंकि आप बहुत खराब खिलाड़ी हैं।'' इसे बाधा के रूप में देखने के बजाय मैंने इसे एक चुनौती के रूप में देखा। जब मैं राष्ट्रीय चैंपियनशिप में खेलने के लिए कैनेडा लौटा, तो मैं छोर बदलने के लिए तैयार था और मैच के आखिरी गेम के लिए सर्व करने की तैयारी कर रहा था। मैंने वह पत्र बाहर निकाला, जिसमें इस व्यक्ति ने कहा था कि मैं बहुत खराब खिलाड़ी हूँ और मैं यहाँ राष्ट्रीय चैंपियनशिप को जीतने वाला था।

सतही लोगों और बातों को नजरअंदाज करे-अपनी यात्रा में आप एक मूल्यवान् सलाह पर विचार कर सकते हैं। दूसरे लोगों को अपना सपना बताने से पहले आपको खुद में विश्वास और संकल्प भर लेना चाहिए। अगर आप अपने सपने के बारे में लोगों को बहुत जल्दी बताने लगते हैं, तो उनकी प्रतिक्रिया से आप हतोत्साहित हो सकते हैं और सचमुच शुरू करने से पहले ही हार मान सकते हैं। यह पहले भी कई लोगों के साथ हो चुका है, शायद आपके साथ भी हुआ हो। आपके मन में कोई चीज करने का बेहतरीन विचार आया, जो आपकी सामान्य विशेषज्ञता के क्षेत्र में नहीं था, आपने इसे दूसरों को बताया, उन्होंने आपके मन में शंका भर दी और आपका विचार तथा स्वप्न जमीन से ऊपर उठने से पहले ही चूर-चूर हो गये। फिर

जैसा किस्मत को मंजूर था, कुछ समय बाद आपको पता चला कि पहले आपके मन में जो बड़ा विचार था, वह किसी दूसरे के जरिये संसार में प्रकट हो गया-और यह बेहद सफल हो गया।

जॉन पॉल डिजोरिया-कुछ महत्वपूर्ण चीजों पर ध्यान दें। अनेक व्यर्थ चीजों को नजरअंदाज कर दें।

लिज मरे-दूसरे लोग आपके लिए चीजें तय करें, इस बारे में सावधान रहें। लोगों की अपनी राय होती है और वे आपको बहुत जल्दी बता देते हैं कि क्या संभव है और क्या असंभव है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि लोग कितने विश्वास से बोलते हैं। कोई नहीं जानता कि क्या संभव है, जब तक कि वह उसे स्वयं न कर रहा हो। कोई नहीं जानता।

''उन लोगों से दूर रहें, जो आपकी महत्वाकांक्षाओं को छोटा करने की कोशिश करते हैं। छोटे लोग हमेशा यह करते हैं, लेकिन सचमुच महान् लोग आपको महसूस कराते हैं कि आप भी महान् बन सकते हैं।''

मार्क ट्वेन-जब मैंने द सीक्रेट बनाने का फैसला किया, तो मैंने अपने सपने के बारे में किसी दूसरे को तब तक नहीं बताया, जब तक कि मैंने अपने मन में इसे पूरी तरह नहीं जमा लिया। शोध करने, योजना बनाने और इसे अपने भीतर एकीकृत करने में मैंने चार महीने लगा दिये, जब तक कि मैं यह नहीं जान गई कि कोई मुझे इससे विमुख नहीं कर सकता। सिर्फ तभी मैंने अपना यह विचार दूसरों को बताया, जब हजारों मना करने वाले लोग मेरे सपने को असंभव करार देते और उनमें से एक का भी मुझ पर असर नहीं होता।

दूसरों को बताने से पहले अपने सपने पर काम करें, अपने सपने में विश्वास पर काम करे और अपने मन में अपने सपने को अच्छी तरह जमा लें, जब तक कि इसकी तस्वीर आपके सामने एकदम स्पष्ट न हो जाये।

लेन बीचली-जब मैं बड़े होते समय मैनली बीच में सर्फिंग कर रही थी, तो दो लोग मेरी दाईं तरफ थे, जो मुझसे पानी से बाहर निकलने को कह रहे थे और दो लोग मेरी बाईं तरफ थे जो कह रहे थे, ''हम सोचते हैं कि आप बेहतरीन हैं और आपके साथ सर्फिंग करके मजा आ गया।'' आप क्या सोचते हैं, मैं किसकी बात सुनने वाली थी? जाहिर है, बाईं तरफ के दो लोगों की।

पीट कैरल–नौकरी छूटने से उबरने और उसकी बदौलत ज्यादा मजबूत बनने की शक्ति मुझे इस चीज से मिली कि मैंने उस निर्णय को मान्यता नहीं दी। मैंने उसे स्वीकार ही नहीं किया। मैंने इस विचार को चुनौती दी कि वे सही थे और मैं जानता था कि उनसे असहमत होने का कारण मौजूद था।

'नहीं' कहने वालों के बारे में सच्चाई यह है कि वे अक्सर ऐसे लोग होते हैं, जिन्होंने अपने दिमाग के दरवाजे बंद कर लिए हैं और वे खुद अपनी पूरी क्षमता से नहीं जी रहे हैं। अगर वे अपनी पूरी क्षमता से जी रहे होते, तो वे अपने अनुभव से यह जान लेते कि कुछ भी संभव है।

जॉन पॉल डिजोरिया–जब मैं ग्यारहवीं कक्षा में था, तो पूरी कक्षा के सामने हमारे बिजनेस टीचर ने मेरी मित्र मिचेल और मुझे बताया कि हम कभी कुछ नहीं कर पायेंगे। हम जानते थे कि वे गलत थे। हम निश्चित रूप से अपने जीवन में कुछ करेंगे। मिचेल सुपरस्टार बन गयी। वह 'द मामाज एंड द पापाज' नामक गायकों के ग्रुप वाली मिचेल फिलिप्स है।

जब हम द सीक्रेट फिल्म बना रहे थे, तो नहीं कहने वाले लोगों के साथ मेरे कई अनुभव हुए, लेकिन एक सबसे अलग था। मैं टेलीविजन एग्जेक्यूटिव के एक बड़े समूह के सामने फिल्म का पहला कट प्रस्तुत कर रही थी। उस बिन्दु तक आने के लिए एक साल की मेहनत और हर चीज के त्याग की जरूरत पड़ी थी। स्क्रीनिंग के अंत में एग्जेक्यूटिव्स ने फिल्म पर एक भी प्रशंसा भरी टिप्पणी नहीं की। इसके बजाय वे गंभीर रूप से आलोचनात्मक थे और उस फिल्म के हर पहलू में दोष निकाले। प्रस्तुति के बाद जब मैं उस इमारत से निकली, जहाँ मीटिंग आयोजित थी, तो मैं सदमे में थी और बदहवास-सी सड़कों पर भटकती रही। अंततः मैंने खुद को संभाला और एक घंटे की घर तक की उड़ान के लिए हवाईअड्डे की ओर बढ़ी। उस उड़ान के दौरान मुझे एहसास हुआ कि ऐसा कोई तरीका नहीं था, जिससे मैं उन एग्जेक्यूटिव्स की अनंत आलोचनाओं को सुधार सकती थी और मुझे इसकी जरूरत भी नहीं थी। जब तक हवाईजहाज जमीन पर उतरा, मेरे अंदर कुछ परिवर्तनों की प्रेरणा आई, जो फिल्म में किये जा सकते थे। हमने उन प्रेरणाओं पर अमल किया और उन्हें फिल्म में डाल दिया और यही वे तत्त्व थे, जो उस फिल्म को भारी सफलता की ओर ले गये।

सहयोगी–हालाँकि लगभग हमेशा आपको हीरो की यात्रा में 'नहीं' कहने वाले निश्चित रूप से मिलेंगे, लेकिन साथ ही आपको कई सहयोगी, कई देवदूत भी मिलेंगे, जो या तो पहले से ही आपके जीवन में हैं या फिर जो कुछ समय के लिए ही सही, प्रकट होते हैं, ताकि वे आपका समर्थन करे और आपकी यात्रा में आपकी मदद करें।

(मेरे आत्मविश्लेषण-आत्मसंबोधन-प्रतिज्ञा संबंधी कविता)

स्व-अनंत वैभव ही मेरा लक्ष्य

(मेरा शुद्धात्म वैभव समस्त संसारी जीवों के वैभव से भी अनंतगुणीत)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : रातकली....., सायोनारा.....)

धन्य है मेरा भाग्य जगा है...आत्म तत्त्व का ज्ञान किया।
मैं हूँ जीव द्रव्य चैतन्यमय...श्रद्धा-प्रज्ञा से ज्ञान हुआ।। (ध्रुव)

देव-शास्त्र-गुरु निमित्त पाकर...सु-द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पाकर।
ध्यान-अध्ययन व चिन्तन-मनन से...स्वयं को जाना हूँ अनुभव से।। (1)

मैं हूँ अमूर्तिक स्वयंभू सनातन...अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यवान्।
मैं हूँ मेरा प्रभु-विभु कर्त्ता-धर्त्ता...अनंतानंत शक्ति वैभव का भर्त्ता।। (2)

तीन लोक व तीन काल के वैभव...राजा-महाराजा चक्रवर्ती संभव।
देवेन्द्र भोगभूमिज देवों के वैभव...भोगोपभोग ख्याति पूजा संभव।। (3)

सभी के मिश्रण से जो होगा वैभव...उससे भी अनंतगुणे स्वात्म वैभव।
सांसारिक जीवों के आशाश्वत वैभव...शाश्वत है मेरा शुद्धात्म वैभव।। (4)

तथापि मैं मोह अज्ञान के कारण...स्व-स्वरूप को ही न जाना।
तन-मन-इन्द्रियों को स्वरूप माना...जन्म-जरा-मरणमय जाना।। (5)

खाना-पीना-भोगोपभोग ही किया...ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि चाहा।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश किया...इसी में (ही) अस्त-व्यस्त-संत्रस्त रहा।। (6)

समस्त काम इस हेतु ही करता रहा...इस हेतु मरा व मारा।
कृषि व्यापार राजनीति कानून...धर्म भी इसी हेतु ही करता रहा।। (7)

इसके कारण कर्म भी बांधता...संसार चक्र में परिभ्रमण करता रहा।
आत्मज्ञान से सभी को अनात्म जाना...नवकोटि से सभी त्याग हो रहा।। (8)

राग द्वेष मोह काम ईर्ष्या व तृष्णा...धन जन मान व प्रसिद्धि की इच्छा।
समस्त लंद-फंद-द्वंद्व संक्लेश...धार्मिक संकीर्ण कट्टर पक्षपात।। (9)

धनी-गरीब व अपना-पराया...जाति भाषा लिंग राष्ट्र विद्वेष।
समता असत्य व विषमतापूर्ण...नवकोटि से त्यागूँ अनात्म काम।। (10)

उपलब्ध मेरा ज्ञान दर्शन चारित्र...समता-शांति व वैराग्य भाव।
निस्पृहता व ध्यान-अध्ययन-वैभव...ख्याति पूजा लाभ वालों से भी श्रेष्ठ।। (11)

अनात्म सभी त्यागूँ बनूँ अकिंचित्कर...स्वयं में ही स्वयंपूर्ण परमेश्वर।
शुद्ध-बुद्ध मैं बनूँ आनंद-कंद...'कनक' का लक्ष्य स्व-शुद्धात्मानंद।। (12)

सीपुर, दिनांक 04.12.2016, रात्रि 8.12 व 3.56

(मैं (आ. कनकनन्दी) स्वयं अनात्म काम नवकोटि से नहीं करूँ व अन्य के अनात्म काम को नवकोटि से स्वीकार नहीं करूँ-इस हेतु यह कविता बनी।)

संदर्भ-

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत।। (53)

आत्मस्वरूप के जिज्ञासुओं तथा उसकी प्राप्ति के इच्छुक पुरुषों को चाहिए कि वे बराबर आत्मस्वरूप की खोज के लिए दूसरों से आत्मस्वरूप की ही बात किया करे विशेष ज्ञानियों से आत्मा की विशेषताओं को पूछा करे, आत्मस्वरूप की प्राप्ति की निरंतर भावना भाये और एकमात्र उसी में अपनी लौ लगाये रखे। ऐसा होने पर उनकी अज्ञानदशा दूर हो जायेगी-बहिरात्मावस्था मिट जायेगी और वे परमात्मपद को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे।

शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक्शरीरयोः।
भ्रन्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते।। (54)

भावार्थ-वास्तव में शरीर और वचन पुद्गल की रचना हैं, मूर्तिक हैं, जड़ हैं,

आत्मस्वरूप से विलक्षण हैं। इसमें आत्मबुद्धि रखना अज्ञान है। किन्तु बहिरात्मा चिर-मिथ्यात्व रूप कुसंस्कारों के वश होकर इन्हें आत्मा समझता है, जो कि उसका भ्रम है। अंतरात्मा को जड़ और चैतन्य के स्वरूप का यथार्थ बोध होता है, इसी से शरीरादिक में उसकी आत्मपने की भ्राँति नहीं होती-वह शरीर को शरीर, वचन को वचन और आत्मा को आत्मा समझता है, एक को दूसरे के साथ मिलाता नहीं।

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमतेबालस्तत्रैवाज्ञानभावनात्।। (55)

भावार्थ-तत्त्वदृष्टि से यदि विचार किया जाय तो ये पाँचों ही इन्द्रियों के विषय क्षणभंगुर पराधीन हैं, विषम हैं, बंध के कारण हैं, दुःख स्वरूप हैं और बाधा सहित हैं-कोई भी इनमें आत्मा के लिए सुखकर नहीं फिर भी यह अज्ञानी जीव उन्हीं से प्रीति करता है, उन्हीं की सम्प्राप्ति में लगा रहता है और रात-दिन उन्हीं का राग अलापता है। यह सब अज्ञान भाव को उत्पन्न करने वाले मिथ्यात्व-संस्कार का ही माहात्म्य है।

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति।। (56)

भावार्थ-नित्य निगोदादिक निंद्य पर्यायों में यह जीव ज्ञान की अत्यंत हीनता-वश चिरकाल तक दुःख भोगता है। कदाचित् संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय प्राप्त कर कुछ थोड़ा-सा ज्ञान प्राप्त करता भी है तो अनादिकालीन मिथ्यात्व के संस्कारवश जो आत्मीय नहीं ऐसे स्त्री-पुत्रादिक को ये मेरे हैं ऐसे आत्मीय मानकर और जो आत्मभूत नहीं ऐसे शरीरादि को 'यह मैं ही हूँ' ऐसे आत्मभूत मानकर अहंकार ममकार के चक्कर में फँस जाता है और उसके फलस्वरूप राग-द्वेष को बढ़ाता हुआ संसार-परिभ्रमण कर महादुःखित होता है।

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ समचित्तता।
परीषह-जयश्चेति पञ्चैते ध्यानहेतवः।। (पृ. 201)

इसी तरह यशस्तिलक के अष्टमाश्वासगत ध्यानविधि नामक 40वें कल्प में वैराग्य, ज्ञानसंपत्ति, असंगता, स्थिर चित्तता और ऊर्मिस्मयसहनता इन पाँच को योग (ध्यान) के कारण बतलाया है-

वैराग्यं ज्ञानसम्पत्तिरसङ्गः स्थिरचित्ता।

ऊर्मि-स्मयसहत्वं च पञ्च योगस्य हेतवः।।

ऊर्मि शब्द यहाँ भूख, प्यास, शोक, मोह, रोग और भवादि की वेदनाजन्य लहरों का वाचक है और स्मय शब्द मद तथा विस्मय दोनों के लिए प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। इन सबका सहन परीषह-जय में आ जाता है।

प्रदर्शित ध्यान-फल से ध्यान फल को ऐहिक ही मानने का निषेध

अत्रैव माऽऽग्रहं कार्षुर्यद्ध्यानफलमैहिकम्।

इदं हि ध्यानमाहात्म्यख्यापनाय प्रदर्शितम्।। (219)

'इस ध्यान फल के विषय में किसी को यह आग्रह नहीं करना चाहिए कि ध्यान का फल ऐहिक (लौकिक) ही होता है; क्योंकि यह ऐहिक फल तो यहाँ ध्यान के माहात्म्य की प्रसिद्धि के लिए प्रदर्शित किया गया है।'

व्याख्या-पिछले पद्यों में समरसी भाव रूप ध्यान का कुछ उदाहरणों द्वारा जो फल निर्दिष्ट किया गया है उस पर से किसी को यह भ्रांति होनी चाहिए कि ध्यान का फल लौकिक ही होता है। लौकिकजन लौकिक फल की अनुभूति के बिना पारमार्थिक फल को ठीक समझ नहीं पाते। अतः जगज्जनों के हृदयों में ध्यान के माहात्म्य को ख्यापित करने के लिए लौकिक फल-प्रदर्शन का आश्रह लिया गया है। यही इस पद्य का आशय है।

ऐहिक फलार्थियों का ध्यान आर्त्त या रौद्र

तद्ध्यानं रौद्रमार्त्तं वा यदैहिकफलार्थिनाम्।

तस्मादेतत्परित्यज्य धर्म्यं शुक्लमुपास्यताम्।। (220)

'ऐहिक (लौकिक) फल के चाहने वालों के जो ध्यान होता है वह या तो आर्त्तध्यान है या रौद्रध्यान। अतः इस आर्त्त तथा रौद्रध्यान का परित्याग कर (मुमुक्षुओं को) धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यान की उपासना करनी चाहिए।'

व्याख्या-यहाँ उस ध्यान को (यथास्थिति) आर्त्तध्यान या रौद्रध्यान बतलाया है जो लौकिक फल चाहने वालों के द्वारा उस फल की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इसलिए जो एकमात्र मुक्ति के अभिलाषी हैं उन्हें इन दोनों ध्यानों का त्याग कर धर्म्यध्यान तथा शुक्लध्यान का अवलंबन लेना चाहिए, ऐसी प्रेरणा की गयी है। धर्म्य तथा शुक्लध्यान के द्वारा लौकिक फलों की स्वतः प्राप्ति होती है, यह बात पहले प्रदर्शित की जा चुकी है और इसलिए किसी को यहाँ यह न समझ लेना चाहिए कि

आर्त्तध्यान या रौद्रध्यान के बिना लौकिक फल की प्राप्ति होती ही नहीं।

वह तत्त्वज्ञान जो शुक्ल ध्यान रूप है

तत्त्वज्ञानमुदासीनमपूर्वकरणादिषु।

शुभऽशुभ-मलाऽपायाद्विशुद्धं शुक्लमभ्यधुः।। (221)

अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में जो उदासीन-अनासक्तिमय-तत्त्वज्ञान होता है वह शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के मल के नाश होने के कारण विशुद्ध शुक्लध्यान कहा गया है।

शुक्लध्यान का स्वरूप

शुचिगुण-योगाच्छुक्लं कषाय-रजसः क्षयादुपशमाद्वा।

माणिक्य-शिखावदिदं सुनिर्मलं निष्प्रकम्पं च।। (222)

'कषाय-रज के क्षय होने अथवा उपशम होने से और शुचि-पवित्र गुणों के योग से शुक्लध्यान होता है और यह ध्यान माणिक्य शिखा की तरह सुनिर्मल तथा निष्कम्प रहता है।'

मुमुक्षु को नित्य ध्यानाभ्यास की प्रेरणा

रत्नत्रयमुपादाय त्यक्त्वा बंध-निबंधनम्।

ध्यानमभ्यस्यतां नित्यं यदि योगिन्! मुमुक्षु से।। (223)

'हे योगिन! यदि तू मोक्ष चाहता है तो सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय को ग्रहण करके बंध के कारण रूप मिथ्यादर्शनादि के त्यागपूर्वक निरंतर सद्ध्यान का अभ्यास कर।'

उत्कृष्ट ध्यानाभ्यास का फल

ध्यानाऽभ्यास-प्रकर्षेण त्रुट्यन्मोहस्य योगिनः।

चरमाऽङ्गस्य मुक्तिः स्यात्तदैवान्यस्य च क्रमात्।। ()

'ध्यान के अभ्यास की प्रकर्षता से मोह को नाश करने वाले चरम शरीरी योगी के तो उसी भव में मुक्ति होती है और जो चरमशरीरी नहीं उसके क्रमशः मुक्ति होती है।'

तथा ह्यचरमाङ्गस्य ध्यानमभ्यस्यतः सदा।

निर्जरा संवरश्च स्यात्सकलाऽशुभकर्मणाम्।। (225)

आस्त्रवन्ति च पुण्यानि प्रचुराणि प्रतिक्षणम्।
यैर्महर्द्धिर्भवत्येष त्रिदशः कल्पवासिषु।। ()

'तथा ध्यान का अभ्यास करने वाले अचरमांग योगी के सदा अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है और (अशुभ कर्मास्त्रव के निरोध स्वरूप) संवर होता है। साथ ही उसके प्रतिक्षण पुण्यकर्म प्रचुर मात्रा में आस्त्रव को प्राप्त होते हैं, जिनसे यह योगी कल्पवासी देवों में महाऋद्धिधारक देव होता है।'

तत्र सर्वेन्द्रियाल्हादि मनसः प्रीणनं परम्।
सुखाऽमृतं पिबन्नास्ते सुचिरं सुर-सेवितम्।। (227)
ततोऽवतीर्य मर्त्येऽपि चक्रवर्त्यादिसम्पदः।
चिरं भुक्त्वा स्वयं मुक्त्वा दीक्षां दैगम्बरी श्रितः।। (228)
वज्रकायः स हि ध्यात्वा शुक्लध्यानं चतुर्विधम्।
विधूयाऽष्टाऽपि कर्माणि श्रयते मोक्षमक्षयम्।। (229)

वहाँ-उस देव पर्याय में-वह सर्व इंद्रियों को आह्लादित और मन को परम तृप्त करने वाले सुख रूपी अमृत को पीता हुआ चिरकाल तक सुरों से सेवित रहता है। वहाँ से मर्त्यलोक में अवतार लेकर, चक्रवर्ती आदि की संपदाओं को चिरकाल तक भोगकर, फिर उन्हें स्वयं छोड़कर, दैगंबरी दीक्षा को आश्रय किये हुए वह वज्रकाय योगी चार प्रकार के शुक्लध्यान को ध्याकर और आठों कर्मों का नाश करके अक्षय मोक्ष पद को प्राप्त करता है।

मोक्ष का स्वरूप और उसका फल

आत्यन्तिक-स्वहेतोर्यो विश्लेषो जीव-कर्मणोः।
स मोक्षः फलमेतस्य ज्ञानाद्याः क्षायिका गुणाः।। (230)

जीव और कर्म के प्रदेशों का स्वहेतु से-बंध-हेतुओं के अभाव तथा निर्जरा रूप निजी कारण से-जो आत्यंतिक विश्लेष है-एक-दूसरे से सदा के लिए अतीव पृथक्त्व है-वह मोक्ष अथवा मुक्ति है जिसके फल हैं ज्ञानादिक क्षायिक गुण-ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियों के क्षय से प्रादुर्भूत होने वाले आत्मा के अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख (सम्यक्त्व), अनंतवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अगुरुलघुत्व और अव्याबाध नाम के स्वाभाविक मूल गुण।

स्व-अनुकूल सभी को बनाना चाहते हैं : अज्ञानी-मोही-स्वार्थी

(ऐसे जीव स्वयं को ही श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-निर्दोषी मानते, महान् जन श्रेष्ठ बनते)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : क्या मिलिये ऐसे लोगों से....., सायोनारा.....)

हर जीव स्वयं को ही श्रेष्ठ मानते, स्वयं को ही निर्दोषी ज्येष्ठ मानते।
स्व-अनुकूल ही अन्य भी बने चाहते, तदनुकूल भाव-व्यवहार करते।। (1)

एकेन्द्रिय से लेकर मानव तक, पशु-पक्षी-कीट व पतंग तक।
अज्ञानी मोही जो स्वार्थी होते, स्व-अनुकूल ही अन्य को चाहते।। (2)

आहार भोगोपभोग व साधन हेतु, अन्य को भी स्व-अनुकूल चाहते।
स्व-अनुकूल रूप जो नहीं बनते, येन-केन उपाय से बनाना चाहते।। (3)

अन्यथा उसे विविध कष्ट भी देते, बधबंधन ताड़न मारण देते।
निन्दा अपमान अनादर करते, आक्रमण युद्ध लूट-पाट/(हत्या) करते।। (4)

उक्त कार्य करते हुए भी श्रेष्ठ मानते, श्रेय लेने हेतु विविध यत्न करते।
उक्त प्रवृत्ति होती यथायोग्य जीवों में, क्षुद्र एकेन्द्रिय से मानव तक में।। (5)

ज्ञानी निर्मोही जो निःस्वार्थी होते, हिताहित विवेक से सहित होते।
स्व-पर-विश्वकल्याण जो चाहते, वे उपरोक्त दोषों से रहित होते।। (6)

मैत्री प्रमोद कारुण्य (भाव) से सहित होते, विरोधी जीवों से माध्यस्थ रहते।
शत्रु-मित्र से भी समताभाव रखते, सुख-दुःख हानि-लाभ में साम्य रखते।। (7)

स्वधर्मी-सुधर्मी से वात्सल्य रखते, विधर्मी-कुधर्मी को भी कष्ट न देते।
दीन-दुःखी रोगी व असहाय जीवों के, यथायोग्य दयादान सेवा करते।। (8)

मन वचन काय व कृत कारित से, हर जीव से सही भाव-व्यवहार करते।
स्वयं जीते व अन्य को भी जीने देते, 'परस्पर उपग्रहो जीवानम्' काम करते।। (9)

तीर्थंकर बुद्ध साधु ईसा मसीह सज्जन, परोपकारी विश्वहित चिंतक जन।
होते हैं महामानव स्वयं श्रेष्ठ-ज्येष्ठ, स्व-आदर्श से अन्य को बनाते श्रेष्ठ।। (10)

इनसे विपरीत होते अज्ञानी मोही/(स्वार्थी), रावण कंस हिटलर सम प्रवृत्ति।

तानाशाही क्रूर-कट्टर-संकीर्ण-पापी, धार्मिक से ले राजनेताओं की प्रवृत्ति।। (11)
स्व-पर प्रकाशी बनना होता है श्रेष्ठ, महाजनयेनगता सपन्था के सम।
इसी से ही स्व-पर उपकार संभव, स्व को आदर्श बनाना 'कनक' का लक्ष्य।। (12)

सीपुर, दिनांक 05.12.2016, रात्रि 7.30

'ममकार'-'अहंकार' ही संपूर्ण पाप-दुःख; 'अहं' संपूर्ण धर्म-सुख

(ममकार-अहंकार से परे 'अहं' (मैं))

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

सुनो हे! भव्य तुम्हें बताऊँ, 'ममकार' व 'अहंकार' लक्षण।
जिसे जानकर तुम जानोगे, स्वशुद्धात्मा का 'अहं' लक्षण।। (1)

शुद्ध-बुद्ध न अनंत सुख, होता है 'अहं' स्वरूप।
तन-मन-अक्ष व धनादि रहित, होता है आत्मस्वरूप।। (2)

इस स्वरूप को अपना मानना, यह है आत्मश्रद्धान।
इसका ज्ञान है आत्मज्ञान, स्वलीन है सम्यक् आचरण।। (3)

स्वश्रद्धान व ज्ञान आचरण, होता है धर्मस्वरूप।
इससे भिन्न परस्वरूप, श्रद्धान आदि होता अधर्म रूप।। (4)

स्व से भिन्न शरीरादि को, मैं मानता है 'ममकार'।
कर्मजनित इन्द्रिय मनादि को, मैं मानता है 'ममकार'।। (5)

तथाहि धन व पत्नी-पुत्र, मकान परिवार व शत्रु-मित्र।
उसमें स्व अभिनिवेश 'ममकार' (रूप), जो है अज्ञान मोह मात्र।। (6)

कर्म से जायमान समस्त भावों को, मेरा मानना 'अहंकार'।
मैं हूँ राजा, मैं हूँ रंक, मैं हूँ स्त्री-पुरुष-बालिका-बाल।। (7)

मैं हूँ सुखी, मैं हूँ दुःखी, मैं हूँ उच्च व मैं हूँ नीच।
मैं हूँ गोरा, मैं हूँ काला, मैं हूँ सुंदर या असुंदर।। (8)

मैं हूँ सबल, मैं हूँ दुर्बल, मैं हूँ शहरी या ग्रामीण।
मैं हूँ साक्षर, मैं हूँ निरक्षर, आदि समस्त कर्मजनित भाव।। (9)

अष्टमद है अहंकारमय, जो मिथ्यात्व अज्ञान सहित।
जिसके कारण अहंकारी जीव, न जान पाता स्व-शुद्ध स्वरूप।। (10)

'ममकार' व 'अहंकार' से उत्पन्न, होते हैं राग व द्वेष।
जिससे समाहित होते हैं, चार कषाय व नो कषाय।। (11)

इनके कारण होते हैं हिंसा, झूठ-कुशील-चोरी-परिग्रह।
सप्त व्यसन व अन्याय अत्याचार, शोषण व मिलावट।। (12)

अष्ट विध कर्म इससे बंधते, संसार के जो मूल कारण।
चौरासी लक्ष्य योनि व चतुर्गति में, होते हैं जन्म-मरण।। (13)

'ममकार' व 'अहंकार', अतः संसार के हैं मूल कारण।
दोनों के त्याग से होता है, आत्मा का सम्यक्ज्ञान।। (14)

सम्यक्ज्ञान होने पर होता, देवशास्त्र गुरु पर सही श्रद्धान।
द्रव्य तत्त्व व पदार्थों का भी, होता श्रद्धानपूर्वक ज्ञान।। (15)

जिससे होता है 'अहं'/(मैं, आत्मा) का, श्रद्धानपूर्वक ज्ञान।
जिससे होता सम्यक् आचरण, तीनों की पूर्णता परिनिर्वाण।। (16)

अज्ञानी मोही न जानते 'अहं' स्वरूप, करते 'ममकार' 'अहंकार'।
सुज्ञानी जानते 'अहं' स्वरूप, त्यागते 'ममकार' 'अहंकार'।। (17)

'अहं' स्वरूप आत्मा कथन को, अज्ञानी मानते 'अहंकार'।
मोहमद से मूर्च्छित जीव सत्ता-संपत्ति आदि में करते 'अहंकार'।। (18)

लोक प्रचलन व्यवहार नय से, शरीर आदि को मान्य 'मैं' या 'मेरा'।
आत्मिक दृष्टि/(निश्चयनय) से स्व-आत्म तत्त्व ही, होता है 'मैं' या 'मेरा'।। (19)

सर्वज्ञ ज्ञानमय श्रद्धा-प्रज्ञा से, अनुभूत यह है आध्यात्मसार।
आत्मा की प्राप्ति हेतु 'कनकनन्दी', सदा करता आत्म विचार।। (20)

सीपुर, दिनांक 07.12.2016, रात्रि 8.41

संदर्भ-

बंध हेतुओं में चक्री और मंत्री

बन्धहेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्रीति कीर्तितः।
मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्रियत्।। (12)

बंध के संपूर्ण हेतुओं में मोह चक्रवर्ती (राजा) कहा गया है और मिथ्याज्ञान इसी के मंत्रित्व को आश्रय किये हुए है-मोह राजा का आश्रित मंत्री है।

मोहचक्री के सेनापति : ममकार-अहंकार

ममाऽहङ्कारनामानौ सेनान्यौ तौ च तत्सुतौ।
यदायत्तः सुदुर्भेदः मोह-व्यूहः प्रवर्तते।। (13)

'उस मोह के जो दो पुत्र ममकार और अहंकार नाम के हैं वे दोनों उस मोह के सेनानायक हैं, जिनके अधीन मोहव्यूह-मोहचक्री का सैन्य संनिवेश-बहुत ही दुर्भेद बना हुआ है।'

ममकार का लक्षण

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनु-प्रमुखेषु कर्मजनितेषु।
आत्मीयाऽभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः।। (14)

सदा अनात्मीय-आत्मरूप से बहिर्भूत-ऐसे कर्मजनित स्व-शरीरादिक में जो आत्मीय अभिनिवेश है-उन्हें अपने आत्मजन्य समझने रूप जो अज्ञान भाव है-उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा शरीर।

व्याख्या-जो कभी आत्मीय नहीं, आत्म द्रव्य से जिनकी उत्पत्ति नहीं और न आत्मा के साथ जिनका अविनाभाव-जैसा कोई गाढ़ संबंध है; प्रत्युत इसके जो कर्म निमित्त हैं, आत्मा से भिन्न स्वभाव रखने वाले पुद्गल परमाणुओं द्वारा रचे गये हैं; ऐसे पर-पदार्थों को जो अपना मान लेना है उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा यह शरीर, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री और यह मेरा धन इत्यादि। क्योंकि ये सब वस्तुएँ वस्तुतः आत्मीय नहीं हैं, आत्माधीन नहीं हैं, अपने-अपने कारण-कलाप के अधीन हैं, अपने आत्म द्रव्य से भिन्न हैं और स्पष्ट भिन्न होती हुई दिखाई पड़ती हैं। शरीर आदि के भिन्न होते समय आत्मा का उन पर कोई वश नहीं चलता; जबकि वस्तुतः आत्मीय होने पर उन्हें आत्माधीन होना और सदा आत्मा के साथ रहना चाहिए था।

यह सब कथन अगले पद्य में प्रयुक्त हुए 'परमार्थनयेन' पद की अपेक्षा रखता हुआ निश्चयनय की दृष्टि से है। व्यवहारनय की दृष्टि से मेरा शरीरादि कहने में जरूर आता है, परंतु जो व्यवहार निश्चयनय के ज्ञान से बहिर्भूत है, निश्चय की अपेक्षा न रखता हुआ कोरा व्यवहार है अथवा व्यवहार को ही निश्चय समझ लेने के रूप में है वह भारी भूल भरा तथा वस्तुतत्त्व के विपर्यास को लिए हुए है। प्रायः ऐसा ही हो रहा है और इसीलिए निश्चयनय की दृष्टि को स्पष्ट करने की जरूरत होती है। इस व्यावहारिक ममतारूपी घोर अंधकार के वश जिसके ज्ञान की स्थिति अस्त-व्यस्त हो रही है ऐसा प्राणी सच्चे सुख स्वरूप अपने हित-साधन से दूर भागता रहता है; जैसे कि श्री अमितगति आचार्य ने अपने निम्न वाक्य में व्यक्त किया है-

माता मे मम गेहिनी मम गृहं मे बान्धवा मेऽङ्गजाः
तातो मे मम सम्पदो मम सुखं मे सज्जना में जनाः।
इत्थं घोरममत्व-तामस-वशव्यस्ताऽस्तबोधस्थितिः
शर्माधानविधानतः स्वहिततः प्राणी सनीस्त्रस्यते।। (तत्त्वभावना 25)

अहंकार का लक्षण

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः।
तत्राऽऽत्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः।। (15)

'कर्मों के द्वारा निर्मित जो पर्यायें हैं और निश्चयनय से आत्मा से भिन्न हैं उनमें भी आत्मा का जो मिथ्या आरोप है-उन्हें आत्मा समझने रूप अज्ञान भाव है-उसका नाम अहंकार है; जैसे मैं राजा हूँ।'

व्याख्या-यहाँ परमार्थनय का अर्थ निश्चयनय से है, जिसे द्रव्यार्थिकनय भी कहा गया है, उसकी दृष्टि से जितनी भी कर्मकृत पर्यायें हैं वे सब आत्मा से भिन्न हैं-आत्मरूप नहीं हैं-उन्हें आत्मरूप समझ लेना ही अहंकार है; जैसे मैं राजा, मैं रंक, मैं गोरा, मैं काला, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं उच्च, मैं नीच, मैं सुरूप, मैं कुरूप, मैं पंडित, मैं मूर्ख, मैं रोगी, मैं निरोगी, मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं निर्बल, मैं सबल, मैं बालक, मैं युवा, मैं वृद्ध इत्यादि। ये सब निश्चयनय से आत्मा के रूप नहीं, इन्हें दृष्टि विकार के वश आत्मरूप मान लेना अहंकार है। यह कर्मकृत पर्याय को आत्मा मान लेने रूप अहंकार की एक व्यापक परिभाषा है। इसमें किसी पर्याय विशेष को लेकर गर्व अथवा मदरूप जो अहंभाव है वह सब शामिल है। निश्चय-सापेक्ष्य व्यवहारनय

की दृष्टि से अपने को राजादिक कहा जा सकता है; परंतु व्यवहार निरपेक्ष निश्चयनय की दृष्टि से आत्मा को राजादिक मानना अहंकार है। इसी तरह देह को आत्मा मान लेना भी अहंकार है।

ममकार और अहंकार में मोह-व्यूह का सृष्टि क्रम

मिथ्याज्ञानान्वितान्मोहान्ममाहङ्कारसम्भवः
इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते।। (16)

'मिथ्याज्ञान युक्त मोह से जीव के ममकार और अहंकार का जन्म होता है और इन दोनों से (ममकार-अहंकार से) राग तथा द्वेष उत्पन्न होता है।'

ताभ्यां पुनः कषायाः स्युर्नोकषायाश्च तन्मयाः।
तेभ्यो योगा प्रवर्तन्ते ततः प्राणिवधादयः।। (17)

'फिर उन (राग-द्वेष) दोनों से कषायें-क्रोध, मान, माया, लोभ और नो कषायें-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा तथा कामवासनाएँ-उत्पन्न होती हैं, जो कि राग-द्वेष रूप हैं। उन कषायों तथा नो कषायों से योग प्रवृत्त होते हैं-मन, वचन तथा काय की क्रियाएँ बनती हैं-और उन योगों के प्रवर्तन से प्राणी वधादि रूप हिंसादिक कार्य होते हैं।'

तेभ्यः कर्माणि बध्यन्ते ततः सुगति-दुर्गती।
तत्र कायाः प्रजायन्ते सहजानीन्द्रियाणि च।। (18)

उन प्राणी वधादिक कार्यों से कर्म बंधते हैं-जिनके शुभ तथा अशुभ ऐसे दो भेद हैं। कर्मों के बंधन से सुगति तथा दुर्गति की प्राप्ति होती है-अच्छे शुभ कर्मों के बंधन से (देव तथा मनुष्य भव की प्राप्ति रूप) सुगति और बुरे-अशुभ कर्मों के बंधन से (नरक तथा तिर्यंच योनि रूप) दुर्गति मिलती है। कर्मों के वश उस सुगति या दुर्गति में जहाँ भी जीव को जाना होता है वहाँ शरीर उत्पन्न होते हैं और शरीरों के साथ सहज ही इंद्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं-चाहे उनकी संख्या शरीर में कम से कम एक ही क्यों न हो।

तदर्थानिन्द्रियैर्गृह्णन्मुह्यति द्वेष्टि रज्यते।
ततो बद्धो भ्रमत्येव मोह-व्यूह-गतः पुमान्।। (19)

उन इंद्रियों के विषयों को इंद्रियों द्वारा ग्रहण करता हुआ जीव राग करता है, द्वेष करता है तथा मोह को प्राप्त होता है और इन राग-द्वेष-मोहरूप प्रवृत्तियों द्वारा नये

बंधनों से बंधता है। इस तरह मोह की सेना से घिरा तथा उसके चक्कर में फँसा हुआ यह जीव भ्रमण करता ही रहता है।

मुख्य बंध हेतुओं के विनाशार्थ प्रेरणा

तस्मादेतस्य मोहस्य मिथ्याज्ञानस्य च द्विषः।
ममाहङ्कारयोश्चात्मन्! विनाशाय कुरूद्यमम्।। (20)

'अतः हे आत्मन्! (यदि तू इस भव-भ्रमण से छूटना चाहता है तो) इस मिथ्यादर्शन रूप मोह के, भ्रमादि रूप मिथ्याज्ञान के और ममकार तथा अहंकार के, जो कि तेरे शत्रु हैं, विनाश के लिए उद्यम कर।'

मुख्य बंध-हेतुओं के विनाश का फल

बन्धहेतुषु मुख्येषु नश्यत्सु क्रमशस्तव।
शेषोऽपि राग-द्वेषादिर्बन्धहेतुर्विनंक्ष्यति।। (21)

'(हे आत्मन्!) बंध के मुख्य कारणों-मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और ममकार-अहंकार रूप मिथ्याचारित्र-के क्रमशः नष्ट होने पर तेरे राग-द्वेषादि रूप जो बंध का हेतु-कारण कलाप-है वह सब भी नाश को प्राप्त हो जायेगा।'

समस्त बंध हेतुओं के विनाश का फल

ततस्त्वं बन्धहेतूनां समस्तानां विनाशतः।
बन्ध-प्राणाशान्मुक्तः सन्न भ्रमिष्यसि संसृतौ।। (22)

तत्पश्चात् राग-द्वेषादि रूप बंध के शेष कारण कलाप के भी नाश हो जाने पर (हे आत्मन्) तू सारे ही कारणों के विनाश से और (फलतः) बंधन के भी विनाश से मुक्त हुआ (फिर) संसार में भ्रमण नहीं करेगा।

बंध-हेतु-विनाशार्थ मोक्ष-हेतु-परिग्रह

बन्ध-हेतु-विनाशस्तु मोक्ष-हेतु-परिग्रहात्।
परस्पर-विरुद्धत्वाच्छीतोष्ण-स्पर्शवत्तयोः।। (23)

'बंध के कारणों का विनाश तब बनता है जबकि मोक्ष के कारणों का आश्रय लिया जाता है; क्योंकि बंध और मोक्ष दोनों के कारण उसी तरह एक-दूसरे के विरुद्ध हैं जिस तरह कि शीत स्पर्श उष्ण स्पर्श के विरुद्ध है-शीत को दूर करने के लिए जिस प्रकार उष्णता के कारण और उष्णता को दूर करने के लिए शीत के कारण मिलाये जाते हैं, उसी प्रकार बंध के कारणों को दूर करने के लिए मोक्ष के कारणों का मिलाना

आवश्यक है।'

मोक्ष हेतु का लक्षण सम्यग्दर्शनादि त्रयात्मक

स्यात्सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-त्रितयात्मकः।
मुक्तिहेतुर्जिनोपज्ञं निर्जरा-संवर-क्रियः।। (24)

सर्वज्ञ-जिनके द्वारा स्वयं का अनुभूत एवं उपदिष्ट मुक्ति-हेतु (मोक्षमार्ग) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ऐसे त्रितयात्मक है-इन तीनों को आत्मसात् किये हुए इन तीन रूप है-और निर्जरा तथा संवर उसकी फल व्यापारपरक क्रियाएँ हैं-वह इन दोनों रूप परिणमता हुआ मोक्षफल को फलता है।

द्रव्य क्षेत्र काल भावानुसार करूँ : ध्यान-अध्ययन-श्रमण धर्म पालन

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू आत्मविशुद्धि करऽऽऽ
द्रव्य-क्षेत्र-काल भावानुसारऽऽऽ ध्यान-अध्ययन-व्रत पालऽऽऽ...(ध्रुव)

आत्मविशुद्धि से ही मिलती सिद्धि, सुद्रव्य क्षेत्र कालादि (सु) पाकर।
आत्मविशुद्धि बिन बाह्य क्रियाकाण्ड, न होते मोक्ष के परिकरऽऽऽ
आत्मा बिन यथा शरीर बेकारऽऽऽ जिया...(1)

उत्तम संहनन उत्तम क्षेत्र-काल, नहीं अभी उत्तम वातावरण।
केवली, गणधर, अवधि मनःपर्यय ज्ञान, नहीं अभी उत्तम भोजन-जनऽऽऽ
हुण्डावसर्पणी अभी पंचम (कलि) काल ऽऽऽ जिया...(2)

आगम में भी निषेध पंचम काल में, आतापनादि त्रिकाल योग धारण।
अभ्रावकाश व वृक्षमूलवासादि, सूर्याभिमुख पर्वत पर ध्यान धारणऽऽऽ
शक्ति अनुसार तप त्याग आचरणऽऽऽ जिया...(3)

बाह्य तप त्याग यथा योग्यकर, अंतरंग साधना विशेष कर।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व, ईर्ष्या तृष्णा-घृणा तू त्याग करऽऽऽ
समता-शांति-निस्पृहता की साधनाऽऽऽ जिया...(4)

इस हेतु प्राप्त सुद्रव्य क्षेत्र काल, एकांत शांत शुद्ध पर्यावरण।
तन-मन-आत्मा-स्वास्थ्य के योग्य, आहार-निहार-विहार निवासऽऽऽ
सुसाधु-शिष्य-भद्र-भक्तजनऽऽऽ जिया...(5)

इस हेतु प्राप्त कर ज्ञान-विज्ञान, प्राचीन से लेकर आधुनिक तक।
आगम-आध्यात्म-अनुभव-स्वास्थ्य ज्ञान, अनेकांत समन्वय को लेकरऽऽऽ
'कनक' करो आत्म उत्थानऽऽऽ जिया...(6)

सीपुर, दिनांक 08.12.2016, प्रातः 7.38

संदर्भ-

धर्म ज्ञान प्राप्ति के लिए एवं देश-विदेश में धर्म प्रभावना के लिए योग्य पद्धति, अच्छे उद्देश्य से वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग करना युगानुकूल है। वैज्ञानिक यंत्र एवं विद्युत् निर्जीव होने से इसके प्रयोग धर्म के लिए करने से 'न ही सावद्यलेश्येन न स्यात् धर्म प्रभावना' के अनुसार गुण अधिक है दोष कम है। जैसा कि तीर्थ यात्रा, आहारदान, मंदिर, निर्माण, जीर्णोद्धार, साहित्य प्रकाशन, पंच कल्याणक, गजस्थ महोत्सव, विद्यालय निर्माण, धर्मशाला, प्रवचन सभा मण्डल, शिविर, संगोष्ठी आदि में होता है।

युगानुकूल मुनि संघ की रक्षा एवं प्रभावना

युगानुकूल मनुष्यों की भावना के अनुसार हमारे 22 तीर्थंकरों के प्रतिपादन की पद्धति अलग रही और आदि एवं अंत के तीर्थंकर की पद्धति पृथक रही। पूर्वाचार्यों ने द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव-शक्ति आदि के अनुकूल उत्सर्ग एवं अपवाद मार्ग का समन्वय करते हुए ध्यान-अध्ययन-मुनिधर्म, त्याग-तपस्या-प्रवचन-व्यवहार करने के लिए निर्देश/आदेश दिया है। इसलिए पंचम काल में आतापन योग, अभ्रावकाश योग, षड्मास-वर्षोपवास आदि निषेध है तथा साधु जंगल में रहना, वर्षा काल में वृक्ष के नीचे खड़े होकर तप करना आदि नहीं करते है। चतुर्थ काल में भी ''पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रंथः-स्नातक निर्ग्रंथाः'' रूपी साधु होते थे। जो उत्तर गुणों की भावना से रहित तथा कभी-कभी मूल गुणों में भी दोष लगा देते हैं वे पुलाक है। उत्तर गुणों की विराधना सहित किन्तु मूल गुणों को निर्दोष पालन करते है किन्तु शरीर, उपकरण आदि में राग है उसे ''बकुश'' कहते है। जिनके मूलगुण-उत्तर गुणों में दोष लग जाता

है उसे प्रतिसेवना कुशील कहते है और जिन्होंने संज्वलन कषाय के अव्यक्त उदय को वश में नहीं किये उन्हें कषाय कुशील कहते है। 11-12वें गुणस्थानवर्ती को निर्ग्रंथ तथा 13वें गुणस्थानवर्ती को स्नातक कहते है। ये पाँचों ही सम्यग्दृष्टि भाव-लिंगी, (मूलसंघी) 6 से लेकर 14 गुणस्थानवर्ती है। 12वें से आगे के तो तद्भव मोक्षगामी निश्चय से होते है परन्तु अन्य पुलाक, वकुश, कुशील भी तद्भव मोक्षगामी हो सकते है। तब हुण्डावसर्पिणी रूपी विचित्र पंचम काल में हीन संहनन, अति शीत, अति उष्ण, अति प्रदूषित वातावरण, बुखार के कारणभूत मच्छर आदि के कारण जिन साधुओं को खाँसी, जुखाम, हैजा, पीलिया, मलेरिया, डेंगू, चिकनगुनिया, दिमागी बुखार, चक्कर, अकाल समाधि, बेहोशी, वमन, पित्त, अलसर, जलन, एलर्जी, पागलपन, दीक्षा छेद, पीड़ा, संक्लेश, आर्त्तरौद्र ध्यान, आत्महत्या, कुविचार आदि हो जाते हैं तब इस सबसे बचने के लिए यदि शीतल उपचार (प्राकृतिक चिकित्सा, औषधि के समान पंखा) आदि किया जाता है तब ''सावद्य लेश्यो बहुपुण्य यशौ दोषायनालं'' के अनुसार ज्यादा दोष कारक नहीं है। शीत परीषह, उष्ण परीषह, दंश-मशक परीषह जय उत्तर गुण है। इन परीषहों को सहन करने पर जिन्हें भयंकर रोग आदि नहीं होते है तो उन्हें सहन करना चाहिए परन्तु जिन्हें भयंकर रोग बार-बार हो जाता है जिससे रोगी साधु, संघस्थ साधुओं के ध्यान, अध्ययन, साधना आदि में बाधा पहुँचती है, लाखों रुपया उपचार में श्रावकों को खर्च करना पड़ता है वे मूल गुणों की रक्षा के लिए कुछ शारीरिक परीषह से बचते है तो यह उत्सर्ग आवलंबी अपवाद मार्ग है। फिर रोगादि समस्या के समाधान के बाद उत्सर्ग मार्ग में ही चलना चाहिए। इसलिए तो प्रतिक्रमण, स्वनिन्दा, गर्हा, आलोचना, प्रायश्चित्त आदि विधान है। पंचम काल के एक वर्ष की तपस्या चतुर्थ काल के 1000 वर्ष की तपस्या के समान इसलिए कहा है कि हीन संहनन (शक्ति) प्रतिकूल वातावरण, सत्त्व रहित भोजन आदि में थोड़ा तप अधिक फलदायी है। पहले उत्तम संहनन, पुण्य, रोग प्रतिरोधक शक्ति, स्वच्छ वातावरण के कारण सर्दी, गर्मी, मच्छर कम होते थे और उनसे अभी के जैसे रोग नहीं होते थे। इन सब विपरीत कारणों से मुझे, हमारे संघ के 40-50 साधु-साध्वी अन्य संघ के साधु-साध्वी (शताधिक) को जो बार-बार भयंकर रोग होता है उसका अनुभव मुझे है। उत्तर गुण स्वरूप जो 22 परीषह जय है उसमें जो भावात्मक परीषह है उसे जय करना स्व-पर के लिए अधिक गुणकारी है। यथा अरति

(अनिष्ट समागम में घृणा, ग्लानि, ईर्ष्या) आक्रोश (क्रोध, विद्वेष) सत्कार, पुरस्कार (ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि) प्रज्ञा (ज्ञान का अहंकार, ज्ञान का दुरुपयोग) आदि परीषहों को जीतना।

बालो वा बुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरिद सजोग्गं मूलच्छेदो जधा ण हवदि।। प्र.सा.गा. 230

उत्सर्ग एवं अपवाद की मैत्री को स्पष्ट करने के लिए आचार्य कुंदकुंद देव कहते है कि बालक मुनि, वृद्ध मुनि, थका हुआ मुनि, रोगी मुनि को ऐसा आचरण करना चाहिए जिससे दीक्षा छेद नहीं हो गृहस्थ न बनना पड़े। मुनि अवस्था में अतिचार तो साधना से दूर हो जाता है।

संघ का अवर्णवाद करना तो सबसे बड़ा पाप है क्योंकि इससे मिथ्यात्व कर्म का बंध होता है। उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य भाव व प्रभावना अंग नहीं होना महान् पाप है क्योंकि इससे सम्यक्दर्शन दूषित होता है, दूसरों की निन्दा होती है धर्म की अप्रभावना होती है। जिसने रोगादि के कारण शारीरिक परीषह का प्रतिकार किया उससे तो उसके अकेला का ही उत्तर गुण मलीन होगा परन्तु संघ अवर्णवाद, निन्दा, विद्वेष, अवात्सल्य, अप्रभावना आदि से तो स्वयं के साथ-साथ संघ, समाज, धर्म, जिन की निन्दा की गई इन सबकी हानि होगी जो ऊपर भी वर्णित है। चतुर्थ काल में भी बड़े-बड़े दोष होने पर उसका तो परिमार्जन आचार्य आदि करते थे परन्तु दूसरों के सामने, पत्र-पत्रिकाओं में, सभा में प्रकट नहीं करते थे। जो दूसरों से घृणा-द्वेष, भेद-भाव करता है और निन्दा करता है वह स्वयं दोषी हो जाता है। इसलिए शास्त्रों में कहा ''**पृष्टमाँस भक्षी खलु निन्दकः!**'' कर्म सिद्धांत, मनोविज्ञान D.N.A., R.N.A. (जिनोम सिद्धांत) अपराध मनोविज्ञान के अनुसार जो स्वयं दोषी, ईर्ष्यालु, छिन्द्राणुवेषी, हीन एवं अहं भावना से युक्त, विक्षुब्ध, अशांत, क्षुद्र, संकीर्ण आदि दोषों से ग्रसित होते है वे ही दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार, कुचिन्ता, दुर्वचन कहते हैं। क्योंकि जो अंतरंग में होगा वही तो बाहर में प्रकट होगा। इन ईर्ष्या-द्वेष, लड़ाई-झगड़ा, भेद-भाव, ऊँचा-नीचा, तेरा-मेरा, तू-तू मैं-मैं, फूट आदि के कारण अनेक शांत प्रिय समता भावी, प्रगतिशील उदारमना, बच्चे, युवक, प्रौढ़ मुनि नहीं बनते, धर्म, साधु-संत से दूर रहते है। अजैन लोगों के ऊपर गलत प्रभाव पड़ते है जिसके कारण अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती है, जैन धर्म की प्रखरता, औजस्विता मंद पड़ती है। जैनियों की

बातें कोई नहीं मानता है। राजनीति, कानून, संविधान, देश-विदेश में वर्चस्व कायम नहीं होता है। निन्दक के बारे में कहा है-

पक्षीणां काक चाण्डालः पशु चाण्डालः गदर्भः।

मुनिनां कोप चाण्डालः सर्व चाण्डालः निन्दकः।।

अतएव इस काल में भी जो शक्ति के अनुसार पवित्र, समता भाव से आत्म कल्याण, विश्व कल्याण, समाज में एकता, प्रेम-शांति, धर्म प्रभावना रूपी महान् उद्देश्य से धर्म पालन करते है ऐसे श्रावक एवं मुनि दोनों धन्य है।

कलौ काले चलौ चित्ते देहे चान्यादि कीटकेः।

एतत्चित्रं यद्यद्यपि जिन रूपा धरा नराः।।

उपर्युक्त समस्त दृष्टि से ''आदहिदं कादव्व'' के अनुसार ''जं सवकई तं किरई जं ण सवकई तं च सद्दहणं'' को लक्ष्य में रखकर धीरे-धीरे परन्तु सम्यक् मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए। अन्यथा रातोंरात येन-केन प्रकार से प्रसिद्ध, सफलता, प्रभावना या प्रसिद्धि के लिए कार्य करना अन्ततोगत्वा विकास के परिवर्तन में विनाश ही होगा। अतः-

जेण रागा विरज्जेजे जेण सेएसु रज्जदि।

जेण भित्ती पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।

जिससे राग से विरक्त होता है जिससे श्रेय मार्ग में रमण होता है एवं जिससे मैत्री, प्रभावना होती है उसे जिनशासन में ज्ञान कहा है।

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान्।

चित्त साध्यान् कषायारीन् न जयेद्यत्तदज्ञता।। आ.शा.गा. 212

यदि आप हे मुनि! काय-क्लेश रूप तप अधिक समय तक नहीं कर सकते हो तो मन के द्वारा ही जीतने योग्य ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार, तृष्णा, छल-कपट, भेद-भाव, राग-द्वेष आदि शत्रुओं को जीत! यदि इन्हें भी नहीं जीतते हो तो आपकी बड़ी अज्ञानता है, क्योंकि उपर्युक्त कषाय जीतने में तो कोई काय-क्लेश नहीं करना पड़ता है। परन्तु कर्म की निर्जरा अधिक होती है, आध्यात्मिक शांति मिलती है, दूसरों के ऊपर अच्छे प्रभाव पड़ता है, प्रभावना-एकता-सहयोगिता बढ़ती है।

पैशून्य-ह्रास, गर्भ, कर्कशमसमंजसं प्रलापितं च।

अन्यदपि यदुत्सूत्रं, तत्सर्वं गर्हितं गदितमा।। पु.सि. 96

जो वचन पैशून्य अर्थात् चुगलखोरी/अट्टहास्य से भरा है उसे गर्हित वचन कहते है। पुनः जो कर्कशः, कठोर, असमंजस, संदेहात्मक, असभ्य, अयोग्य वचन है वे भी गर्हित वचन है। इसी प्रकार जो बकवास से भरा, गप्पेबाज, अधिक बोलना, उत्शृंखल बोलना, भगवान् के प्रामाणिक वचन से बाह्य वचन बोलना ये सब वचन कुत्सित, गर्हित वचन है।

अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोक-कलहकरम्।
यदपरमति तापकरं प्रस्य तत्सर्वमप्रियं श्रेयम्।। (98)

जो वचन अरतिकर अर्थात् द्वेषकारक है तथा भीतिकर अर्थात् भयकारक है और भी खेद को करने वाला वैर को करने वाला, शोक को करने वाला, कलह को करने वाला है ये सब वचन अप्रिय वचन है। क्योंकि इन वचनों से दूसरे जीवों को ताप पहुँचता है, कष्ट पहुँचता है।

जैन गृहस्थों से लेकर पंडित, समाज, राष्ट्र, विश्व में व्याप्त हिंसा, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, तनाव, भूखमरी, फैशन-व्यसन रूपी बड़े-बड़े पापों को दूर करने के बाद छोटे दोषों को भी दूर करना चाहिए न कि उपर्युक्त बड़े दोष तो व्याप्त है परन्तु पंथ भिन्नता के कारण ईर्ष्या-द्वेष, फूट को बढ़ाना चाहिए। साधुओं को भी पहले ज्ञान-वैराग्य, सरलता-सहजता-समता-सहिष्णुता, क्षमा, धैर्य से युक्त होकर बाद में धर्म प्रभावना करनी चाहिए। उपर्युक्त प्रत्येक विषय संबंधी मेरी अलग-अलग 262 पुस्तकें है। सत्य जिज्ञासु के लिए अध्ययन योग्य है।

मैं हूँ मोक्ष-क्षोभ मान-अपमान से परे मोक्ष पथिक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : इंसाफ की डगर पे....., छोटी-छोटी गैया.....)

मोक्षमार्ग डगर पर, कनक/(आत्मा) दीखना चल के।
मोक्ष मिलेगा तुझको, मोह क्षय करने पे।। (ध्रुव)

मोह के हैं दो भेद, दर्शन-चारित्र रूप।
दोनों के क्षय होने से, मिलेगा भाव मोक्ष।।

दोनों के क्षय हेतु, करो सदा प्रयत्न।
इस हेतु करो सदा, स्व-शुद्धात्मा ध्यान।। (1)

अहमेक्को खलु सुद्धो, दंसण णाणमय सदा अरूपी।
णविअत्थिमज्झ किंचिवि अण्ण परमाणु मेत्तपि।।

मा मुज्झह मा रज्जह, मा दूस्सह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु।
थिरमिच्छाहि जइ चित्तं, विचित्त झाण-प्पसिद्धीए।। (2)

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह, किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे ज्झाणं।।

चारित्त खलु धम्मो, धमोत्ति समोत्ति णिदिट्ठं।
सो मोह खोहो विहीण, जीवस्य अण्णणं परिणाम।। (3)

ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा (चर्या) से, कर्म होयेंगे क्षीण।
अंशाअंशी भाव से, जितने मोह (क्षोभ) क्षीण।।

अतः न करो राग, द्वेष मोह काम क्रोध।
ईर्ष्या, तृष्णा व घृणा, निन्दा मात्सर्य द्वंद्व।। (4)

मैं हूँ बड़ा दीक्षा में, पदवीं या ज्ञान में।
तप त्याग परीषह जय में, अतः मैं श्रेष्ठ सभी में।।

उपवास व रसत्याग, मौन एकांत निवास।
कवि लेखक मैं हूँ, अतः सबमें मैं श्रेष्ठ।। (5)

प्रवचनकार मैं हूँ, मेरे हैं अनेक शिष्य।
पढ़ाता हूँ (मैं) साधुप्राज्ञ, अतः मुझे माने ज्येष्ठ।।

मुझे सभी करे नमन, ऐसा न कर गुमान।
गुरुगुणी (श्रेष्ठ) को करो नमन, अतः बनोगे महान्।। (6)

अन्य का भी करो सम्मान, जिससे बनोगे महान्।
पापी का भी न करो अपमान, पाओगे तब सम्मान।।

ख्याति पूजा मान अपमान, माईक मंच विज्ञापन।
इस हेतु न कर कुध्यान, दूर से रहो तू साम्य।। (7)

इससे न मिले मोक्ष, इससे मिले संक्लेश।
जिससे कर्म होता संश्लेष, सुदूर होता है मोक्ष।।

समता-शांति-शुचि, जितना पाता जाओगे।
'कनक' उतने अंश से, मोक्ष पाता जाओगे।। (8)

सीपुर, दिनांक 08.12.2016, रात्रि 8.37

बीज से मुझे प्राप्त शिक्षा

(समृद्ध व महान् बनने की शिक्षा मैं बीज से भी लहूँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : यमुना किनारे....., दुनिया में रहना है तो.....)

बीज से मुझे शिक्षा मिले विकास तू कर।
आत्मा से परमात्मा बनने हेतु गतिशील बन।।

सुयोग्य द्रव्य क्षेत्र कालादि निमित्त पाकर।
गुणस्थान आरोहण से अरिहंत सिद्ध बन।। (1)

मृदा जलवायु के निमित्त को यथा बीज पाकर।
विकसित होकर यथा बीज बनता फूल-फल।।

स्व-आकार से बनता लाखों गुणे भी विशाल।
अनेक रस गंध वर्ण स्पर्श से भरपूर।। (2)

तथाहि मेरे अंदर विद्यमान अनंतानंत गुण।
दर्शन ज्ञान सुख वीर्य अस्तित्वादि गुण।।

यथा अविकसित बीज में सुप्त होते फूल-फल।
तथाहि अशुद्ध अवस्था में मेरे गुण (होते) अविकसित।। (3)

विभिन्न बीज से बनते वृक्ष भी विभिन्न।
फूल-फूल रसादि भी होते विभिन्न।।

(तथाहि) संसारी जीवों के कर्म भी होते विभिन्न।
अतः उनकी अवस्थाएँ भी विभिन्न।। (4)

अग्नि से बीज भस्म से न बनते फूल-फूल।
तथाहि कर्मनाश से (मैं) जीव न भ्रमते संसार।।

ध्यानाग्नि से करूँ सर्व कर्म भस्म।
जिससे संसार भ्रमण होगा निरवशेष।। (5)

बीज से अंकुर तथा मूल भाग होते (जो) उत्पन्न।
अंकुर भूमि से ऊर्ध्व, मूल जाता जमीतल।।

मूल से ही अंकुर बने वृक्ष लगे फूल-फल।
तथाहि मैं अंतरंग से समृद्ध बन बनूँगा विशाल।। (6)

अंकुर व मूल भाग बढ़ते भेदकर छिलका व मृदा।
(तथाहि) मैं विकास करूँ भेद के अंतः बहिरंग बंध।।

संकीर्ण सीमा पार कर बनूँ (मैं) समृद्ध महान्।
बीज से शिक्षा लेकर 'कनक' बनूँ गुणों से महान्।। (7)

सीपुर, दिनांक 29.11.2016, रात्रि 10.49

आध्यात्मिक जन-संत की अलौकिक निस्पृह वृत्ति : तो भी वे न होते पलायनवादी या परपीड़क

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

विश्व हितंकर तीर्थंकर भी, त्याग करते हैं राज्य वैभव।
माता, पिता, पत्नी, पुत्र से लेकर, षट्खण्ड की प्रजा तक।। (1)

नग्न रहते व केशलोंच करते, करते केवल ध्यान-अध्ययन।
व्यापार राजनीति कृषि शिल्पादि, न करते रहते एकांत मौन।। (2)

सामाजिक व राजनैतिक बंधन से परे करते आत्मानुशासन।
आत्म तत्त्व व वैश्विक सत्य हेतु, करते शोध-बोध-अनुसंधान।। (3)

जब तक न होता केवलज्ञान, तब तक ऐसा ही करते काम।
तथापि वे न होते पलायनवादी, अयोग्य आलसी या परपीड़क।। (4)

केवलज्ञान के अनंतर देवनिर्मित, समवसरण में हो विराजमान।
विश्वहित हेतु करते प्रवचन, ख्याति पूजा लाभ से नहीं प्रयोजन।। (5)

संकीर्ण कट्टर व पक्षपात शून्य, अनेकांतमय करते उपदेश।
अनेक सुदृष्टि नर-नारी-देव, पशु-पक्षी सुनते उपदेश।। (6)

कर्मक्षय व शरीर से रहित बनते, जन्म-जरा-मरण शून्य।
अनंत ज्ञान सुख वीर्य से सहित (होकर), सिद्ध अवस्था में रहते शाश्वत।। (7)

ये सब नहीं है संकीर्ण स्वार्थ व, कर्त्तव्यविमुख या पलायनवाद।
आलस्य प्रमाद या असामाजिकता या पर दुःखप्रद।। (8)

राज त्यागकर जब साधु बनते, अन्य के न दुःखप्रद भाव करते।
स्व-पर-विश्वहित हेतु साधु बनते, नवकोटि से अन्य को न दुःख देते।। (9)

पंच महाव्रत व समिति पालते, सत्ता-संपत्ति व भोग न चाहते।
नग्न होकर अश्लीलता नहीं करते, समता-शांति से मौन रहते।। (10)

सर्वज्ञ के अनंतर जिस समवसरण में तीर्थंकर प्रवचन (भी) करते।
उसका निर्माण स्वयं न करते, उसका कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता नहीं बनते।। (11)

भक्त-शिष्य व अनुयायी से भी, न राग द्वेष मोह करते।
उनके जो न होते भक्त आदि, उनसे भी द्वेष घृणा नहीं करते।। (12)

मोक्ष के अनंतर कर्म के अभाव से, पुनर्जन्म उनका नहीं होता।
शरीर इन्द्रिय व मन के अभाव से, संसार के काम भी नहीं करते।। (13)

यह ही जीव की शुद्धावस्था, संसारी जीवों की तो अशुद्ध दशा।
अशुद्ध दशा में ही जीव होते हैं, आलसी-प्रमादी-कर्त्तव्य शून्यता।। (14)

ऐसा अन्य आध्यात्मिक जन, जो होते निस्पृह निराडम्बर।
ध्यान-अध्ययन व मौन एकांत, साधना करते वे होते श्रेष्ठ नर।। (15)

आत्मिक विकास जो नहीं करते, वे ही यथार्थ से अज्ञानी जन।
कर्त्तव्यविहीन, पलायनवादी, आलसी, प्रमादी, परपीड़क जन।। (16)

मोही अज्ञानी कामी स्वार्थी जन, विपरीत भाव व्यवहार करते।
इनसे विपरीत आध्यात्मिक जन, करते 'कनकनन्दी' को यह ही भाते।। (17)

सीपुर, दिनांक 26.11.2016, रात्रि 8.45

मेरे आत्मविकास के सूत्र (नियम/प्रतिज्ञा)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., यमुना किनारे.....)

पहले मैं समझूँ मैं अन्य को समझाने के पूर्व,
पहले मैं मानूँ अन्य को मनाने के पूर्व।

परप्रकाशी पूर्व मैं स्व-प्रकाशी भी बनूँ,
पर सुधार पूर्व मैं स्व-सुधार भी करूँ।। (1)

आत्म पतन योग्य जो सभी होते हैं कारण,
सबसे पहले उसे मैं स्वयं से करूँ निवारण।

राग द्वेष काम क्रोध व मद मत्सर मोह,
ईर्ष्या घृणा व पर प्रतिस्पर्द्धा दिखावा ढोंग।। (2)

परनिन्दा व अपमान वैर-विरोध व द्वंद्व,
ख्याति पूजा लाभ व वर्चस्व विद्रोह।

अस्त-व्यस्त-संत्रस्त व अनात्म काम,
समय-शक्ति-बुद्धि के दुरुपयोग त्याग।। (3)

आत्महित सहित भले परहित भी करूँ,
आत्म पतन सहित परहित भी न करूँ।

आत्महित सहित परहित भी होता आनुसंगिक,
स्व-प्रकाशी सूर्य से अन्य प्रकाशित आनुसंगिक।। (4)

बुझा हुआ दीपक क्या अन्य को प्रकाश देगा,
अज्ञानी क्या अन्य को ज्ञानदान करेगा।

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि हेतु न धर्म करूँगा,
भेड़ व भेड़िया चाल से भी न मैं धर्म करूँगा।। (5)

मैत्री प्रमोद कारुण्य व माध्यस्थ भाव,
रखूँगा हर जीव में यथायोग्य सद्भाव।

संगति करूँ सद्गुण-प्रोत्साहक शांत सज्जन,

दूर रहूँ निंदक व दुष्ट संकीर्ण दुर्जन (से)।। (6)

गलती होने पर उससे भी शिक्षा मैं लहूँ,
उस गलती को पुनः-पुनः मैं न दोहराऊँ।
स्व-अच्छे गुण-भाव (व) कामों को स्मरण करूँ,
गद्य-पद्य व प्रतिज्ञा में भी लिखता मैं चलूँ।। (7)

सत्य-तथ्य (व) आत्म तत्त्व की मैं जिज्ञासा करूँ,
सरल-सहज-जिज्ञासु बालक सम भाव (मैं) धरूँ।
बहाना शिकायत व पर दोषारोपण न करूँ,
सकारात्मक भाव से मैं स्व-लक्ष्य को प्राप्त करूँ।। (8)

व्यापक व अनेकांतात्मक ज्ञानार्जन मैं करूँ,
स्व-परमत व तात्कालीन ज्ञान-विज्ञान जानूँ।
शोध-बोध-प्रायोगिक व अनुभव मैं करूँ,
सर्टकट व जल्दीबाजी से काम न मैं करूँ।। (9)

प्राधान्य व प्राथमिकता से काम मैं करूँ,
आनुसंगिक काम हेतु शक्ति नहीं लगाऊँ।
आत्मविकास हेतु ध्यान-अध्ययन व साधना करूँ,
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि हेतु शक्ति नहीं लगाऊँ।। (10)

विश्वहित हेतु ज्ञानदान व भावना मैं करूँ,
सभी से शिक्षा लेकर आत्मविकास मैं करूँ।
तनाव-चिन्ता व नकारात्मक भावना मैं त्यागूँ,
दीन-हीन अहंकार व संक्लेश मैं त्यागूँ।। (11)

समता-शांति व सद्भावना-समन्वय से,
आत्म विश्लेषण व आत्म सुधार कामों से।
आत्मानुशासन व धैर्य आध्यात्मिक बल से,
'कनक' विकास चाहे आत्मानुभव से।। (12)

सीपुर, दिनांक 06.12.2016, रात्रि 8.15 व 1.47

(यह कविता 'मिलेनियर्स की लाईफ चेंजिंग हैबिट्स' से भी प्रेरित है।)

अनंत आत्म वैभव बिना गर्व आदि क्यों करूँ?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

मैं हूँ अनंत आत्मिक वैभवधारी, कर्मचोर ने की मेरी वैभव चोरी।
जिससे मैं अभी भोग रहा हूँ कंगाली, कंगाल होकर कैसे बनूँ अहंकारी (हूँ घमण्डी)।। (1)

मैं हूँ अनंत आत्मिक गुणगणधारी, राग द्वेष मोह शत्रु ने बनाया अवगुणधारी।
कर्मचोर व शत्रुओं को मैं विनाश करके, बनना मुझे प्रभु-विभु-गुणधारी।। (2)

मैं हूँ अनंत ज्ञान दर्शन का स्वामी, ज्ञान दर्शन आवरण से बना अल्पज्ञानी।
अनंत ज्ञान दर्शन प्राप्त करना है बाकी, अल्पज्ञ होकर कैसे बनूँ ज्ञान अभिमानी।। (3)

अनंत सुख वीर्य का भी मैं हूँ स्वामी, घातीकर्म रूपी घातक से बना निर्धनी।
सांसारिक सुख शक्ति से क्यों करूँ अभिमान, घाती को घातकर बनूँ सुख वीर्यवान्।। (4)

आत्म-उपब्धि से ही मेरी प्रसिद्धि/(सिद्धि), परिनिर्वाण से ही है मेरा निर्वाण/(पूर्णता)।
स्व-आत्मिक वैभव आदि पाना है लाभ, उक्त पुरुषार्थ है शोध-बोध-खोज।। (5)

इस हेतु ही मेरी सभी साधना मात्र, तप-त्याग व ध्यान-अध्ययन शास्त्र।
निस्पृह-निराडम्बर-एकांतवास व मौन, प्रभावना-प्रवचन-लेखन-अध्यापन।। (6)

शुद्ध-बुद्ध-आनंद है मेरा स्वधर्म, सत्य-समता-शुचि से पाऊँ सुधर्म।
संकीर्ण-कट्टर व वर्चस्व-स्वार्थ शून्य, सच्चिदानंद बनना है 'कनक' (का) लक्ष्य।। (7)

सीपुर, दिनांक 09.12.2016, रात्रि 10.26 व 6.50

संदर्भ-

स धर्मी यत्र नाधर्मस्तत्सुखं यत्र नासुखम्।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः।। (46) आ.नु.

धर्म वह है जिसके होने पर अधर्म न हो, सुख वह है जिसके होने पर दुःख न हो, ज्ञान वह है जिसके होने पर अज्ञान न रहे तथा गति वह है जिसके होने पर आगमन न हो।

अर्थिनो धनमप्राप्य द्यनिनोऽप्यवितृप्तितः।
कष्टं सर्वेऽपि सीदन्ति परमेकः सुखी सुखी।। (65)

परायत्तात् सुखाद् दुःख स्वायत्तं केवलं वरम्।
अन्यथा सुखिनामानः कथमासंस्तपस्विनः।। (66)

धनाभिलाषी निर्धन मनुष्य तो धन को न पाकर दुःखी होते हैं और धनवान् मनुष्य संतोष के न रहने से दुःखी होते हैं। इस प्रकार खेद है कि सब ही (धनी और निर्धन भी) प्राणी दुःख का अनुभव करते हैं। यदि कोई सुखी है तो केवल एक संतोषी (तृष्णा से रहित) मुनि ही सुखी हैं। धनवानों का सुख पराधीन है। उस पराधीन सुख की अपेक्षा तो आत्माधीन दुःख अर्थात् अपनी इच्छानुसार किये गये अनशन आदि के द्वारा होने वाला दुःख ही अच्छा है। कारण कि यदि ऐसा न होता तो फिर तपश्चरण करने वाले साधुजन 'सुखी' इस नाम से युक्त कैसे हो सकते थे? अर्थात् नहीं हो सकते थे।

अकिंचनोऽहमित्यास्स्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवे।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः।। (110)

हे भव्य! तू 'मेरा कुछ भी नहीं है' ऐसी भावना के साथ स्थित हो। ऐसा होने पर तू तीन लोक का स्वामी (मुक्त) हो जायेगा। यह तुझे परमात्मा का रहस्य (स्वरूप) बतला दिया है जो केवल योगियों के द्वारा प्राप्त करने के योग्य या उनके ही अनुभव का विषय है।

सुखी सुखमिहान्यत्र दुःखी दुःखं समश्नुते।
सुखं सकलसंन्यासो दुःखं तस्य विपर्यय।। (187)

जो प्राणी इस लोक में सुखी है वह परलोक में भी सुख को प्राप्त होता है तथा जो इस लोक में दुःखी है वह परलोक में भी दुःख को प्राप्त करता है। कारण यह कि समस्त इन्द्रिय विषयों से विरक्त होने का नाम सुख और उनमें आसक्त होने का नाम ही दुःख है।

मेरी (आ. कनकनन्दी की) शिक्षा पद्धति-सर्वांगीण उन्नति

ज्ञानार्जन की सही पद्धति व विभिन्न उपलब्धियाँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया....., क्या मिलिये.....)

सुनो हे! शिष्य तुम्हें बताऊँ...ज्ञानार्जन की सही पद्धति...

जिससे तुम कर पाओगे...विविध प्रकार की उन्नति...

रुचि सहित आत्मविश्वास युक्त...एकाग्रता से सहित...
महान् उद्देश्य युक्त समता...शांति सह शोध-बोध युक्त...(1)...

तनाव अवसाद चिन्ता रहित...दबाव अस्त-व्यस्त रिक्त...
महत्वपूर्ण-प्राथमिकता के आधार...पर हो व्यर्थ कार्य से रिक्त...

क्रमबद्ध व व्यवस्थित सीखो...सर्वांगीण दृष्टिकोणों से...
रटंत विद्या छोड़कर के...सीखो प्रयोग-अनुभव से...(2)...

अव्यवस्थित व अपूर्ण रूप से...जो सीखते वह ज्ञान उथला...
(उसमें) समय-शक्ति व्यर्थ गँवाते...बहती नहीं ज्ञान की धारा...

जो कुछ सीखो उसे मन में दोहराओ...स्वभाषा में उसे लिखो...
सूक्ष्म कठिन जटिल समस्यापूर्ण...विषयों को जिज्ञासा से सीखो...(3)...

इससे डोपामाइन का स्राव होगा...जिससे मिलेगी भी संतुष्टि...
उत्साह-साहस-आत्मविश्वास भी...बढ़ेंगे जिससे बढ़ेगी रुचि...

ज्ञान तो अनंत उसे बढ़ाता ही चलो...थोड़ा ज्ञान से न बनो घमण्डी...
गलती को जाना/(मानो) उससे शिक्षा लो...गलती की न करो पुनरावृत्ति...(4)...

पढ़ो विभिन्न साहित्य धर्म-दर्शन...विज्ञान व भाषा-गणित...
ध्यान से सुनो देखकर जानो पढ़ो...महान् पुरुषों के जीवन...

एकांत शांत व स्वच्छ मनोरम...प्राकृतिक वातावरण में...
निवास करो अध्ययन करो...मिलेगी प्राणवायु व शिक्षाएँ भी...(5)...

शुद्ध सात्विक पौष्टिक शाकाहार...ड्रायफूड व दुग्धाहार...
प्राणायाम-योगासन-ध्यान...प्राकृतिक स्थान में परिभ्रमण...

सुव्यवस्थित दिनचर्या करो...शांत-संतुलित-सक्रिय...
आलस्य-प्रमाद-बहाना त्यागकर...करो श्रमपूर्वक विश्राम/(शयन)...(6)...

सीखो व सिखाओ परोपकार करो...संस्कार व सदाचार पालो...
सादा जीवन उच्च विचार करो...फैशन-व्यसनों से हो दूर...

उदार गुणग्राही प्रगतिशील बनो...श्रद्धा-प्रज्ञा व कल्पनाशील...
स्व-पर प्रकाशी सत्यग्राही बनो...सूरी 'कनक' का भी तुम्हें आशीष...(7)...

सीपुर, दिनांक 11.12.2016, रात्रि 8.25

दादा गुरु आ. कनकनन्दी हेतु पोता शिष्य मुनि जयकीर्ति का पत्र

परम-पूज्य स्वाध्याय शिरोमणि, श्रेष्ठाचार्य, दिव्य विचारक, स्वात्म-साधक, वैज्ञानिक धर्माचार्य, सिद्धांत चक्रवर्ती, आत्म-साधक, आगम पारगामी, ज्ञान निष्णात, सतत जागृत, स्वात्मलीन ज्ञान-शिखर श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के ऊर्जान्वित पवित्र श्री चरणों में त्रियोगपूर्वक, त्रिभक्ति सहित त्रिकाल भावपूर्ण नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु!

हे गुरुवर! आपश्री का स्वास्थ्य एवं रत्नत्रय अति-उत्तम ही हैं तथा आपकी स्वात्म-आराधना, स्वात्म-साधना, स्वात्म-प्रभावना उत्तरोत्तर वृद्धिगत ही हैं एवं आपकी आत्म ध्यान की तल्लीनता निश्चित ही उच्चतम ही हैं ऐसी ही भावना भा रहा हूँ।

हे दादा गुरु! आपने जिस उत्कृष्ट भाव-स्थिति को पाया है वैसी भाव-स्थिति परम दुर्लभ है। आपकी अपार आगम-निष्ठा अवर्णनीय है एवं पंचम काल में भी आपकी चर्या परम-प्रशंसनीय अनुकरणीय हैं। हे गुरुदेव! आपके अतुलनीय गुण-रत्नाकर में से कुछ रत्न मेरे जीवन को भी विभूषित करे यही आपके श्री चरणों में पवित्र भावपूर्वक पुनः-पुनः बारंबार नमोऽस्तु!

नमोऽस्तु-नमोऽस्तु!!

आपका
श्रमण मुनि जयकीर्ति

कांदीवली, मुंबई, दिनांक 17.11.2016, मध्याह्न 3.30

निस्पृह संत आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुवर की आरती/(अभिनंदन, अभिवंदन)

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : भातुकली (मराठी)....., विमलसागर हे! गुणआगर....)

निस्पृहता की साकार मूर्ति...कनकनन्दी सौम्य गुरु...
बहुगुणधारी समता भावी...मंगलमय हो आरती
/(अभिनंदन, अभिवंदन)...(ध्रुव)...

ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि से...सतत दूर रहते हैं...
आत्मा की उपलब्धि हेतु...नित्य समर्पित रहते हैं...

चन्दा-चिट्ठा-दबाव-याचना...नवकोटि से न करते है...
सरल-सहज-आगम विधि से...संघ संचालन करते हैं...निस्पृहता...(1)...

संघ में नहीं नौकर-चाकर...गाड़ी-चौका-रथ आदि...
श्रावक स्वेच्छा-भक्ति से करे...आहार-विहार-निवास आदि...

भौतिक प्रोजेक्ट कोई नहीं...मठ-मंदिर या स्व-क्षेत्र...
इन सब विकल्पों से दूर...साधु ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त...निस्पृहता...(2)...

अनुपम ऐसी निस्पृह वृत्ति...प्रमुदित हैं जन-गण-मन...
स्व-प्रेरणा व भाव भक्ति से...कर रहे सेवा-समर्थन...

आगामी चातुर्मास-प्रवास हेतु...अपने-अपने ग्राम-नगर...
ज्ञानी-विज्ञानी-सरल गुरु के...चरण कम चाहे 'सुविज्ञ' जन...निस्पृहता...(3)...

सीपुर, दिनांक 11.12.2016, मध्याह्न प्रायः 2.30